साक्षात्कार

संयुक्तांक : 511–512–513
जनवरी–फरवरी–मार्च, 2023

साक्षात्कार

डॉ. विकास दवे
सम्पादक

ISSN : 2456-1924

साक्षात्कार

जनवरी-फरवरी-मार्च, 2023
संयुक्तांक : 511-512-513

सम्पादकीय एवं ग्राहकीय पत्र-व्यवहार : निदेशक/सम्पादक, साहित्य अकादमी, संस्कृति भवन, बाणगंगा, भोपाल-462003

फ़ोन : 0755-2554782 (कार्यालय)

साक्षात्कार की प्रकाशनार्थ रचनाओं के लिए
email : sakshatkarnew@gmail.com पर मेल करें।

वार्षिक सहयोग राशि

व्यक्तिगत ग्राहकों के लिए : ₹ 250

संस्थाओं के लिए : ₹ 300

आजीवन : ₹ 3, 000

यह अंक : ₹ 75 (रजिस्टर्ड डाक खर्च अतिरिक्त)

समस्त बैंक ड्रॉफ्ट/मनीआर्डर '**निदेशक, साहित्य अकादमी, भोपाल**' के नाम स्वीकार्य होंगे।

आवरण : अमरजीत कुमार

आकल्पन : राकेश सिंह

मुद्रण : मध्यप्रदेश माध्यम, अरेरा हिल्स, भोपाल

'साक्षात्कार' में प्रकाशित रचनाकारों के विचार अपने हैं। सम्पादक या साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन का उनके विचार के प्रति सहमत होना आवश्यक नहीं है।

साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश का मासिक प्रकाशन

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

कालनेमियों से सावधान... // 05

बातचीत

डॉ. चाँदनीवाला से डॉ. विकास दवे की बातचीत // 08

आलेख

डॉ. दिनेश पाठक 'शशि' हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानी के कथाशिल्पी चन्द्रधर शर्मा गुलेरी // 15

डॉ. राजीव अग्रवाल विज्ञान लोकप्रियकरण और रवि लायटू का अवदान // 19

अखिलेश सिंह श्रीवास्तव नागद्वारी : देवलोक-द्वार के रास्ते में एक दिन // 22

प्रो. नरेंद्र मिश्र जनता की वाणी को स्वर देने वाले कवि दिनकर // 27

उत्कर्ष अग्निहोत्री लोकसंग्रह के श्रीविग्रह : पं. विद्यानिवास मिश्र // 33

डॉ. साधना बलवटे नर्मदा जीवन भी जीवन उत्सव भी // 38

डॉ. आशा कनेल सुभाष चन्द्र बोस : नेता जी // 41

कर्नल प्रवीण शंकर त्रिपाठी साहित्य में पावस ऋतु // 49

अखिलेश आर्येन्दु साहित्य, संस्कृति व समाज के युगशिल्पी संतराम बी.ए. // 55

डॉ. कुमारी उर्वशी हिंदी साहित्य, सिनेमा और समाज // 58

डॉ. अहिल्या मिश्र हिंदी साहित्य में महिला आत्मकथा लेखन // 77

डॉ. कुबेर कुमावत हिंदीतर भाषियों का हिंदी प्रेम और प्रेम की हिंदी // 88

कविता/गीत

डॉ. राम वल्लभ आचार्य मुक्ति का महायज्ञ // 92

दिनेश प्रभात शब्द-शब्द में राम // 99

राजेश भंडारी 'बाबू' हर घर तिरंगा // 100

डॉ. वेद प्रकाश पाण्डे आजादी का सफर // 101

अर्पणा 'अंजन' अपना प्रेम // 103

कहानी

विक्रम सिंह चीटर// 104
सुनीता पाठक सूनी वसीयत // 110
दिनेश विजयवर्गीय नयी जिन्दगी // 115
डॉ. वन्दना मिश्र गंतव्य // 119

समीक्षा

प्रदीप कुमार सिंह 'गूगल गाँव' की कुरूपता के तीन पात // 123

कालनेमियों से सावधान...

आत्मीय बंधु/भगिनीगण,
सादर प्रणाम।

इन दिनों साहित्य क्षेत्र में वैचारिक प्रतिबद्धताओं और उससे मिलने वाले प्रतिसाद (प्रसाद) की चर्चाएँ बड़ी मात्रा में हो रही हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् अकादमीक क्षेत्रों में विशेषकर साहित्य जगत में कुछ मठाधीशों ने इस तरह कब्जा किया कि वे सम्मान-पुरस्कार बाँटने की 'फैक्ट्रियों' की तरह काम करने लगे। इनमें से कई नाम तो ऐसे हैं जो वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी रहे और बाद में सेवानिवृत्ति के पश्चात् उन्होंने अपने जीवनभर की काली कमाई से कई फाउंडेशन और एनजीओ तैयार करके सम्मान-पुरस्कारों की तथाकथित नई फैक्ट्रियाँ तैयार कर लीं।

यह वह लोग थे जो दिल्ली में बैठकर सभी हिंदीभाषी राज्यों सहित देशभर की अकादमियों के सम्मान पुरस्कारों की ज्यूरी तय करते थे और निर्णायक मंडल की बैठकों से पहले ही सम्मानों के 'दाम' तय कर लिया करते थे। शराब की बोतलें खाली होने तक लोग बड़े साहित्यकार घोषित हो जाते। ऐसा नहीं कि यह लोग आज भी सक्रिय नहीं हैं किंतु दुर्भाग्य से अब जो समय आया है, उसमें इनके मठों पर ताला लगना प्रारंभ हो गया है। वास्तव में इस 'चौकड़ी' का वर्चस्व ऊपर से समाप्त होता दिखाई देता है किंतु आज भी अकादमीक कार्यों में विपरीत विचार की सरकारों के रहते हुए भी इनकी घुसपैठ सतत् बनी रहती है। निकट से देखने पर ध्यान में आता है कि यह एक 'डकैत गैंग' की तरह सक्रियता से काम करने वाले लोगों का समूह है। इस शैली का मुकाबला सहज रूप से साहित्य और कला की सेवा करने वाले लोग नहीं कर पाते और न ही इनके किले में प्रवेश का आसान सा कोई रास्ता है। यह केवल अपने विचार से अनुप्राणित लोगों को लगातार प्रसाद वितरित करना ही अपना धर्म समझते हैं। यूँ तो इनके लिए यह सारे काम तब आसान रहे जब सिंहासनों पर वैचारिक अनुकूलता वाले मित्र बैठे होते थे किंतु इनके दुर्भाग्य से धीरे-धीरे कुछ राज्यों में होते-होते अब केंद्र तक इनके विपरीत विचार वाला नेतृत्व आ जाने से अब अपने कामों को मूर्तरूप देने में इन्हें बड़ी समस्या आने लगी। अब इनके तरीके बदले हैं किंतु काम की धार अभी भी उतनी ही तेज है। अब यह कालनेमि की तरह मुखौटे लगाकर भिन्न-भिन्न चेहरे लिए हुए प्रकट होते हैं और जिस तरह बच्चों का 'रुमाल झपट्टा' खेल होता है, उस तरह से साहित्य और कला जगत में 'इनाम झपट्टा' खेल चलने लगा है। यदि दस में से चार सम्मान पर भी अवैध पद्धति से डाका डालने में सफल हो गए तो इन्हें लगता है कि यह उस नेतृत्व की मूर्खता भी है और उनकी वर्षों की 'प्रपंच तपस्या' का सफलीकरण भी है।

वास्तव में यह सब चेहरे उस समय अनावृत होना प्रारंभ हुए जब योजनाबद्ध तरीके से देश के नेतृत्व को बदनाम करने के लिए अवार्ड वापसी का खेल रचा गया और इस अवार्ड वापसी के यह सारे सरगना जब बैठकर पत्रकार वार्ताएँ ले रहे थे तब एक-एक कर इन सबके चेहरे अनावृत होते चले गए। यह बात अलग है कि इन लोगों को बाद में भी बड़े-बड़े पदों और सम्मानों को प्राप्त करने से कोई रोक नहीं पाया।

इस 'गैंग' की पहुँच केवल भारत तक नहीं बल्कि भारत से बाहर विदेशों में चल रहे एनजीओ द्वारा स्थापित सम्मान-पुरस्कारों तक है। जैसे-जैसे भारत के सम्मान-पुरस्कार गरिमा को प्राप्त होने लगे, सही हाथों में पहुँचने लगे और दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों से उभरकर पुरस्कार पाने वाले सामने आने लगे तो इस गैंग ने स्वयं को विदेशी सम्मानों की ओर प्रस्थापित कर लिया। आज भी साहित्य क्षेत्र में स्वनाम धन्य अनेक बड़े सम्मानों की उतनी प्रतिष्ठा नहीं है जितनी विदेशों से आयातित कुछ सम्मानों की बना दी गई है। वास्तव में यह कार्य साहित्य, पत्रकारिता और अकादमिक क्षेत्रों के गिरोह सदस्य मिलकर करते हैं। इस पूरे कुनबे का यह पूरा प्रयास रहता है कि ऐसा कोई व्यक्ति उन सम्मानों तक न पहुँच पाए जो इस देश की मिट्टी से जुड़ा है, जो परंपराओं की बात करता है, जो संस्कृतिनिष्ठ है। राष्ट्रीय चेतना से तो यह टोला दूर से राम-राम करता है। यही कारण है कि साहित्य जगत में एक लंबे समय से चले आ रहे कुचक्र कुछ मात्रा में धीमे जरूर हुए हैं किंतु यह सब मिलकर इस रिक्त समय का उपयोग 'लाक्षागृह' तैयार करने के लिए कर रहे हैं। साहित्य मनीषियों को चाहिए कि ऐसे लाक्षागृह की पूर्व पीठिका जरूर समझने का प्रयास करें।

इन दिनों लगातार देशभर में भ्रमण करने का अवसर प्राप्त हुआ है। साहित्य क्षेत्र के नवोदित रचनाकार बंधु/भगिनियों से जब बात होती है तो युवा रचनाकारों में से 80 प्रतिशत रचनाकार ऐसे होते हैं जो सीधे नाम लेकर बताते हैं कि अमुक व्यक्ति को हमने अपनी रचना भेजी थी और उन्होंने तुरंत फोन पर संपर्क करके कहा कि तुम कहाँ शिवाजी महाराणा प्रताप में लगे हो? तुम कहाँ राष्ट्रीय चेतना की रचनाएँ करने में अपना समय खराब कर रहे हो? तुमको समाज की विद्रूपताएँ और विकृतियाँ नजर नहीं आती क्या? इस देश में इस समय विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर पूरी तरीके से डाका पड़ा हुआ है, तुम इसके खिलाफ क्यों नहीं लिखते?

यह तथाकथित बड़े लोग चूँकि साहित्य क्षेत्र में स्थापित नाम हैं इसलिए भोले-भाले युवा रचनाकार इनके षड्यंत्रों का बड़ी आसानी से शिकार हो जाते हैं। आज आवश्यकता इस बात की भी है की संपूर्ण साहित्य क्षेत्र में भारतीय शुचिता और अस्मिता की बात करने वाले सभी रचनाकार बिना किसी राग-द्वेष के एक साथ मिलकर इन षड्यंत्रों को समझने का प्रयास करें। विशेषकर हिंदी साहित्य क्षेत्र में इन दिनों गुरु-शिष्य परंपरा समाप्त हुई है। क्या हमारे कुछ वरिष्ठ रचनाकार नवोदित रचनाकारों को रचनाधर्मिता के सूत्र बताने के लिए सन्नद्ध नहीं हो सकते? आवश्यकता इस बात की है कि यदि 'वह' कुछ लोग इन नवोदित रचनाकारों को भरमा कर अपने अनुसार लिखवाने में सफल हो जाते हैं तो 'यह' लोग चुपचाप क्यों बैठे हैं? इनको भी बाहर निकल कर आना पड़ेगा। अपनी ऊँचाइयों के दंभ को दरकिनार करते हुए नवोदितों को मार्गदर्शन करने के लिए प्रवृत्त होना पड़ेगा। यदि यह प्रक्रिया सहज रूप से प्रारंभ हो गई तो देखते ही देखते इन मठाधीशों के मठ बंद हो जाएँगे।

सौभाग्य से अब धीरे-धीरे पद्म से लेकर अकादमीयों तक सम्मान पुरस्कार देने वाले संस्थानों में सांस्कृतिक-वैचारिक अधिष्ठान के वरिष्ठ रचनाकारों को मान्यता प्राप्त होने लगी है किंतु लाक्षागृहों के निर्माण की प्रक्रिया भी चल रही है। सतर्क होकर इन पांडवों को लाक्षागृह में प्रवेश करना होगा। धृतराष्ट्र पूर्वाग्रह से ग्रसित है। वह आपको स्नेह से अपनी सम्मान प्रदाता बाँहों में भरने के लिए आमंत्रण दे रहा है। सतर्कता इस बात की रखना है कि वैचारिक अधिष्ठान पर रहते हुए यह जब-जब बाँहें फैलाए तब-तब भीम का लोहे का पुतला ही सामने किया जाए अन्यथा पूरे सहित्यधर्म रूपी देह की हड्डियाँ चूर-चूर करके ही यह धृतराष्ट्र दम लेगा। मैं जानता हूँ कि जिस रचनाकार ने देशधर्म, समाजधर्म को अपनी रचना का हिस्सा बना लिया उस रचनाकार को कभी भी सम्मान पुरस्कार की प्राप्ति का लालच नहीं होता किंतु अब इस निर्लिप्तता से भी बाहर आने की आवश्यकता है। हम भले ही अपने लिए कुछ प्राप्त करने की कोशिश न करें किंतु राष्ट्र को केंद्र में रखकर लेखन करने वाले लोग अब प्रताड़ित न हों इस बात की चिंता करना भी हमारा धर्म होगा। समय बदल गया है अब फिर से यदि किसी श्रीकृष्ण सरल को अपनी पुस्तकों के लिए पत्नी के गहने बेचना पड़े या बच्चों को कपड़ों से वंचित होना पड़े तो फिर मुझे लगता है कि यह एक पूरे वैचारिक अधिष्ठान के समक्ष चुनौती होगी। आइए हम सब मिलकर विदेशों से आयातित विचार से संगठित इस 'डकैत गिरोह' का सामना करने के लिए स्वयं को सन्नद्ध करें।

सदैव सा

डॉ. विकास दवे

संपादक एवं निदेशक

साहित्य अकादमी (म.प्र.)

अपनी पत्रिका के शीर्षक के अनुरूप भारत भर के वरिष्ठ रचनाकारों से संवाद स्थापित करते हुए साक्षात्कार लेकर उनकी साहित्यिक यात्रा और रचना कर्म से अन्य रचनाकारों को परिचित करवाना यह इस स्तम्भ का मुख्य हेतु रहेगा। यूँ तो 'साक्षात्कार' पत्रिका अपने नाम के अनुरूप इस तरह के साक्षात्कारों का पहले भी प्रकाशन करती रही है किंतु इसमें एक प्रयोग प्रारंभ किया है। विगत दिनों भारतीय साहित्यिक पत्रकारिता के संदर्भ में एक पुस्तक पढ़ते हुए श्रद्धेय माखनलाल चतुर्वेदी जी और धर्मवीर भारती जी के संबंध में एक आलेख पढ़ते हुए यह ध्यान में आया था कि कोई भी साहित्यकार पत्रिका का संपादक बनते ही अपने आप को एक अलग पाले में खड़ा कर लेता है और रचनाकारों को दूसरे पाले में खड़ा कर देता है। यदि संपादक और रचनाधर्मियों के बीच सीधा संवाद स्थापित करने की सुचारू व्यवस्था बन जाए तो स्वाभाविक रूप से वह साहित्यिक पत्रिका साहित्यकार पाठकों के लिए भी अत्यंत आत्मीय हो जाती है। बस इसी बात को ध्यान में रखकर यह सोचा है कि पत्रिका में संपादकीय का आकार भले थोड़ा छोटा रहे किंतु मैं स्वयं चर्चा करके वरिष्ठ रचनाकारों के साक्षात्कार लूँ और उन्हें आप सबके समक्ष रखूँ। इस बहाने मेरा तो प्रशिक्षण होगा ही आप सब भी इन रचनाकारों के जीवनानुभवों से बहुत कुछ प्राप्त कर सकेंगे। इसी शृंखला में प्रस्तुत है यह साक्षात्कार।–सम्पादक

डॉ. चाँदनीवाला से डॉ. विकास दवे की बातचीत

डॉ. विकास दवे : अपने पैतृक संस्कारों को आप किस तरह देखते हैं?

डॉ. चाँदनीवाला : मेरे पितामह पंडित रामचंद्र केशव जोशी वेद के उद्भट विद्वान थे। वे वेदमूर्ति के रूप में ही जाने जाते थे। वर्ष 1916 में जब पूना में वेदकाल निर्णय को लेकर शास्त्रार्थ हुआ, तब लोकमान्य बाळगंगाधर तिलक, दीनानाथ शास्त्री चुलेट के साथ मेरे पितामह भी थे। मेरे पितामह का निधन वर्ष 1934 में हुआ, किन्तु उनका सम्पूर्ण साहित्य आज मेरी व्यक्तिगत पूँजी है। वे जिस यजुर्वेद संहिता का स्वाध्याय करते थे, वह आज भी मेरे पास है, और मैं अत्यंत पूजाभाव से उसे स्पर्श करता हूँ। इस संहिता ने मुझे अपना कुलधर्म दिया, पैतृक संस्कार दिये। वेदाध्ययन के लिये मेरी प्रथम गुरु वह संहिता ही है। मेरे पितामह और पिता पंडित कमलाकांत जोशी, दोनों ही काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के विद्यार्थी थे। दोनों ने ही अपने-अपने समय में पंडित मदनमोहन मालवीय और सर्वपल्ली राधाकृष्णन के सान्निध्य में रहकर आचार्य की उपाधि ग्रहण की। पितृऋण से मैं कभी मुक्त नहीं हो सकता।

डॉ. विकास दवे : आपकी शिक्षा-दीक्षा कहाँ हुई। अपने गुरुजनों के बारे में अवश्य बताइए।

डॉ. चाँदनीवाला : स्कूली शिक्षा तो धार, उज्जैन, अम्बिकापुर, होशंगाबाद और सिवनी में हुई। हायर सेकेंडरी के बाद बीए माधव कॉलेज उज्जैन से किया। तब मेरा नाम प्रावीण्य सूची में था। दोपहर में कॉलेज और सुबह महाकालेश्वर मंदिर के कोटितीर्थ के पार्श्व में संस्कृत विद्यालय जाया करता था। वहाँ पंडित बंशीधर वशिष्ठ और श्री गुंडम भट्ट तैलंग पढ़ाते थे। वहीं पढ़ते हुए मध्यमा और साहित्य शास्त्री की उपाधि प्राप्त की। वहाँ वेदों से प्रथम परिचय भी हुआ। वर्ष 1971 मेरे लिये बहुत खास था। उज्जैन में पहली

बार ओरिएंटल कान्फ्रेंस हुई। दुनिया भर के विद्वान आये थे। उनसे मिलना हुआ। तब मैं संस्कृत में एम.ए. कर रहा था। आचार्य श्रीनिवास रथ वेद-निरुक्त, काव्यप्रकाश और भाषाविज्ञान पढ़ाते थे। उनका पढ़ाने का अंदाज बहुत निराला था। मेरे वेद-गुरु वे ही हैं। उनके ही मार्गदर्शन में मैंने वैदिक साहित्य पर पहला शोधकार्य किया। तब डॉ.भगवतशरण उपाध्याय वहीं थे। उनसे अपार सहायता मिली। पद्मभूषण पंडित सूर्यनारायण व्यास, विष्णु श्रीधर वाकणकर, प्रोफेसर वेंकटाचलम जी, प्रज्ञाचक्षु दयाशंकर वाजपेयी, डॉ.राममूर्ति त्रिपाठी इन सबने मुझे तराशा। कुलपति डॉ. शिवमंगलसिंह सुमन ने मुझे बहुत प्रोत्साहित किया। एम.ए. के बाद 1976 में पीएच.डी. भी वैदिक साहित्य पर ही हुई। पंडित बाबूलाल शुक्ल शास्त्री और विद्वान् आचार्य श्रीधर भास्कर वर्णेकर का भी ऋण मेरे ऊपर है।

डॉ. विकास दवे : कविता के प्रति आपकी रुचि कब हुई?

डॉ. चाँदनीवाला : कविता के प्रति मेरा रुझान बचपन से ही था। 1957-58 में आचार्य श्रीनिवास रथ सागर से उज्जैन आ गये थे। वे लगभग रोज शाम को हमारे बहादुरगंज स्थित घर पर पिताजी से मिलने आते ही थे, और उन्होंने वचन ले रखा था कि वे मुझसे हमेशा नयी कविता सुनेंगे। मैं उत्साहपूर्वक लिखने लगा। बाद में पारिवारिक परिस्थितियों के चलते मुझे प्रायमरी एजुकेशन के लिये अम्बिकापुर और फिर होशंगाबाद जाना पड़ा, तब भी मैंने कविताएँ लिखना जारी रखा। वहाँ से लौटकर जब उज्जैन आया, तब स्कूल में मैं कवि के रूप में पहचाना जाने लगा।

डॉ. विकास दवे : आपकी प्रसिद्ध कविता कौन सी है?

डॉ. चाँदनीवाला : मेरी सर्वाधिक प्रसिद्ध कविता है-'बेटियाँ कुछ लेने नहीं आती हैं पीहर'। दरअसल वर्ष 2009 में मेरी बेटी दोहा(कतर) में थी। उसे बहुत जरूरी काम से एक-दो दिन के लिये भारत आना था। भारत आते ही उसने सोचा कि यदि वह घड़ी भर के लिये भी अपने माता-पिता से मिलने रतलाम नहीं आई, तो उसका भारत आने का क्या अर्थ? वह आई, और मिलकर चली गई। मैं सोचता रह गया कि बेटी क्या लेने आई थी पीहर? और यह कविता निकल पड़ी। इस कविता के अलावा 'साजिश है तुम्हारे खिलाफ', 'बच्चा हँस रहा है', 'तवे से उतरती हुई रोटी', 'कालापानी', 'भ्रूणों की समाधि पर', 'बच्चों ने कब माँगी थी रोटी', 'मैं माँ का जीवित स्मृतिचिह्न', 'सदियों का इतिहास', 'नदी घर पर नहीं है', 'सोना उगलती हैं किताबें', 'सत्य कभी साम्प्रदायिक नहीं होता', 'रैदास', 'मनुष्यता का अध्यात्म' चर्चित और बार-बार प्रकाशित होने वाली कविताएँ हैं।

डॉ. विकास दवे : आपकी इस तरह की स्वतंत्र कविताओं का संकलन छपा है क्या?

डॉ. चाँदनीवाला : हाँ। वह है- 'विरासत का फूल' बोधि प्रकाशन से प्रकाशित हुआ है वर्ष 2020 में। इस संकलन में मेरी साठ प्रतिनिधि कविताएँ हैं। इस संकलन की विस्तृत भूमिका भाई राजशेखर व्यास ने बड़े प्यार से लिखी है। इसके पहले मेरी कविताएँ वागर्थ, अक्षरा, अहा! जिंदगी, कादम्बिनी, साक्षात्कार, पहल, वीणा, कथादेश, नईदुनिया में छपती रही हैं।

डॉ. विकास दवे : आप कभी कवि सम्मेलनों में नहीं गये?

डॉ. चाँदनीवाला : मंच पर कवितापाठ करने के अवसर तो मिले होंगे?

वर्ष 1962 में उज्जैन के कार्तिक मेले में लोकभाषा कविसम्मेलन में मुझे पहली बार मंच पर खड़े

होकर कवितापाठ का अवसर मिला। मंच पर बालकवि बैरागी, गिरवरसिंह भँवर, सुल्तान मामा, भावार्थ बा सहित सभी बड़े कवि थे। तब मैंने मालवी बोली में एक कविता सुनाई थी, जो बाद में बहुत लोकप्रिय हुई। उस कविता की शुरुआत इस तरह थी–'जमानो बदली गयो भइ! जमानो बदली गयो/एक भइ दूसरा को दुश्मन बणी गयो/ जब चाचाजी चीन गया ओर चाउजी यहाँ पर आया था/तब दोइ जगऽ हिन्दी–चीनी भइ–भइ का नारा लग्या था/आज तो वो नारो उल्टो हुइ गयो/जमानो बदली गयो भइ, जमानो बदली गयो।' उसके बाद भी सालों तक कविसम्मेलनों में जाता रहा, फिर यह सब कवि–गोष्ठियों तक सिमट गया। आगे चलकर अब तो वह भी नहीं। कविताएँ लिखता हूँ, वे छपती हैं। लोग फोन कर अपनी प्रतिक्रिया देते हैं आजकल।

डॉ. विकास दवे : कविता के अलावा गद्य भी आपने लिखा ही होगा? उपन्यास या नाटक की ओर आपकी प्रवृत्ति नहीं हुई?

डॉ. चाँदनीवाला : हाँ। सत्रह वर्ष की आयु में मैंने एक उपन्यास लिखा था–'साकार स्वप्न'। वह किशोर मन की अभिव्यक्ति थी। उज्जैन से प्रकाशित होने वाले 'प्रजादूत' के सम्पादक रामकिशोर गुप्ता और प्रेमनारायण पंडित को वह बहुत पसंद आया। उन्होंने 24 किश्तों में उसे क्रमशः प्रकाशित भी किया। उसी वर्ष गाँधी–शताब्दी के मौके पर एक बड़ा नाटक लिखा था–'मार्गदर्शन'। यह नाटक डॉ. शिवमंगलसिंह 'सुमन' और राजेन्द्र अनुरागी की उपस्थिति में खेला गया और बहुत सराहा गया। बाद में कई नाटक लिखे। खास तौर पर वर्ष 1984 में वैदिक उपाख्यान पर आधारित नाटक 'शुनःशेप' सागर विश्वविद्यालय से प्रकाशित और आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी द्वारा सम्पादित 'नाट्यम्' में प्रकाशित हुआ। यह नाटक जगह–जगह खेला गया। इसका रेडियो रूपान्तर आकाशवाणी के इन्दौर केन्द्र से प्रसारित हुआ। अभी हाल ही मैंने भास के 'प्रतिमा' और भवभूति के 'उत्तररामचरित' की जुगलबंदी करता हुआ दस अंकों का नाटक 'प्रतिमोमत्तररामचरित' लिखकर पूरा किया है।

डॉ. विकास दवे : अन्य विधाओं पर आपकी कलम?

डॉ. चाँदनीवाला : व्यंग्य लिखे हैं, और वे प्रकाशित भी हुए। 'माट्साब इन फर्स्ट परसन', 'राष्ट्रपति पुरस्कार की एक जुगाड़', 'अथ तम्बाकू कथा', 'कल जाऊँगा वोट डालने', 'शवासन के बहाने' जैसी कई व्यंग्य रचनाएँ लोकप्रिय हुईं। मेरे ललित निबंध और समसामयिक विषयों पर लिखे गये आलेख देश भर के अखबारों और पत्रिकाओं में छपते रहे हैं। राष्ट्रीय संस्कृति से जुड़े विषयों पर लिखना मुझे बहुत अच्छा लगता है। अभी तक पाँच सौ से अधिक राष्ट्रीय महत्त्व के आलेख प्रकाशित हुए हैं। उनका बड़ा संग्रह प्रकाशित करने की योजना बन रही है।

डॉ. विकास दवे : अनुवाद की ओर आप कैसे मुड़ गये? एक कवि के लिये अनुवादक होने का अर्थ है– एक साथ दो दायित्वों का निर्वाह। आपने इसे किस तरह निभाया?

डॉ. चाँदनीवाला : अनुवाद में मेरी रुचि आरम्भ से ही थी। वर्ष 1982 अंतर्राष्ट्रीय बालवर्ष के मौके पर कालिदास अकादमी, उज्जैन ने मुझे महाकवि कालिदास रचित 'ऋतुसंहार' का बच्चों के लिये अनुवाद करने का काम सौंपा। यह बहुत चुनौतीपूर्ण था, किन्तु वह हुआ। कविवर शमशेरबहादुर सिंह, विद्वान् कमलेशदत्त त्रिपाठी, प्रभातकुमार भट्टाचार्य, श्रीनिवास रथ ने एक साथ बैठकर मुझसे सम्पूर्ण

ऋतुसंहार सुनकर मेरी पीठ थपथपायी। वह अनुवाद पुस्तक के रूप में अकादमी ने प्रकाशित किया। ऋतुसंहार के ग्रीष्म वर्णन का पहला पद यह था- 'लो, आ गये गर्मी के दिन/ दिन भर तपता सूरज/ साँझ सलौनी हो जाती है/ भला चंद्रमा करता मुझसे/मीठी-मीठी बात/ मन करता है/ गहरे पानी खूब नहाऊँ/ मैं दिन-रात।'

डॉ. विकास दवे : वैदिक ऋचाओं के अनुवाद की वास्तविक शुरुआत कब हुई? पहला प्रकाशन कब हुआ?

डॉ. चाँदनीवाला : वैदिक ऋचाओं के काव्यानुवाद की शुरुआत 1980 में ही हो गई थी। इन्दौर से प्रकाशित होने वाली लघुपत्रिका 'ऋतुचक्र' और 'तीर्थंकर' में ये अनुवाद प्रकाशित होने लगे। इसके लिये मैं नेमीचंद जी जैन को श्रद्धापूर्वक याद करता हूँ। उन दिनों कवि दिनकर सोनवलकर का हाथ मेरी पीठ पर था। फरवरी 1982 में अशोक वाजपेयी ने मध्यप्रदेश संस्कृति विभाग की पत्रिका 'पूर्वग्रह' की अनुषंग पुस्तक के रूप में मेरे अनुवादों का पहला संग्रह 'शब्द अपराजेय' प्रकाशित किया। भारत भवन के उद्घाटन के साथ इस पुस्तक का लोकार्पण हुआ, तो सहज ही इसकी धूम मची, आलोचना भी होने लगी। तब साक्षात्कार के सम्पादक सुदीप बैनर्जी थे। उन्होंने भी मेरे अनुवाद प्रकाशित किये। इसके एक साल बाद ही वैदिक ऋचाओं के काव्यानुवादों की बड़ी पुस्तक 'अक्षर व्योम' प्रकाशन संस्थान दिल्ली ने प्रकाशित की। उज्जैन के कालिदास प्रकाशन ने बच्चों के लिये वैदिक प्रार्थनाओं का एक संकलन 'आओ, प्रार्थना करें' इसी वर्ष प्रकाशित किया।

डॉ. विकास दवे : वैदिक ऋचाओं के अतिरिक्त भी आपने कई मौलिक अनुवाद किये हैं, जिन्हें हिन्दी के प्रबुद्ध पाठक बहुत चाव से पढ़ते रहे हैं। अपनी अनुवाद-यात्रा के बारे में भी बताइए।

डॉ. चाँदनीवाला : वैदिक ऋचाओं के अतिरिक्त 1985 में कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' का हिन्दी में लोकप्रिय संस्करण देववाणी प्रकाशन से प्रकाशित हुआ। इसी प्रकाशन से 'वैदिक शान्तिपाठ', 'शब्द चिरन्तन' और 'स्वर्ग के शिखाग्र पर' पुस्तकें कुछ-कुछ वर्षों के अंतराल से प्रकाशित हुईं। इस बीच दो बड़े काम हुए। एक तो श्री अरविन्द रचित संस्कृत काव्य पुस्तक 'भवानी भारती' का हिन्दी में पद्यानुवाद, जो बहुत बाद में श्री अरविन्द आश्रम पांडिचेरी ने मूलपाठ के साथ प्रकाशित किया। दूसरा श्री अरविन्द के सावित्री महाकाव्य के बुक-1 का अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद। इसके कुछ अंश इधर-उधर की पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। सम्पूर्ण अनुवाद अभी प्रकाशन की प्रक्रिया में है।

डॉ. विकास दवे : पाँच-सात वर्ष पहले आपकी वैदिक कविताओं की एक सुंदर पुस्तक हाथ में आई थी-'स्वर्णपात्र'। इस पुस्तक का विचार कैसे आया?

डॉ. चाँदनीवाला : 'स्वर्णपात्र' मेरी दो सौ वैदिक कविताओं का संकलन है। यह अर्यमा प्रकाशन से प्रकाशित हुआ ऐसा संकलन है, जिस पर मुझसे अधिक काम डॉ. ऋतम उपाध्याय और अमित श्रीवास्तव ने किया। इन दोनों ने बड़े श्रद्धाभाव से इसे प्रकाशित किया है। यह प्रकाशन वर्ष 2016 के दिसम्बर में हुआ। स्वर्णपात्र ने ही मेरे लिये आगे के द्वार खोले।

डॉ. विकास दवे : इसके बाद तो आपकी वैदिक कविताओं के लगातार चार खंड आ गये।

डॉ. चाँदनीवाला : हाँ। बोधि प्रकाशन, जयपुर से बात हुई थी। प्रकाशक माया मृग जी सुधी कवि

भी हैं। उन्होंने वैदिक कविताओं के प्रकाशन का महत्त्व समझ लिया था। योजना यह बनी, कि सम्पूर्ण ऋग्वेद की ऋचाओं का हिन्दी रूपान्तर एक बार क्रमबद्ध तरीके से दस खंडों में प्रकाशित हो जाए। यह काम कठिन जरूर था, लेकिन पाठकों के रुझान की वजह से आसान होता चला जा रहा है। मैं समझता हूँ, 2023 के अंत तक यह अनुष्ठान भी पूर्ण हो जायेगा।

डॉ. विकास दवे : वेदों को हम कर्मकाण्ड से जोड़कर देखते आये हैं। कभी इस ओर ध्यान ही नहीं गया कि वहाँ अद्‌भुत कविता उपस्थित है। आपकी वैदिक कविताओं को पढ़ने के बाद पहली बार लग रहा है कि विश्व कविता के फलक पर भी भारत ही सबसे ऊपर खड़ा है।

डॉ. चाँदनीवाला : हाँ। आपने ठीक ही कहा। दयानंद सरस्वती ने वेदों की ओर लौटने का आह्वान किया, तो वेदामृत कर्मकाण्ड की चौखट से बाहर बहता हुआ दिखाई देने लगा। वेद केवल मंत्रों और प्रार्थनाओं का साहित्य नहीं है, वह मनुष्य के छोटे से छोटे और बड़े से बड़े खोजपूर्ण अभियानों का खुला हुआ दस्तावेज भी है। आदिकाल के भौतिक जीवन में मनुष्य को जो-जो लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं, उनके सब विवरण ऋग्वेद में यहाँ-वहाँ बिखरे हुए हैं। तब जीवन बहुत कठिन था। उस दौर के मनुष्य की चेतना की गहराई समझ पाना आसान नहीं है। आज हमारी कठिनाई यह है कि वैदिक भाषा दुरूह लगती है, और वैदिक छंदों में ढँके हुए मानवशास्त्र को अब तक कोई खोल कर भी देख नहीं पाया। हजारों हजार वर्षों में जो कोशिशें हुईं, वह ब्राह्मणों, आरण्यकों, उपनिषदों और धर्मसूत्रों में दिखाई तो देती हैं, लेकिन वे कोशिशें भी पूरी तरह सफल नहीं हैं। हमें अपने प्रयास और तीव्रतर करने होंगे।

डॉ. विकास दवे : वेदों की भाषा बहुत कठिन है। उसमें आये शब्दों का अर्थ करना बड़ी टेढ़ी खीर समझी जाती है। आपमें यह उद्यम करने का साहस कैसे हुआ?

डॉ. चाँदनीवाला : वैदिक ऋषियों के पास अपनी भाषा ही नहीं थी, अपना मौलिक प्रतीकशास्त्र भी था। उस प्रतीकशास्त्र को खोलने की कुंजी हमें युगद्रष्टा श्रीअरविन्द ने दी। श्री अरविन्द चाहते तो सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय का भाष्य कर सकते थे, किन्तु उन्होंने अपने 'वेदरहस्य' में वैदिक प्रतीकों के अर्थ खोलकर रख दिये, और हमारा काम आसान कर दिया। मुझमें जो भी साहस जागा, वह श्रीअरविन्द की प्रेरणा है।

डॉ. विकास दवे : वेदों के जो भाष्य हुए हैं पिछले डेड़ हजार वर्षों में, क्या हमें उनसे कुछ भी सहायता नहीं मिलती?

डॉ. चाँदनीवाला : नहीं। ऐसा नहीं है। उनके बड़े उपकार हैं हमारे ऊपर। वे हमारे लिये दीपस्तम्भ की तरह हैं। लेकिन सब भाष्यकारों ने अपनी समझ, अपने समाज की आवश्यकता और समकालीन शास्त्र के तय मापदंडों के अनुसार ही भाष्य लिखे, वे भले ही आचार्य सायण हों या महर्षि दयानंद हों। इन महान् भाष्यकारों का योगदान अमूल्य है, किन्तु वेदार्थ अब भी स्वर्णपात्र में ढँका हुआ है।

डॉ. विकास दवे : तब फिर यह प्रश्न तो उपजता ही है कि ऋषियों ने विषयवस्तु को इतना गोपन क्यों रखा? उसे इतने प्रतीकों में ढँक कर क्यों रखा गया?

डॉ. चाँदनीवाला : ऋषियों ने किसी भी रहस्य को, जिसे वे 'निण्या वचांसि' कहते थे, अपने तक सीमित नहीं रखा, अपितु वैदिक भाषा और वैदिक छंद में सुसज्जित कर उसे काल के प्रवाह में जाने दिया है। यही कविता का धर्म भी है। यदि वे ऐसा न करते, तो आज सनातन धर्म के नाम पर हमारे पास कोई

पूँजी नहीं होती, न आरण्यक होते, न उपनिषद होते, न गर्व करने योग्य प्राच्य विद्या होती।

डॉ. विकास दवे : तब क्या देवता भी प्रतीकात्मक हैं? क्या वे भी अपने स्थूल रूप को छोड़कर भिन्न अर्थ देते हैं?

डॉ. चाँदनीवाला : हाँ। ठीक ऐसा ही है। ऋग्वेद के अग्निसूक्तों को पढ़ते हुए विलक्षण अनुभूतियाँ होती हैं, तो उसका सबसे बड़ा कारण यह है कि ऋषि हमें स्थूल अग्नि के ब्यौरे नहीं दे रहा है, वह चिरन्तन अग्नि को खोज लाया है, जो सृष्टि के मूल में है। वह उस परम ज्योति को देख आया है, जो मनुष्य को महान् सत्य का दर्शन कराने के लिये प्रतिबद्ध है।

डॉ. विकास दवे : वेदों में काव्य सौन्दर्य के क्या मानक हैं? वैदिक ऋचाएँ आपको कविता जैसी क्यों लगती हैं?

डॉ. चाँदनीवाला : वे विश्व की आदिम कविताएँ हैं, और वैदिक ऋषियों को अपने लिये 'कवि' का ही सम्बोधन प्रिय है। आदिम कविता का सौन्दर्य देखने की इच्छा हो, तो ऋग्वेद के उषासूक्तों में चले जाइए। ऋग्वेद में लगभग चार सौ सूक्त ऐसे हैं, जहाँ एक ओर काव्यात्मक सौन्दर्य अभिभूत कर देता है, वहीं दूसरी ओर इन सूक्तों की मनोरम ऋचाएँ जीवन में नई उमंग और नई चेतना जगाने का काम करती है। इन सूक्तों को पढ़ते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि हम प्रकाश की नित्य यात्रा में हैं, और उषा इष्टदेवी की तरह हमारे आगे-आगे चल रही है।

डॉ. विकास दवे : एक जगह ऋषि कहता है कि उषा लाल रंग की धेनुओं को जोतती हुई आती है। वह ज्योतिर्मय रंगों से चित्र बनाती हुई सब दिशाओं में फैल जाती है। स्वर्णिम रश्मियों से जब वह सुंदर-सुंदर वीथियाँ बनाती है, तब सम्पूर्ण प्रकृति वंदना में उठ खड़ी होती है, और उसकी नीरव प्रार्थना से सर्वत्र शान्ति छा जाती है।

डॉ. चाँदनीवाला : वैदिक ऋषि उषा से पूछता है कि 'हे सुन्दरी! तुम द्युलोक से चल कर यहाँ इतने नीचे उतर कर क्यों आती हो?' उषा प्रत्युत्तर देती है कि 'मैं यहाँ अमृतपुत्रों से मिलने के लिये आती हूँ। मैं उन पर आशीषों का समन्दर लुटाने के लिये आती हूँ। मैं धरती पर वैसा ही प्रकाश उगाने आती हूँ, जैसा कभी मैंने सुदूर अतीत में उगाया था।'

डॉ. विकास दवे : कोई एक ऋचा और उसका अनुवाद सुनाइए, जो आप ठीक समझते हों।

डॉ. मुरलीधर चाँदनीवाला : आपो हिष्ठा मयो भुवस्तान ऊर्जे दधातन।
महे रणाय चक्षसे।।
यो व: शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह न:।
उशतीरिव मातर:।।
तस्माअरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।
आपो जनयथा च न:।।

ये ऋग्वेद के दशम मंडल के नौवें सूक्त की ऋचाएँ हैं। यहाँ ऋषि जल से प्रार्थना करता है-
हे जल!
तू हमें अपनी ऊर्जा से भर दे।

मेरी वाणी में तेरी सरलता हो,
मेरी आँखों में तेरी तरलता हो।।1।।
हे जल!
तेरे भीतर छिपा हुआ रस
सबके कल्याण के लिये है।
हमारे जीवन में वह रस
वैसे ही घुल जाये,
जैसे माँ का दूध घुल जाता
हम सबमें ममता बन कर।।2।।

हे जल!
हम तेरे ही गीत गाते हैं,
क्योंकि तू हमारे होने की
अभीप्सा से भरा है।
तू है तो हमारी जन्मकथा है,
तू है तो गूँज उठतीं जीवन-ऋचाएँ।।3।।

डॉ. विकास दवे : आप क्या भविष्य देखते हैं? क्या भारतीय मानस करवट ले रहा है? आपकी आगे की योजना क्या है?

डॉ. चाँदनीवाला : भविष्य तो सुंदर और सकारात्मक ही दिखाई देता है। लोग समझ रहे हैं कि वेदों की ओर लौटना पीछे लौटना नहीं है। प्राच्य विद्या के प्रति आकर्षण बहुत तीव्रता से बढ़ रहा है। इसका एक कारण यह भी है, कि पाश्चात्य जीवनशैली ने हमें हताश ही किया है। अशान्ति है, उद्वेग है, और इसके साथ भारतीयों में अपनी जड़ों से कटते चले जाने का दु:ख भी है। नवतरुणों में भी वेद-उपनिषद् और गीता का स्वाध्याय करने की रुचि दिखाई देने लगी है। ये बहुत अच्छे संकेत हैं। मेरी योजना चारों वेदों के हिन्दी में सरल रूपान्तर की है। इच्छा यह भी है, कि वेदों के अर्थ करने की सरल पद्धति पर एक ग्रंथ लिखूँ, जिसके साथ वैदिक शब्दकोश भी हो।

निश्चय ही यह आपकी महत्त्वाकांक्षी योजना है। मुझे पूरा भरोसा है कि यह योजना मूर्त रूप लेगी। मैं आपके स्वस्थ और मंगलमय भविष्य की कामना करता हूँ।

सम्पर्क : रतलाम
मो. 9424869460

डॉ. दिनेश पाठक 'शशि'

हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानी के कथाशिल्पी चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

कहा जाता है कि मनुष्य के जीवन में यश और अपयश का मिलना ईश्वराधीन होता है। संत शिरोमणि तुलसीदास जी ने भी श्रीरामचरित मानस में यही लिखा है-

हानि लाभ जीवन मरण/ यश-अपयश विधि हाथ।

प्रख्यात साहित्यकार चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जी के जीवन के पन्ने पलटते समय यह बात मेरी स्मृति में बार-बार दोलन करती रही है। ताउम्र अनेक ग्रन्थों का प्रणयन करने के बावजूद बहुत से साहित्यकार हैं जिनके नाम को अपने ही नगर के निवासी नहीं जानते लेकिन माँ सरस्वती की अनुकम्पा देखिए कि एक भी ग्रन्थ के प्रकाशित न होने पर भी और अल्पायु मात्र 39 वर्ष के जीवन में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जी की एक कहानी-'उसने कहा था' के सृजन ने उन्हें हिन्दी कथा साहित्य जगत में विश्वविख्यात कर दिया।

उपलब्ध तथ्यों के आधार पर श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जी का जन्म 7 जुलाई, 1883 को पंडित शिवराम शास्त्री और उनकी तीसरी पत्नी लक्ष्मीदेवी के पुत्ररूप में राजस्थान की वर्तमान राजधानी जयपुर में हुआ था।

यद्यपि कुछ लोग उनका जन्म हिमाचल प्रदेश के गुलेर गाँव, काँगड़ा, में हुआ भी मानते हैं। इसका मुख्य कारण जो प्रतीत होता है वह यह कि चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जी के पिताजी पंडित शिवराम शास्त्री मूलतः हिमाचल प्रदेश के गुलेर गाँव के निवासी थे। किन्तु यह तथ्य वास्तविकता के अधिक निकट लगता है कि उनके पिता ज्योतिर्विद महामहोपाध्याय पंडित शिवराम शास्त्री को उनकी विद्वता से प्रभावित होकर जयपुर नरेश महाराजा रामसिंह उनको गुलेर ग्राम से जयपुर ले आए थे और राजसम्मान प्रदान करते हुए जयपुर (राजस्थान) में ही बसा दिया था। वहीं पर उनकी तीसरी पत्नी लक्ष्मीदेवी ने 07 जुलाई 1883 को चन्द्रधर को जन्म दिया था। इस प्रकार गुलेरी जी का सम्बन्ध राजपंडित घराने से रहा।

चंद्रधर शर्मा गुलेरी जी ने दर्शनशास्त्र में एम.ए. किया। विद्वान् पिता के विवेकवान पुत्र चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जी बचपन से ही विलक्षण प्रतिभावान थे। जब गुलेरी जी दस साल के ही थे तो उन्होंने एक बार संस्कृत में भाषण देकर भारत धर्म महामंडल के विद्वानों को हैरान कर दिया था। पंडित कीर्तिधर शर्मा गुलेरी का यहाँ तक कहना था कि वे पाँच साल में अंग्रेजी का टेलीग्राम अच्छी तरह पढ़ लेते थे। चन्द्रधर ने अपनी सभी परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी से पास कीं। चन्द्रधर बी.ए. की परीक्षा में भी प्रथम श्रेणी में रहे। उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा भी प्राप्त की और प्रथम श्रेणी में पास होते रहे।

कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम.ए. प्रथम श्रेणी में दूसरे स्थान पर और प्रयाग विश्वविद्यालय से बी.ए. प्रथम श्रेणी में पहले स्थान से पास की। उन्होंने अपने अध्यवसाय से अनेक भाषाओं यथा संस्कृत,

हिन्दी, अंग्रेजी, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश पर गहन अध्ययन करके असाधारण रूप से अधिकार प्राप्त किया था। इतना ही नहीं उन्होंने मराठी, बंगला, लैटिन, फ्रैंच, जर्मन आदि भाषाओं की भी अच्छी जानकारी प्राप्त की थी। अगर सही कहा जाये तो चन्द्रधर शर्मा जी के अध्ययन का क्षेत्र बहुत ही व्यापक था। चाहे साहित्य की बात हो या दर्शन शास्त्र की, भाषा विज्ञान की बात हो या फिर प्राचीन भारतीय इतिहास और पुरातत्त्व ज्योतिष की, सभी विषयों में उन्होंने महारत हासिल की थी।

गुलेरी जी ने सन् 1903 ई में जयपुर से समालोचक नामक पत्र भी प्रकाशित किया और कई वर्ष तक उसके सम्पादक रहे। उन्होंने कहानी व निबंध विधा में लेखन के अतिरिक्त सम्पादक, शिक्षक एवं इतिहासकार के रूप में भी कार्य किया। सन् 1904 से सन् 1922 ई. तक विभिन्न संस्थानों में उन्होंने शिक्षण कार्य भी किया। इतिहास क्षेत्र में योगदान के लिए उनको 'इतिहास दिवाकर' सम्मान से सम्मानित भी किया गया। 1904 ई. में गुलेरी जी मेयो कॉलेज, अजमेर में अध्यापक के रूप में कार्य करने लगे। गुलेरी जी का अध्यापक के रूप में बड़ा मान-सम्मान था। अपने शिष्यों में चन्द्रधर लोकप्रिय तो थे ही, इसके साथ अनुशासन और नियमों का वे सख्ती से अनुपालन करते थे। उनकी असाधारण योग्यता से प्रभावित होकर पंडित मदनमोहन मालवीय ने उन्हें बनारस बुला लिया और हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के पद पर आसीन कराया। सन् 1916 ई. में उन्होंने मेयो कॉलेज में ही संस्कृत विभाग के अध्यक्ष का पदभार भी सँभाला। फिर प्राचीन इतिहास और धर्म से सम्बद्ध मनीन्द्रचन्द्र नन्दीपीठ के प्रोफेसर का कार्यभार भी ग्रहण किया। 11 फरवरी 1922 को उन्हें पं.मदनमोहन मालवीय जी के आग्रह पर काशी के हिंदू विश्वविद्यालय के प्राचार्य पद पर भी सुशोभित किया गया।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' हिन्दी साहित्य के जाने-माने साहित्यकार तो थे ही बीस साल की आयु से पहले ही उन्हें जयपुर की वेधशाला के जीर्णाद्धार एवं उससे जुड़े शोधकार्य के लिए गठित मण्डल में चुन लिया गया था। उन्होंने कैप्टन गैरेट के साथ मिलकर 'द जयपुर ऑब्जरवेटरी एण्ड इट्स बिल्डर्स' शीर्षक से अंग्रेजी ग्रन्थ की रचना की थी। अध्ययन काल के दौरान ही उन्होंने सन् 1900 ई. में जयपुर में नागरी मंच की स्थापना में योगदान दिया और कुछ वर्ष काशी की नागरी प्रचारिणी सभा के सम्पादक मंडल में भी उन्हें सम्मिलित किया गया। उन्होंने देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला और सूर्यकुमारी पुस्तकमाला का सम्पादन किया और नागरी प्रचारिणी सभा के सभापति भी रहे।

गुलेरी जी श्रेष्ठ निबंधकार, कहानीकार, इतिहासकार तथा ज्योतिषाचार्य थे। इनकी भाषा-शैली में व्यंग्य विनोद की प्रधानता दृष्टव्य है। यही कारण था कि चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जी ने इन विषयों पर खूब लिखा और साधिकार लिखा। उनकी रचनाओं में बीच-बीच में वेद, उपनिषद, सूत्र, पुराण, रामायण, महाभारत के संदर्भों का भरपूर उल्लेख रहता था।

गुलेरी जी के विविध साहित्यिक रूप हैं जिनसे आम जनमानस अनभिज्ञ ही है। वे मुख्यत: निबंधकार एवं भाषा वैज्ञानिक थे। उन्होंने सौ से अधिक निबन्ध लिखे जिनमें से कुछ के नाम हैं-

1. शैशुनाक की मूर्तियाँ, 2. छेवकुल, 3. पुरानी हिन्दी, 4. संगीत, 5. कच्छुआ धर्म, 6. आँख, 7. मोरेसि मोहिं कुठा।

उन्होंने काव्य विधा में भी अपनी लेखनी चलाई फलस्वरूप उनकी कुछ काव्य रचनाएँ हैं-

1. एशिया की विजय दशमी, 2. भारत की जय, 3. वेनॉक बर्न, 4. आहिताग्नि, 5. झुकी कमान, 6. स्वागत, 7. ईश्वर से प्रार्थना।

अगर कहानी विधा में उनके लेखन की बात करें तो उन्होंने अपने सम्पूर्ण जीवन काल में मात्र तीन कहानियाँ ही लिखीं। यह माँ सरस्वती की विशेष अनुकम्पा नहीं थी तो और क्या था कि उन तीन कहानियों में से भी उनकी केवल एक कहानी-'उसने कहा था' जो सन् 1915 में सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित हुई थी, ने उनको विश्वविख्यात कर दिया। 'उसने कहा था' के अतिरिक्त जो अन्य दो कहानियाँ उन्होंने लिखीं उनके नाम हैं- 1. सुखमय जीवन, 2. बुद्धू का काँटा।

इतने विविध विषयों पर प्रचुर मात्रा में अपनी लेखनी चलाने के बावजूद हिन्दी साहित्य की पुस्तक रूप में, उनकी एक भी कृति का प्रकाशन नहीं हुआ। इसलिए जनमानस के मध्य उनकी रचनाओं पर विस्तृत विचार- विमर्श न हो पाना एक मुख्य कारण रहा कि उनको उन सब विविध विषयों ने कोई विशेष ख्याति प्रदान नहीं की जितनी कि उनको मिलनी चाहिए थी।

किन्तु विधिना के लेखे में उन्हें विश्वविख्यात तो होना ही था। वे हिन्दी के प्रारम्भिक कथाकार थे। उन्हें द्विवेदी युग का प्रथम कलात्मक कहानीकार माना जाता है। वे ऐसे प्रथम कहानीकार हैं, जिन्होंने हिंदी जगत में पाश्चात्य; कहानी कला के आधार पर कहानियाँ लिखीं।

'उसने कहा था' कहानी जिसने गुलेरी जी को अमर कर दिया, प्रथम विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि पर रचित एक सफल व सक्षम कहानी है। यह हिंदी की प्रथम कलात्मक प्रेम कहानी कही जा सकती है, जिसमें सुगठित कथानक, सजीव चित्रांकन और वातावरण का चित्रण तथा भाषा तकनीक में नवीनता एवं उद्देश्यनिष्ठता परिलक्षित होती है-

आखिर ऐसा क्या था इस कहानी में जिसने अकेले ही अपने रचयिता को अमर कर दिया?

'उसने कहा था' प्रथम विश्वयुद्ध के तुरंत बाद लिखी गई थी। तुरंत घटित को कहानी में लाना उसके यथार्थ को इतनी जल्दी और इतनी बारीकी से पकड़ पाना आसान नहीं होता पर चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जी ने यह कर दिखाया और खूब किया। इस कहानी में प्रेम से भी ज्यादा युद्ध का वर्णन और माहौल है। यह कहानी सिद्ध करती है कि युद्ध हमेशा प्रेम को लीलता और नष्ट करता है।

किसी कहानी को अमर बनाने वाला सबसे बड़ा गुण होता है कि वह आपको बार-बार पढ़ने के लिए उकसाए और बार-बार मन में अटकी सी रह जाए। हर बार के पाठ में उसके नए अर्थ और संदर्भ खुलें, 'उसने कहा था' इस कसौटी पर खरी उतरती है।

'कहानी का 12 वर्षीय नायक सिख लहना सिंह और 8 वर्षीया सिख बालिका दोनों ही अपने-अपने मामा के यहाँ अमृतसर आये हुए हैं जहाँ बाजार में दूसरे-तीसरे दिन एक-दूसरे की मुलाकात हो जाती है। नायक बालिका से प्रभावित होकर बार-बार पूछता है- तेरी कुड़माई अर्थात् सगाई हो गई?

उत्तर में लड़की कुछ दिनों तक धत् कहकर भाग जाती है, किन्तु एक दिन वह कहती है- हाँ हो गई है।

तभी वह अबोध बालक अशांत हो उठता है। रास्ते में कई लोगों को धकियाते हुए अपने घर पहुँचता है।

12 साल के उस बच्चे की मन:स्थिति के बाद बिना यह बताये कि फिर क्या हुआ था। कहानी बीच के अंतराल को खाली छोड़ते हुए सीधे 25 साल आगे युद्ध के मैदान तक एक लंबी छलाँग लगाती है। वहाँ के भारतीय सैनिकों, उनकी चुहलबाजियों, अपने वतन की याद और स्मृतियों के बीच।

युद्ध और प्रेम इस कहानी के दो कोण हैं या कहिए दो सिरे हैं। पाँच खण्डों में और 25 वर्षों के लंबे अंतराल को खुद में समेटती यह कहानी विषय और अपने अद्‌भुत वर्णन में किसी उपन्यास जैसी है, प्रेम, कर्तव्य और देशप्रेम के तीन मूल उद्देश्यों से जुड़ती हुई।

सिर्फ 12 वर्ष की छोटी-सी उम्र में लहना सिंह उस नन्हीं बालिका (जो बाद में सूबेदारनी कहलाई) को दिए वचन की खातिर 37 साल की उम्र में अपने परिवार और सपनों की परवाह न करते हुए उसके घायल बेटे को उसके पति के साथ घर भेजकर, खुद के लिए मृत्यु चुन लेता है।

सूबेदारनी ने लहना सिंह से कहा था कि मेरे पति और बेटे की रक्षा करना जिसे लहना सिंह ने अपनी जान की बाजी लगाकर पूरा किया।

कहानी को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाते हुए गुलेरी जी कहानी के नायक लहना सिंह से जो विश्वयुद्ध में घायल होकर मृत्यु शैया पर पड़ा है, कहलवाते हैं कि सरदारिनी जी से कहना, उसने जो कहा था, कर दिया....

इस प्रकार पढ़ते-पढ़ते ही पाठक के रोंगटे खड़े कर देने वाली इस कहानी ने चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जी को अमर साहित्यकार बना दिया।

यद्यपि चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जी का देहावसान पीलिया और फिर तेज बुखार हो जाने के कारण 12 सितम्बर सन् 1922 ई. को काशी में मात्र 39 वर्श की आयु में हो गया था। मात्र 39 वर्ष की जीवन-अवधि को देखते हुए गुलेरी जी के लेखन का परिमाण और उनकी विषय-वस्तु तथा विधाओं का वैविध्य सचमुच विस्मयकारक तो है ही लेकिन -'उसने कहा था' कहानी के कारण सरस्वती के वरद्‌पुत्र, महान साहित्यकार को युगों-युगों तक याद किया जाता रहेगा। इसमें संदेह नहीं।

सम्पर्क : मथुरा (उ.प्र.)
मो. 9870631805

डॉ. राजीव अग्रवाल

विज्ञान लोकप्रियकरण और रवि लायटू का अवदान

आज मैं लोकप्रिय बाल-विज्ञान लेखक, चित्रकार, डिजाइनर और कलाकार श्री रवि लायटू (Ravi Laitu) जी की एक पुस्तक 'मेरा बाल-विज्ञान लोकप्रियकरण' देख रहा था।

बरेली निवासी, 74 वर्षीय श्री लायटू जी, अपने नाम का विलोम करके बने, 'आयवर यूशियल' (Ivar Utial) के छद्म नाम से लिखते हैं। लेखन, विशेष रूप से बाल-विज्ञान के लेखन, के क्षेत्र में वह एक स्थापित नाम हैं और, मेरे सौभाग्य से, सोशल मीडिया पर वह मेरे वैचारिक मित्र हैं।

यह पुस्तक जहाँ एक युवा इंजीनियर लड़के रवि के अपने पिता की असमय मृत्यु के बाद एक डिजाइनर, एक कलाकार और फिर एक बाल-विज्ञान लेखक बनने की कहानी और उसकी सफलता का एक दस्तावेज है वहीं यह बालकों के लिए विज्ञान-लेखन पर अनेक प्रश्न उठाती है और अनेक बातें सोचने पर विवश करती है। सफलता की यह कहानी यह भी दिखाती है कि किस प्रकार नियति और संयोग व्यक्ति के जीवन को एक दिशा और दशा देते हैं, किस प्रकार मनुष्य का उद्यम उनमें रंग भरता है और कैसे ये संयोग और ये उद्यम जीवन को अनपेक्षित मोड़ों पर ले जा सकते हैं।

यह पुस्तक विभिन्न समयों और विभिन्न अवसरों पर लिखे गए उनके लेखों, साक्षात्कार और भाषण का संग्रह है। इन लेखों के माध्यम से श्री लायटू जी ने अपने सार्थक जीवन से अनेक मोती चुन कर सामने रख दिए हैं। उनकी यह पुस्तक उन गांधारी-पुत्रों को समर्पित है जिन्होंने देश के लाखों बच्चों की आशाओं और आकांक्षाओं को नजरअंदाज कर अपनी नयी पीढ़ी को पूरी तरह उपेक्षित कर दिया।

आँखों पर पट्टी बाँधे हुए उन गांधारी-पुत्रों को यह समर्पण यह दिखाता है कि कैसे उन संवेदनहीन और अंतर्दृष्टि न रखने वाले अधिकारियों के लिए चाटुकारिता और व्यक्तिगत मेल-मुलाकात ही महत्त्वपूर्ण थी-योग्यता नहीं। यह समर्पण उन पर एक कटाक्ष है।

यह पुस्तक इस बात का दस्तावेज है कि किस प्रकार श्री लायटू जी को बच्चों का प्रेम प्राप्त हुआ, किस प्रकार उन्होंने अनुभव किया कि कैसे बच्चे हिन्दी में अच्छी विज्ञान पत्रिकाएँ पढ़ना चाहते हैं और कैसे निर्धनता उनके कदम रोकती है। मैंने अपनी मेडिकल प्रैक्टिस में यह अनुभव किया था कि मेरे निवास-क्षेत्र के बच्चे विज्ञान में बहुत रुचि नहीं रखते हैं। उन्हें यह भी नहीं मालूम होता है कि दिन-रात क्यों होते हैं और मौसम क्यों बदलते हैं। लेकिन श्री लायटू जी का अनुभव कहता है कि हमारे देश के बच्चे, विशेष रूप से बिहार और मध्य प्रदेश के बच्चे, इस विषय में जिज्ञासु हैं। केवल उनके लिए कुछ

किए जाने की आवश्यकता है।

उन्होंने लिखा है कि किस प्रकार छोटे-छोटे प्रयोगों के माध्यम से खेल-खेल में बच्चों को विज्ञान सिखाया जा सकता है। कैसे उन्हें विज्ञान और गणित को नीरस विषय अथवा कोई डरावनी चीज समझने के स्थान पर रोचक विषय समझने के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

उन्होंने चेन्नई के बच्चों का एक उदाहरण दिया है कि कैसे एक बच्चे राघवन के जन्मदिन पर उन्हें मालूम पड़ा कि वे बच्चे हर बच्चे के जन्मदिन को किसी वैज्ञानिक प्रयोग और उसके स्पष्टीकरण से मनाते थे। उन्होंने सोडा वाटर और सिरके में नैफ्थलीन की गोलियों के प्रयोग के विषय में लिखा है।

मैं कहना चाहूँगा कि यह साधारण सा प्रयोग किसी भी बच्चे को बहुत सी बातें सिखाता है। सिरके और सोडे का रासायनिक सूत्र क्या होता है, उनमें परस्पर क्या क्रिया होती है, कैसे उससे कार्बन डाइऑक्साइड गैस बनती है (यह हिस्सा रसायन शास्त्र का है), फिर क्यों Interatomic forces के कारण गैस के बुलबुले नैफ्थलीन की गेंदों पर चिपक जाते हैं। कैसे आर्किमिडीज के सिद्धान्त के अनुसार उनका घनत्व कम होने पर वह एक fluid में ऊपर उठ जाते हैं (यह हिस्सा भौतिक शास्त्र का है)। यहाँ पर हम गहरे जाने पर आर्किमिडीज के सिद्धान्त के Molecular basis पर भी सोच सकते हैं। कैसे ऊपर सतह पर आकर यह बुलबुले पृष्ठ तनाव (surface tension) के कारण टूट जाते हैं और नैफ्थलीन की गेंदें अधिक घनत्व की हो जाने के कारण डूब जाती हैं। इस प्रक्रिया में अनेक बल लगते हैं-lift, drag, viscosity, different intermolecular forces आदि। हम जितना सोचते जाएँगे, हमारे सामने ज्ञान के उतने ही क्षेत्र खुलते जाएँगे।

यदि हम इस तरह के छोटे-छोटे प्रयोगों में, खेल-खेल में, बच्चों के अंदर एक जिज्ञासा और किसी बात के सही कारण को ढूँढ़ने की इच्छा जागृत कर सकें तो उनमें से अनेक आगे चल कर जगदीश चंद्र बसु, रामानुजन और होमी जहाँगीर भाभा बन सकते हैं। श्री लायटू जी ने भी यही बात कहनी चाही है।

इस पुस्तक में विभिन्न विषयों पर श्री लायटू जी के लिखे हुए लेख बहुत अच्छे हैं। कॉमिक्स और चित्रों का महत्त्व, घर की पाठशाला का महत्त्व, क्यों शैशवावस्था और बाल्यावस्था की यादें और शिक्षा बहुत महत्त्वपूर्ण होती है आदि। उन्होंने यह कितना अच्छा लिखा है, और बड़े हो चुके एक बालक के प्रश्न के उत्तर में यह कितना अच्छा कहा है, कि उच्च और सच्ची शिक्षा ही वास्तविक पारस पत्थर होती है- इससे ही तो मनुष्य खरा सोना बनता है। उनके बाल पाठकों का बचपन से लेकर बड़े होने तक उनसे जुड़ा रहना एक लेखक और एक मनुष्य के रूप में उनकी बहुत बड़ी उपलब्धि है।

इस पुस्तक में उनका एक-एक लेख बहुत कुछ कहता है। 'पुस्तकों से बढ़ती दूरी : दोषी कौन?' 'उड़न खटोले या सचमुच के रॉकेट', 'परी कथाएँ अथवा आधुनिक विज्ञान कथाएँ', निरंकार देव 'सेवक' पर लेख-उनका एक-एक लेख पढ़ने योग्य है। 'गणित की नासमझी से अपमानित हुआ राजा'- इस कहानी में शतरंज के 64 खानों में रखे गेहूँ के दानों की संख्या की गणना करने का कितना सुन्दर तरीका उन्होंने बताया है। इसी प्रकार 'अनियंत्रित जनसंख्या' में भी गणना का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। कहानी के रूप में प्रस्तुत ये तरीके बच्चों के मन में गणित के प्रति रुचि पैदा करते हैं।

श्री लायटू जी ने एक आसान सी गणना करके बताया है कि हम 1 का दुगुना 2, उसका दुगुना 4, इस प्रकार 64 बार करें तो अंत में हमें संख्या मिलेगी-18, 446, 744, 073, 709, 551, 615 और गेहूँ के दानों के रूप में इस

संख्या को उगाने और रखने के लिए सारे संसार के खेत और गोदाम कम पड़ जाएँगे। उन्होंने कहानी के माध्यम से इस समस्या का कितना अच्छा हल दिया है कि राजा को फ़कीर से केवल यह कहना था कि वह इन दानों को स्वयं गिन लें। हम समझ सकते हैं कि ये कहानियाँ बच्चों के मन में गणित और विज्ञान के प्रति कितनी रुचि जगाती हैं और श्री लायटू जी के जीवन के बाल-विज्ञान सम्बन्धी कार्य का यही उद्देश्य रहा है। मैं यहाँ पर यह कहना चाहूँगा कि संख्याओं और गणित का यह संसार कितना रोचक है। किस प्रकार थोड़ा-थोड़ा करके संख्याएँ बहुत घट और बढ़ जाती हैं। यदि हम किसी चीज-मान लीजिए एक सेब-के आधे-आधे दो टुकड़े कर दें, और फिर उनमें से एक टुकड़े को फिर दो टुकड़ों में बाँट दें तो इस प्रकार लगभग 80 बार काटने पर हम कार्बन, हाइड्रोजन या आक्सीजन के एक परमाणु तक पहुँच जाएँगे जो साधारण साधनों से अविभाज्य होगा।

श्री लायटू जी की इस पुस्तक में 'वनस्पतियों की गति और संवेदनशीलता', 'बाल-मेलों में पुस्तकों के स्टॉल से बच्चों को हटाती माताएँ' और श्री लायटू जी के 'पिता का टाइपराइटर'-ये सारे लेख बहुत अच्छे हैं। टाइपराइटर वाले लेख को पढ़कर मुझे भी अपने पिता के एक टाइपराइटर की याद हो आयी जो मैं अपने बचपन में देखता था। ये लेख विज्ञान में बच्चों की रुचि को जगाते हैं और उस के विषय में हमें बताते हैं। इस पुस्तक से उन के माता और पिता के आदर्श, उनकी बौद्धिकता और आदर्शवादिता का परिचय भी मिलता है। इस सन्दर्भ में उन्होंने यह कितनी अच्छी बात लिखी है कि सफलता की कोई एक निश्चित परिभाषा नहीं हो सकती है-जहाँ स्नेही पत्नी और प्यारे बच्चों के साथ एक छोटी सी नौकरी में संतुष्ट रहना भी सफलता माना जा सकता है, वहीं बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियों का मालिक भी अपने को असफल मान सकता है।

उनके 'हम जीव-जन्तु' पुस्तक की भूमिका लिखाने के लिए वन्यजीव-लेखक रमेश बेदी के संस्मरण, विभिन्न पुस्तक प्रकाशकों के उनके अनुभव और अंय अनेक संस्मरण अपनी कहानी स्वयं कहते हैं। उनकी पुस्तकों-'101 साइंस गेम्स', '101 साइंस एक्सपेरीमेंट्स' और '101 मैजिक ट्रिक्स' को मिली आशातीत सफलता बाल-विज्ञान के क्षेत्र में उनके योगदान की कहानी को कहती है।

उनकी पहली पुस्तक 'हम जीव-जन्तु' पर उनके मित्र बृजेश्वर मदान जी की यह टिप्पणी कितनी अपनत्व भरी है-'वाह गुरु! लेखक अपने कुनबे के बारे में आखिरी दौर में लिखते हैं। तुमने किताबें लिखने की शुरुआत ही अपनी आत्मकथा और कुनबे की जानकारी के साथ कर डाली!'

उनकी इस पुस्तक की भाषा बहुत सहज और सरल है। इसमें एक अच्छी हिन्दी दिखाई पड़ती है। एक दक्ष लेखक के दर्शन इसमें होते हैं-यद्यपि कुछ स्थानों पर मुझे मात्राओं की अशुद्धियाँ दिखायी पड़ीं। संभवत: यह प्रूफ रीडिंग की कमी के कारण होंगी। क्योंकि मैंने उनकी इस पुस्तक का version पढ़ा है इसलिए मैं नहीं जानता हूँ कि पुस्तक का कागज, उसकी छपाई और उसकी बाइन्डिंग कैसी है। आशा करता हूँ कि इस पुस्तक की कथा-वस्तु के समान ही वह भी अच्छी होगी।

मैं इस पुस्तक और इसमें वर्णित श्री लायटू जी के जीवन के विषय में श्री लायटू जी के शब्दों में ही कहता हूँ...

अपनी फितरत में नहीं है किसी के पीछे चलना/ हम वह हैं जो रिवाजों की शुरुआत करते हैं।

सम्पर्क : तिलहर
जिला-शाहजहांपुर (उत्तर प्रदेश)

अखिलेश सिंह श्रीवास्तव

नागद्वारी : देवलोक-द्वार के रास्ते में एक दिन

मेरे अंतर्मन में लोक मान्यताओं के मंथन से उपजी देवलोक, नागलोक अथवा स्वर्ग के द्वार की मान्यता वाली 'नागद्वारी गुफा' के विषय में अनेक विचार कौंधते, पर गृहस्थी चक्र की उलझनों के चलते वह सुषुप्तावस्था में थे। इन्हें पुनः जागृत करने का श्रेय जबलपुर निवासी मेरे अनुज, नितिन वर्मा को जाता है। इनके कारण ही प्रकृति की इस अद्‌भुत लीला का लीला सहचर बनने के लिए मैं, पावस की भीगी ऋतु में, सिवनी स्थित गृह-मंदिर में अपने पूर्ण हुए उपन्यास 'रुद्रदेहा' के टंकण को अधूरा छोड़, छिंदवाड़ा बस स्थानक में, पचमढ़ी जाने वाली, भरी बसों के मध्य अपने लिए एक स्थान सुरक्षित करने की आशा से प्रतीक्षारत हूँ। अवसर है, सावन मास में भारत के हृदय स्थल मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिले की पिपरिया तहसील में स्थित, एकलौते पर्वतीय स्थल, सतपुड़ा की रानी, पचमढ़ी में 'नागद्वारी' यात्रा का।

इस यात्रा में विदर्भ, मालवा, महाराष्ट्र आदि सभी जगहों से लाखों श्रद्धालु आते हैं। आश्चर्य! दूर पर्वतों की गोद में आयोजित इस यात्रा का प्रभाव यहाँ छिंदवाड़ा में भी दिख रहा है। जगह-जगह पर भण्डारे, स्वल्पाहार इत्यादि की व्यवस्थाएँ हैं। इन भण्डारों की एक विशेषता यह भी दिखी कि इनमें बहुपंथीय लोगों द्वारा सेवाएँ दी जा रहीं हैं। यही तो हमारे भारत की आत्मा है। आस्था, भावना की सखी बन, श्रद्धा चक्षुओं से अश्रुओं को बहने के लिये विवश कर रही है। लाल, पीली झंडी लिए लोगों के झुंड-के-झुंड आ रहे हैं।

यों तो यह वर्षा के दिन हैं, पर आज बरखा रानी इन रंग-बिरंगी पगड़ी पहने, ढोल-मँजीरा बजाते शिव भक्तों के कीर्तन में खोई-सी लगती है। वह देखिए, बीच-बीच में हुई बौछारों ने दीवारों पर गेरू से लिखे नारों को अवश्य धो दिया; लेकिन भक्तों के उत्साह को न धो सकी। अहा...! यह लीजिए, सावन की बिटिया ने मुझे झूठा पाठ दिया। तेज गरज के साथ जल कणों ने सवेग पुनः अपनी उपस्थिति को सिद्ध कर दिया। तभी अगली बस की उद्‌घोषणा सुनाई दी। मैं झट इसमें अपना स्थान सुरक्षित कर बैठ गया। लीजिए, मैं निकल पड़ा अकेला, अनजान सहयात्रियों के साथ, उस अद्‌भुत यात्रा में कदम-से-कदम मिलाने के लिए जो सदियों से मानवीय कौतूहल का उत्स रहीं हैं।

इस समय विशेष परमिट वाली बसें मेला यात्रा को कवर करती हैं। इनके परमिट जारी करने वाले सक्षम अधिकारी ने लगता है केवल परमिट शुल्क पर ही ध्यान दिया है। तनिक बस की वास्तविक स्थिति और वाहन-चालक के चालन कौशल को भी आधार बनाया होता तो कार्य की व्यावहारिक गुणवत्ता सामने आती। स्वच्छ, सपाट मार्गों पर भी जिस प्रकार हम झूलते, झटके खाते जा

रहे हैं, यह कोई यांत्रिक त्रुटि नहीं, अपितु चालक का चालन-दोष है। वैसे भी आज-कल लाइसेंस बनवाने के लिए भी अर्थाश्रित जन-सेवी संबंधित कार्यालय के कार्य सरल कर रहे हैं। पता नहीं यह कितना उचित है...! छोड़ें इस विषय को आप तो बस मेरी बस में झाँकिए। नगर के बाहर बने विशाल चतुर्दिक मार्ग संगम में चालक महोदय ने इतना शार्प टर्न लिया कि ऊपर रैक से मेरा बैकपैक मुझसे गलबहियाँ करने आ गिरा। यह तो अच्छा हुआ उसकी चेन मेरे गले में नहीं लगी वरना मेरा चैन चला जाता!

चलती बस में लगती हवा और जल बूँदें मुझे इस यात्रा के साथ, वैचारिक यात्रा में ले गए। पावस! अर्थात् बीती ऋतु से उपजी ऊष्णता से मुक्ति। धरती की प्यास के साथ-साथ सकळ जीवों के प्यासे कंठों को तरलता। पावस का बाल सखा है 'सावन' जो प्रतीक है रत्नगर्भा की गोद में ऊगी प्राणदायिनी उपजों से लेकर, व्याप्त हरियाली का, रीति-रिवाजों और तीज-त्यौहारों का, सावनी झूलों में भरती नारी-पींगों का, जल डबरों से लेकर महासागर के जलाधिक्य का, ओस जैसे महीन जल-कणों की फुहारों का, संतों के चतुर्मास का, धरित्रि के गर्भ में छिपे जीव-जंतुओं के अपने बिलों से बाहर विचरण करते हुए सारे जग को बताने का कि यह धरती उनकी भी माँ है, शिव परिवार की आराधना का, आनंद का, वंदन का!

पर इसका एक 'विपरीत प्रतीक पहलू' भी है। सामर्थ्य विहीन लोगों के घरों में अनाधिकृत जल प्रवेश से उठती वेदना का, निष्ठा से रोजी पर निकले लोगों के रोजगार के बह जाने का, अचानक आई बाढ़ में अपनों के गुम जाने का, सुदूर गाँवों में वर्षा-से हुए ध्वस्त मार्गों के कारण शिक्षा ह्रास का। जल त्राहि की करुण पुकार का। बस यही कहूँगा-

'सावनी ऋतु भी क्या कमाल करती है,
कहीं खुशी, कहीं गम का हाल करती है।'

पचमढ़ी का पूरा मार्ग सुंदर, सर्पीले रास्तों से निर्मित है। कई स्थानों पर मेरा मन इन्हें रुक के निहारने का हुआ, पर सार्वजनिक यात्रा में ऐसा कहाँ संभव है! दार्शनिक गवाक्ष-से देखते हुए स्वयं को अत्याज्य धीर-धराया कि यह सार्वजनिक बंधन हमें अपनी इच्छा से परे, सबको ले कर चलना सिखाते हैं। लगभग चार घंटों की यात्रा में छः घंटों की थकान के साथ हमारी यात्रा-सहायिका (एक बस) एक जोरदार ब्रेक के साथ रुक गई। हम मध्यप्रदेश के नयनतारा पर्वत-स्थल 'पचमढ़ी के प्रवेश पर खड़े हैं। पूर्व में इसी पचमढ़ी पर मेरा यात्रा-वृत कई पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ है, पर आज का आस्था-सैलाब देख कर लग रहा है इस वर्णन के बिना वह अधूरा ही है। समुद्र तल से 1067 मीटर्स की ऊँचाई पर स्थित, कैप्टिन जे.फारसिथ द्वारा 1862 ई.में खोजा गया यह पर्वतीय स्थल, प्राकृतिक छटा का अनमोल उपहार है। दृष्टि-सीमा का अभिवादन करती सुंदर घाटियाँ, सर्पिणी से लहराते मार्ग, वन्य जीवों से भरे निविज वन्य क्षेत्र, कल-कल बहते झरने, सरोवर, राष्ट्रीय उद्यान, पंछी-कलरव, पौराणिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व की धरोहरें, विभिन्न प्रकार की जड़ी-बूटियाँ, सरल हृदय लोग और भी बहुत कुछ, इसके सौंदर्य के साक्षी हैं। इन्हीं के मध्य स्थित है, किंवदंतियों से भरी, आस्था से सिंचित कंदरा, 'नागद्वारी' जो लक्ष्य है इस रिपोर्ताज का कि सर्व सम्मुख हो यह नयनाभिराम नैसर्गिक सौंदर्य।

धूपगढ़ की चढ़ाई को नमन करता नागद्वारी मार्ग प्रारंभ में जितना सरल दिखता है, सतत् आगे बढ़ने पर वह अपने विराट रूप दर्शन कराता है। एक ओर जहाँ पाताल छूती खाइयाँ हैं तो दूसरी ओर इतने ऊँचे शैल-श्रृंग कि इन्हें देखने पर सिर से टोपी गिर जाए। विषैले जीव-जंतुओं की तो यहाँ बहुलता है और क्यों न हो यह उनका ही तो घर है। सुखद संजोग है कि ये किसी को हानि नहीं पहुँचाते।

इस मार्ग में एक गाँव ऐसा भी है जो साल में मात्र एक बार ही बसता है। यात्रा की प्रमुख स्थली ग्राम 'काजरी।' राष्ट्रीय उद्यान बनने के कारण यहाँ के रहवासियों को अन्यत्र स्थापित कर दिया गया। अत: अब केवल यात्रा काल में ही यहाँ मानव पद-चाप गूँजते हैं। इस गाँव की एक कथा प्रचलित है- 'यहाँ की एक स्त्री ने संतान प्राप्ति की मन्नत माँगी और कहा, पूर्ण होने पर नागदेव को काजल लगाएगी। मन्नत पूरी हुई। जब वह स्त्री मन्नत पूरा करने गई तो नागदेव का रूप देख न केवल वह मूर्छित हुई बल्कि उसकी मृत्यु हो गई। तभी से इस गाँव का नाम काजरी पड़ गया। मान्यता आज भी जीवित है, गोविंदगिरी पहाड़ी की नागद्वारी गुफा के शिवलिंग पर काजल लगाने से मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं।

किंवदंतियाँ तो और भी हैं; जैसे- पांडव वीर भीम को जब दुर्योधन ने विष खिला के जल में फेंका, तब नाग उसे यहीं लाए थे और नागराज वासुकी ने उसे सहस्त्र वितण्डों सा बल प्रदान किया था। भगवान शिव ने भी भस्मासुर से बचने के लिए इन्हीं कंदराओं की शरण ली थी। अरे हाँ, एक आवश्यक बात न भूल जाऊँ, सावधान रहना मित्रों! प्रचलित मान्यताओं की आड़ में यहाँ वकव्रती ठग, चोर-उचक्के भी सक्रिय हैं, जो भाँति-भाँति के प्रलोभनों से भोले हृदयों को छलते हैं। ऐसा नहीं कि अपराधी प्रवृत्ति लोग ही यहाँ फिरते हैं, रामधन भैया जैसे गुणी, निष्णात और सहयोगी व्यक्ति भी मिलेंगे जो आपकी यात्रा आनंद को द्विगुणित कर देंगे।

इस पहाड़ी क्षेत्र में सावनी फुहारें हल्की ठंड को आमंत्रित कर रही हैं, वैसे बारह से पंद्रह किलोमीटर की सीधी चढ़ाई तन को स्वेद से तर करने वाली है। यह स्थिति मेरे लिए तो अत्यंत कष्ट प्रद है अत: नैपकिन के साथ एक टॉवल, पाउडर, और फैशऑन्स मैं ध्यान से रख लाया था। पथरीले मार्ग, कहीं फिसलन भरे, तो कहीं सँकरे, घनी झाड़ियों से घिरे हैं जहाँ से निकलने में डर लगे! न जाने कितने मोड़ ऐसे हैं जिन्हें देख कर मन काँप जाए।

अमरनाथ के समतुल्य मानी जाने वाली इस यात्रा में दूर-दूर से श्रद्धालु, पर्यटक, पर्वतारोही और मेरे जैसे लेखक आते हैं। सबके दृष्टिकोण अलग, पर लक्ष्य एक। यही स्थिति तो विभिन्न पंथों की भी है; यदि हम समझें तो! विभिन्न समितियों के माध्यम से स्वल्पाहार, चाय, भोजन के भण्डारों का सहयोग वंदनीय है; जैसे- चौरागढ़ महादेव ट्रस्ट, महादेव मेला समिति, बर्फानी बाबा सेवा समिति तथा कुछ बाहर से आए समूह। वर्षा के माहौल में, धूप-अगरबत्ती, शिव भजन, भोलेनाथ के जयकारे, भंडारा-भोजन की सुगंध के साथ श्रद्धालुओं की बनती-बिगड़ती पंक्तियाँ नागद्वारी यात्रा की धार्मिकता को और बढ़ा रहे हैं।

शासन द्वारा सुरक्षा चौकियों के साथ प्राथमिक उपचार केंद्रों को भी यहाँ-वहाँ स्थापित किया

गया है। पूरा क्षेत्र सेक्टर्स में बँटा है और उसके हिसाब से ही अधिकारियों की नियुक्ति है। कभी-कभी व्यवस्थाओं में अव्यवस्था के दर्शन हो जाते हैं, जो इतने बड़े आयोजन में संभावित मान के चलने में ही मन की शांति है। एक दु:खद पहलु यह दिखा कि जनता स्वयं अपनी नागरिक भावना भ्रष्ट कर रही है! कचरा-स्थल होने के बाद भी जाने क्यों उसे बाहर फेंकने में शान-सी समझते हैं। यदि पुलिस या समिति सेवक टोकें तो वह निंदा-पात्र बन जाएँगे। मार्ग-मध्य में विश्राम शिविर लगे हैं, जो मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ती के हिसाब से निर्मित हैं। यहाँ आश्रय लेते समय इस बात को अवश्य ध्यान रखना चाहिए।

अच्छा एक बात बोलूँ आपसे, श्रद्धालु गाते-बजाते टोलियों में पदयात्रा करते, गहन वनों एवं खाइयों को पार कर, इस ऊँची चढ़ाई को भी उसी शक्ति के साथ चढ़ रहे हैं और एक मैं हूँ, थका मानव। स्वयं से लज्जित हुआ कि एक ओर यह लोग हैं और एक मैं, जो बस-यात्रा से इतना थक गया कि घड़ी-घड़ी विश्राम करते आगे बढ़ रहा हूँ। इस लज्जित भाव ने मुझे शक्ति दी। कह सकता हूँ हर स्थिति-परिस्थिति में प्रेरणा छिपी है। हमें उसे पहचानना और स्वीकार करना पड़ता है।

नागद्वारी यात्रा का शाब्दिक चित्रण जितना लेखक के लिए कठिन है, उतना ही कठिन पाठक के लिए दृश्य-कल्पना है। सत्यानुभूति के लिए साक्षात् होना आवश्यक है।

कुछ यों-

'चहुँ ओर चादर हरियाली,
धान की बालें कोपल वाली।
मक्के की यह पौध निराली,
घास बिछावन, हरितिमा आली।
जंगली लताएँ लिपटी जाएँ,
वृक्ष सभी मन में हर्षाएँ।
गीत प्यार का साथ में गाएँ,
तन-मन भी हर्षित हो जाएँ।'

स्वर्ग जैसा सुंदर, कवियों की कल्पना का स्वप्न लोक। परमात्मा के अस्तित्व का बोध कराती यह धरती माँ। जड़ी-बूटियों तथा अन्य औषधीय वनस्पतियों की प्राप्ति के लिए तो कुछ लोग इन दुर्गम पहाड़ों की चोटियों में भी जाने से नहीं चूकते। इनका भीष्म-साहस 'भूमि औषधिनाम मातरम्' को सिद्ध कर रहा है। चारों ओर के छोटे-छोटे गड्ढों में जल भर गया है और उसके आस-पास बैगनी, गुलाबी, सफेद बटन जैसे फूल ऊग कर जल-गुच्छ का भान करा रहे हैं। कई जंतुओं ने इसे विचरण स्थली बना रखा है। वह सामने के श्यामल-शिलाखंड पर शिलानुरूप रंग बदले गिरगिट बैठा है, जिसका आकार हमारे यहाँ पाए जाने वाले गिरगिटों से कम से कम ड्योढ़ा है। मेरे सहयात्रियों ने तो विषधर-भुजंगों के भी दर्शन कर लिए; अच्छा ही है कि मेरा उनसे सामना नहीं हुआ। मुझे तो यहाँ की कई चट्टानें भी नाग आकृति की दिखीं। अब जरा नक्शे के रूप में इस मार्ग को समझें तो जलगली, कालझाड़, चित्रशाला, चिंतामन, पश्चिमद्वार, नागद्वारी काजरी यह सामान्य मार्ग है।

चलते-चलते जैसे ही ऊपर प्रमुख गुफा के सामने वाले स्थान पर पहुँचते हैं, सामने लगभग पैंतीस फीट की विशाल कंदरा के दर्शन आश्चर्य के साथ मन मोह लेता है। एक अविश्वसनीय, अकल्पित, अद्‌भुत, तिलस्म-सा। उसके और समीप आने पर तो आश्चर्य भरा मन कह उठता है 'यह व्यापकता गगन चुंबी तो नहीं...!' स्वेदमिश्रित थकान, वर्षा से भीगे वस्त्र और स्लिप-डिस्क के हल्के दर्द ने मुझे शैलाश्रय के लिए विवश कर दिया। यहाँ एक साधु चिलम भर रहा था। मेरी स्थिति को भाँप उसने मेरी ओर चिलम बढ़ा दी। धूम्र-पान न करने वालों का प्रतिनिधित्व करते मेरे मना करने पर वह मुझे देख मुस्कुराया और बम-भोले बोलता हुआ वहाँ से चला गया। मैं निर्निमेष उसे पहाड़ी उतरते देखता रहा। उफ! मुझे उससे कुछ बोलना-बतियाना चाहिए था।

छः हजार फीट ऊँचाई पर बनी इस सुनसान गुफा में श्रद्धालुओं की भीड़ आस्था पुष्प अर्पित करने के लिए, शांति के साथ पंक्ति बद्ध है। यहाँ एक गुफा इतनी कठिनाई पर है कि वहाँ पहुँचना सामान्यतः कठिन है। इसमें नींबू फेंकने की मान्यता है। मैंने भी दो नींबू लिए, फिर कुछ सोचकर उनसे नींबू पानी बना तरोताजा हो लिया। इस प्रकार नींबू फिंकाई को देख मुझे लगा यह भी अच्छा 'सीजनल बिजनेस' है। क्या पता जो नींबू बिक रहे हैं वे ऊपर फेंके नीबुओं का पुनरागमन हों!

हम हर उस चीज को सत्य मनाने का प्रयत्न करते हैं, जिसे मानने का कोई ठोस आधार नहीं रहता। चलिए लोगों को नींबू फेंकने दें और हम आगे बढ़ें। इस पवित्र गुफा में विराजी पुरातन शिव तथा नाग प्रतिमा देख कई लोगों के नेत्रों में अश्रु, श्रद्धा को तरल कर रहे हैं। मैं भी उनमें से एक हूँ। दुनिया से संपर्क तोड़, शिव से जुड़ना मुझे इस यात्रा का ध्रुव-उद्देश्य लगा।

यात्रा प्रारंभ से अंतिम दिवस 'नागपंचमी' तक इस पवित्र कंदरा में विशेष पूजा-अर्चना होती है, जिसमें सभी भक्त बढ़-चढ़ के भाग लेते हैं। इस पूरे क्षेत्र में लोगों द्वरा चढ़ाए पैसों की व्यवस्था से लेकर वाहन स्टैंड तक के दायित्वों का व्यावसायिक पद्धति से आवंटन किया जाता है। यह कितना उचित और कितना अनुचित है इसका चिंतन मैं सुधि पाठकों के ऊपर छोड़ता हूँ। आस्था के महा सैलाब की स्थली 'नागद्वारी' की यात्रा मूलतः गुप्तगंगा में पूजा के साथ समाप्त होती है।

मेरा उद्देश्य भी पूर्ण हो गया। प्रस्थान की बेला है। बस स्थानक के पास एक दुकान के शेड के नीचे खड़े-खड़े मैंने अपने राइटिंग पैड पर दृष्टि डाली। सभी बिंदु क्रमवार थे फिर भी ऐसा लगा कि अभी बहुत कुछ छूट गया है। आश्चर्य, सौंदर्य और रहस्य से भरी इस घाटी के विषय में सत्य अभी पर्दे में है। ऐसा मेरा मानना है। क्या पता कभी यह पवित्र गुफा स्वयं अपनी कथा सुनाना चाहे! उस समय की प्रतीक्षा और अपने अमूल्य मसौदे के साथ मैं वापसी बस में बैठ गया और धीरे-धीरे पीछे छूटता चला गया यह तिलस्मी, सुंदर मान्यताओं का, नागद्वारी का, देवलोक-मार्ग का अद्‌भुत संसार।

सम्पर्क : जबलपुर (म.प्र.)
मो. 9425175861

प्रो. नरेंद्र मिश्र

जनता की वाणी को स्वर देने वाले कवि दिनकर

रामधारी सिंह दिनकर भारतीय जनता की राष्ट्रीय भावना को पूरी शक्ति के साथ वाणी देने वाले ओजस्वी कवि हैं। दिनकर का काव्य विविधताओं से आच्छादित है, जहाँ उन्होंने राष्ट्रवादी कविता लिखी है वहीं उन्होंने समय के साथ-साथ प्रणय और रोमान्स कविता लिखने से भी नहीं परहेज किया है। उनके काव्य में निश्छल प्रणय की अन्तर्वाहिनी प्रवहमान रही है। वे शुष्क नैतिकतावादी या नीरस उपदेशात्मक कविता के पक्षपाती नहीं हैं। 'रेणुका' उनकी पहली रचना है। इसमें प्रणय की प्रगाढ़ अनुभूति का मार्मिक चित्रण पाया जाता है। 'हुंकार' में कवि की राष्ट्रीयता की भावना पराधीन भारत के दास्यबंधन को काटने की भीषण हुंकृति गर्जना के रूप में अभिव्यक्त हुई है। 'रसवंती' में कवि का रूप बदल गया है। क्रांतिकारी के स्थान पर यहाँ एक सौंदर्योपासक कवि का रूप मिलता है। 'द्वंद्वगीत' में कवि के मन का अंतर्द्वद्व प्रस्फुटित हो सका है। यहाँ दिनकर नियतिवादी रूप में प्रस्तुत हैं।

'कुरुक्षेत्र' दूसरे महायुद्ध की समाप्ति के उपरांत सन् 1946 में प्रकाशित हुआ। इसमें युद्ध की भयंकर समस्या को विश्लेषण और विवेचन के लिए उठाया गया है। कवि की यह एक महत्त्वपूर्ण प्रबंधात्मक रचना है। इसमें मानवजाति की एक चिरंतन समस्या-युद्ध-का विवेचन किया गया है। यह एक विचार प्रधान कृति है। महाभारत के कथानक की पृष्ठभूमि में युद्ध के औचित्य-अनौचित्य के प्रश्न पर कवि ने प्रकाश डाला है। 'रश्मिरथी', 'उर्वशी' आदि कृतियों में कवि ने अपनी सूक्ष्मदर्शिता, गंभीर विश्लेषण की मौलिक प्रतिभा, भारतीय संस्कृति की गरिमा में अटूट आस्था और निरंतर प्रगतिशीलता की भावना का पर्याप्त प्रमाण दिया है। राष्ट्रीय चेतना के विकास में उनका योगदान स्तुत्य है, उनकी वाणी में शक्ति है, ओज है। हिन्दी साहित्य के निर्माताओं में उनका स्थान अप्रतिम है।

हिमालय भारत की संस्कृति का संरक्षक है। हमारे इतिहास के निर्माण में इस देवात्मा नगाधिराज का पात्र महत्त्वपूर्ण है। वह भारत की प्रतिष्ठा, गरिमा, वैभव और समृद्धि का संकेत है। कवि हिमालय को संबोधित करते हुए कहता है कि इस देश की रक्षा करो, दुर्दशाग्रस्त और दुर्भाग्यपीड़ित इस भारत-भूमि के लिए उद्धार का मार्ग बताओ। इस बहाने वह देशवासियों को ही विगत इतिहास की स्मृति दिलाकर राष्ट्रोन्नति के कार्य के लिए कटिबद्ध होने का उपदेश दे रहा है।

मेरे नगपति! मेरे विशाल!
साकार, दिव्य, गौरव विराट,
पौरुष के पुंजीभूत ज्वाल!
मेरी जननी के हिम-किरीट!

मेरे भारत के दिव्य भाल!
मेरे नगपति! मेरे विशाल!

हिमालय का आह्वान करते हुए कवि कहता है कि अब मौन त्याग कर सिंहनाद कर, ये त्याग, तपस्या का समय नहीं है वरन् नवयुग का संचार करने के लिए तत्पर होना होगा। यथा–

तू, मौन त्याग कर सिंहनाद,
रे तपी! आज तप का न काल।
नव–युग–शंखध्वनि जगा रही
तू जाग, जाग, मेरे विशाल!

यहाँ कवि हिमालय को ही नहीं जगाता बल्कि करुणा के साक्षात अवतार भगवान बुद्ध को भी जागृत करता है। युगधर्म की दुहाई देकर कवि अनाचार, अनीति और अपमान से देश के दीन–हीन गरीब, बेसहारा, दलित, दमित लोगों के न्याय के लिए निरंतर जागृत करने के लिए दुहाई देते हुए कहता है–

अनाचार की तीव्र आँच में अपमानित अकुलाते हैं,
जागो बोधिसत्व! भारत के हरिजन तुम्हें बुलाते हैं।
जागो विप्लव के वाक्! दम्भियों के इन अत्याचारों से,
जागो, हे जागो, तप–निधान! छलितों के हाहाकारों से।
जागो, गाँधी पर किये गये मानव–पशुओं के वारों से,
जागो, मैत्री–निर्घोष! आज व्यापक युगधर्म–पुकारों से!
जागो, गौतम! जागो, महान!
जागो, अतीत के क्रांति–गान!
जागो, जगती के धर्म–तत्व!
जागो हे! जागो बोधिसत्व!

इस कविता में महात्मा बुद्ध की स्तुति है। महात्मा बुद्ध ने वैदिक वर्ण–व्यवस्था का विरोध किया था। धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में महान् क्रांति के सूत्रधार बुद्धदेव सर्वसमता के समर्थक थे, सार्वभौम करुणा के अवतार थे। उन्हीं के देश में पवित्र भारत की पुण्यभूमि में, अस्पृश्यता का कलंक भी पाया जाता है। हरिजन सामाजिक अन्याय के शिकार हैं। कवि इस अंधविश्वास का घोर विरोध करता है और सामाजिक न्याय और समानता की स्थापना के लिए युगधर्म का संदेश पुकार–पुकार कर जनता तक पहुँचाता है। बुद्ध की साधना वैयक्तिक निर्माण के लिए नहीं थी। वे तो लोककल्याण के साधक थे। स्वयं तपस्या, त्याग, वैराग्य का कठिन जीवन बिताकर जीवन की कठिनाइयों को 'विष' कहा गया है। शंकर ने कालकूट विष स्वयं पी लिया। देवताओं को अमृत पिलाया। उसी प्रकार बुद्ध ने भी स्वयं कष्ट सहकर प्यासी जनता को ज्ञान का अमृत पिलाया, मुक्ति का रहस्य बतलाया, इसीलिए वे 'भगवान' कहलाए।

दिनकर का काव्य ओज से ओतप्रोत है। यह ओज राष्ट्रीय चेतना और मानवता के उद्धार की भावना से युक्त होकर स्पृहणीय बन गया है। इनकी प्रारंभिक रचनाएँ समय की पुकार के उत्तर में लिखी गयी हैं। उस समय विदेशी–शासन का दमन–चक्र पूरी क्रूरता के साथ चल रहा था। जनता क्षुब्ध और त्रस्त

थी। फलस्वरूप उस काल के कुछ प्रसिद्ध कवियों में जहाँ अनेक प्रकार की निराशा ने जन्म लिया, वहाँ 'दिनकर' में उसकी प्रतिक्रिया अमर्ष बनकर उमड़ी, जिससे राष्ट्रीय आंदोलन को बल मिला। 'रेणुका' और 'हुंकार' में ये कहीं रुद्र और भवानी का आह्वान करते दिखाई पड़ते हैं, कहीं बलिदानी वीरों के गीत गाते, कहीं, 'नीरों' और 'जार' के बहाने अत्याचारियों के विरुद्ध अपनी वाणी का स्वर ऊँचा करते। भारत वर्ष कृषकों का देश है, अत: उनकी दीन दशा पर ये अत्यधिक विचलित दिखाई देते हैं। उन दिनों ये तलवार और तीर, आँधी और आग तथा ज्वालामुखी और प्रलय की भाषा में प्राय: बोला करते थे।

युवकों को उद्बोधन देने, जनता को उत्साहित करने और राष्ट्रीय भावना के प्रचार के लिए उन्होंने न जाने कितनी रचनाएँ लिखीं जिनमें 'हाहाकार', तांडव, 'दिगम्बरी', अनल-किरीट, 'शहीद-स्तवन' और 'विपथगा' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस ओज का पर्यवसान अंत में गाँधी-दर्शन में हुआ जिसका प्रमाण इनकी 'बापू' रचना है। 'दिनकर' को निश्चित रूप में 'जनता का कवि' कहा जा सकता है। 'जनतंत्र का जन्म' शीर्षक रचना में जनता का पक्ष लेते हुए इन्होंने 26 जनवरी, 1950 को देश के शासकों को ललकारा था-

'सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।'

भारतीय बुद्धिजीवी पर इस नए बोध का प्रभाव इतना था कि कवि प्रतीक में और स्पष्ट अभिधा में भी इसका गान लिखने लगे। सुमित्रानंदन पंत की आरंभिक कविता 'प्रथम रश्मि' में 'प्रथम रश्मि का आना रंगिणि तूने कैसे पहचाना', इसी की ध्वनि-प्रतिध्वनि है। पंत की ही तरह दिनकर ने भी रेणुका में 'जागरण' शीर्षक कविता में मैं शिशिर शीर्णा चली अब जाग ओ मधुमासवाली लिखा। शीर्ण शिशिर का प्रस्थान मध्यकालीनता के अंत की सूचना देता है। नवयुग के आगमन ने कवियों को नई सरस्वती से संपन्न कर दिया। 'हिमालय' दिनकर काव्य में ही नहीं, पूरे हिंदी काव्य में भी नवजागरण की अत्यंत सशक्त कविता है। यह सदियों से जड़ता में सोए देश को झकझोरने, जगा देने की कविता है। 'ओ मौन तपस्यालीन यती पल भर तो कर 'दृगोन्मेष'। दिनकर इस नवजागरण का वैतालिक बनकर हिंदी कविता में आते हैं। उन्हें स्वयं इसका पूरा बोध है। वे 'आलोकधन्वा' कविता में लिखते हैं- ''मैं विभापुत्र, जागरण गान है मेरा।'' (भारतीय साहित्य के निर्माता, रामधारी सिंह दिनकर, विजेंद्र नारायण सिंह, साहित्य अकादमी, रवींद्र भवन, 35 फीरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2005, पृष्ठ क्र. 42)

हिंदी कविता में प्रसाद, निराला और पंत की तरह दिनकर भी जागरण का गीत लेकर आए। यह बड़ी ही अर्थपूर्ण बात है कि ''उदासीनता की धारा में बहते-बहते हिंदू एक ऐसे स्थान पर जा पहुँचे थे, जहाँ स्वाधीनता और पराधीनता में कोई भेद नहीं था, अन्याय और न्याय में कोई अंतर नहीं था और न कोई अत्याचार ही ऐसा था जिसका उत्तर देना आवश्यक हो। 19वीं सदी से पूर्व के भारतीय साहित्य में कोई भी लेखक या कवि ऐसा नहीं हुआ जो यह कहने का साहस करे कि यह अन्याय है और हम इस अन्याय का विरोध करने को आए हैं।'' (संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पुनरावृत्ति 1993 ई. लोकभारती, प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 535)

स्वामी विवेकानंद भारतीयों में बल-वीर्य की महिमा और चेहरे पर ओज की दमक देखना चाहते थे। उन्होंने अपने एक व्याख्यान में कहा- ''मैं भारत में लोहे की माँसपेशियों और फौलाद की नाड़ी तथा

धमनी देखना चाहता हूँ, क्योंकि इन्हीं के भीतर वह मन निवास करता है जो शंपाओं एवं वज्रों से निर्मित होता है। शक्ति, पौरुष, क्षात्र-वीर्य और ब्रह्म तेज इनके समन्वय से भारत की नई मानवता का निर्माण होना चाहिए।''(संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पुनरावृत्ति 1993 ई. लोकभारती, प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 535)

विवेकानंद की यह कल्पना रश्मिरथी के कर्ण की शरीर रचना में गुरु परशुराम के मुख से निःसृत होती है :

'पत्थर-सी हों माँसपेशियाँ, लोहे से भुजदंड अभय।
नस-नस में हो लहर आग की, तभी जवानी पाती जय।।'

नवजागरण के कवि दिनकर में शक्ति और पौरुष की उपासना का जो स्वर मिलता है, उसके स्रोत विवेकानंद हैं। निवृत्ति का विरोध विवेकानंद से आरंभ होता है किंतु उस विचार को दर्शन के स्तर पर गीता पर कर्मयोगशास्त्र नामक अपने भाष्य में लोकमान्य तिलक ने प्रतिष्ठित किया। तिलक ने गीता के सभी निवृत्तिपरक भाष्य का तिरस्कार कर उसकी प्रवृत्तिपरक व्याख्या की और उसे जीवन संघर्ष के दर्शन के रूप में प्रतिष्ठित किया। तिलक ने लिखा है- ''अहिंसा धर्म सब धर्मों में श्रेष्ठ माना गया है, परंतु अब कल्पना कीजिए कि हमारी जान लेने के लिए या हमारी स्त्री या कन्या पर बलात्कार करने के लिए कोई दुष्ट मनुष्य हाथ में शस्त्र लेकर तैयार हो जाये और उस समय हमारी रक्षा करनेवाला कोई न हो, तो उस समय हमको क्या करना चाहिए? क्या 'अहिंसा परमो धर्मः', कहकर ऐसे आततायी मनुष्य की उपेक्षा की जाए?''(भारतीय साहित्य के निर्माता, रामधारी सिंह दिनकर, विजेंद्र नारायण सिंह, साहित्य अकादमी, रवींद्र भवन, 35 फीरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2005, पृष्ठ क्र. 44)

तिलक के इसी संघर्षमूलक दर्शन के प्रभाव में दिनकर ने लिखा है :

क. कौन केवल आत्मबल से जूझकर जीत सकता देह का संग्राम है?
पाशविकता खड्ग जब लेती उठा आत्मबल का एक वश चलता नहीं।
ख. छीनता हो स्वत्व कोई, और तू त्याग-तप से काम ले, यह पाप है,
पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ हो।
ग. त्याग, तप, करुणा, क्षमा से भींग कर, व्यक्ति का मन तो बली होता मगर,
हिंस्र पशु जब घेर लेते हैं उसे, काम आता है बलिष्ठ शरीर ही।

इस प्रकार नवजागरण के विचारकों ने शारीरिक बल, स्फीत ऊर्जा और ओज पर बल दिया। मार्क्सवाद राष्ट्रीयता का तिरस्कार कर अंतरराष्ट्रीयता की वकालत करता है। उसकी प्रतिबद्धता मार्क्सवाद के विश्वदर्शन से है। उस समय सोवियत संघ उसका एकमात्र गढ़ था। अतः भारत में जब गाँधी जी ने 'भारत छोड़ो' नारा 9 अगस्त, 1942ई. में दिया तब भारत के साम्यवादी सोवियत संघ की रक्षा के लिए बेहाल थे। उन्हें भारत की स्वाधीनता से कुछ लेना-देना नहीं था। इधर सारे संसार में उपनिवेशवाद के खिलाफ अनेक देशों में मुक्ति के लिए संघर्ष चल रहा था। कवि दिनकर की पहली प्रतिबद्धता अपने देश की स्वाधीनता के प्रति थी। उन्होंने 'साहित्य और राजनीति' नामक निबंध (मिट्टी की ओर) में लिखा- ''हम पराधीन जाति के सदस्य हैं। अंतरराष्ट्रीयता की अनुचित उपासना से हमारी राष्ट्रीय शक्ति का ह्रास

होगा। राष्ट्रीयता हमारा सबसे महान धर्म और पराधीनता हमारी सबसे बड़ी समस्या है। जो लोग हमें अंतरराष्ट्रीयता के भुलावे में डालकर हमारी आँखों को दिल्ली से हटाकर अन्यत्र ले जाना चाहते हैं, वे अवश्य ही हमें धोखा दे रहे हैं।'' वे साफ देख रहे थे कि अनेक देश उपनिवेशवाद की जकड़ से निकलने की स्थिति में आ रहे हैं। यथा-

'छिन्न-भिन्न हो रही मनुजता के बंधन की कड़ियाँ।
देश-देश में बरस रही आजादी की फूलझड़ियाँ।।'

दिनकर भारतीय स्वाधीनता के वैतालिक हैं। वे साफ कहते हैं- ''मास्को का हम आदर करते हैं किंतु हमारे रक्त का एक-एक बूँद दिल्ली के लिए अर्पित है। जब तक दिल्ली दूर है, मास्को के निकट या दूर होने से हमारा कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। पराधीन देश का मनुष्य सबसे पहले, अपने ही देश का मनुष्य होता है। विश्व-मानव वह किस बल पर बने? और विश्व मानव की पंक्ति में गुलामों को बैठने ही कौन देता है? जब तक दिल्ली की जंजीरें नहीं टूटतीं, हमारे अंतरराष्ट्रीयता के नारे निष्फल और निस्सार हैं।'' (भारतीय साहित्य के निर्माता, रामधारी सिंह दिनकर, विजेंद्र नारायण सिंह, साहित्य अकादमी, रवींद्र भवन, 35 फीरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2005, पृष्ठ क्र. 44

भारतीय साम्यवादियों के लिए दिल्ली की स्वाधीनता कोई चीज नहीं थी, उनके लिए मास्को महत्त्वपूर्ण था। राष्ट्रवादी कवि दिनकर इस वैचारिक संकट के क्षण में दिल्ली के प्रति अपनी प्रतिबद्धता फिर दुहरा देते हैं। 'दिल्ली और मास्को' कविता इसी वैचारिक संघर्ष की पृष्ठभूमि में लिखी गई है। यह सुमन की कविता 'मास्को अब भी दूर है' के जवाब में लिखी गई लगती है। वे हिंदी के ही नहीं वरन् भारत की किसी भी भाषा के आधुनिक काव्य में प्रखर, संघर्षशील राष्ट्रीय धारा के सबसे बड़े कवि हैं।

इतिहास तथ्यों का संकलन मात्र नहीं होता। इतिहास का लेखन किसी वैचारिक परिप्रेक्ष्य से होता है। कवि दिनकर ने संस्कृति के चार अध्याय ग्रंथ की रचना स्वाधीनता आंदोलन के संदर्भ में उभरने वाले मूल्यों के संदर्भ में की है। वे संस्कृति के राष्ट्रवादी इतिहासकार हैं। जिस राष्ट्रवादी इतिहास-दर्शन का प्रवर्तन रमेशचंद्र दत्त, आर.सी. मजूमदार तथा सर यदुनाथ सरकार जैसे इतिहासकारों ने इतिहास के क्षेत्र में किया है, उसी इतिहास दर्शन का विनियोग दिनकर ने संस्कृति के क्षेत्र में किया है। स्वाधीनता आंदोलन के प्रसंग में विकसित होनेवाले मूल्य ही इस ग्रंथ के परिप्रेक्ष्य निर्धारित करते हैं। वे मूल्य हैं उपनिवेशवाद विरोधी दृष्टि, धर्मनिरपेक्षता और सामाजिक संस्कृति की अवधारणा। इन मूल्यों के इर्द-गिर्द ही यह ग्रंथ लिखा गया है। दिनकर भारतीय संस्कृति के राष्ट्रवादी इतिहासकार हैं। आर्यों को बाहर से आने वाली बात का खंडन करते हुए दिनकर लिखते हैं- ''आर्य और द्रविड़, दोनों प्रकार के लोग, इस देश में अनंत काल से रहते आए हैं और हमारे प्राचीनतम साहित्य में इस बात को कोई प्रमाण नहीं मिलता है कि ये दोनों जातियाँ बाहर से आईं अथवा इन दोनों के बीच कभी लड़ाइयाँ भी हुईं थीं। आर्यों का संघर्ष दास और असुर जाति के लोगों से हुआ था, इसका थोड़ा बहुत प्रमाण है, किंतु ये दास और असुर कौन थे, इस विषय में हमारे पास सुनिश्चित प्रमाण नहीं हैं।

नई शिक्षा और अंग्रेजी भाषा पर विचार करते हुए दिनकर लिखते हैं- ''भारत में जब अंग्रेज आए, तब धीरे-धीरे अंग्रेजी भाषा भी फैलने लगी। भारत में अंग्रेजी के प्रचार के तीन लक्ष्य थे। पहला यह था

कि भारत वासियों को अंग्रेजी सिखाकर कंपनी का शासन आसानी से चला जा सके, दूसरा लक्ष्य यह था कि अंग्रेजी पढ़ा व्यक्ति आसानी से क्रिस्तान बनाया जा सकता था और तीसरा लक्ष्य यह था कि भारतीयों को अंग्रेजी संस्कृति में दीक्षित कर मन से भी अंग्रेज बनाया जा सके। लंबी बहस के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी ने 1835 ई. में भारतीयों की शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी को बनाया। इस हेतु 1835 ई. में कंपनी ने मैकाले की मिनिट्स को स्वीकार किया। यहीं से भारत में विधिवत् अंग्रेजी शिक्षा लागू हुई और इसी को नई शिक्षा कहा गया। मैकाले ने यह कहा था कि अंग्रेजी पढ़कर यहाँ के अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग तन से भारतीय, किंतु मन से अंग्रेज हो जाएँगे, किंतु ऐसा कुछ नहीं हुआ। दिनकर ने लिखा है- ''अंग्रेजी के संपर्क से हिंदू धर्म में जागृति की एक ऐसी लहर उठी कि हिंदुत्व का रोग ही दूर हो गया और अंग्रेजी पढ़ने के कारण ही भारतीयों में राष्ट्रीयता की उमंग उठी, जिससे वे अपने अधिकारों की माँग करने लगे। इस देश में स्वाधीनता की लड़ाई का नेतृत्व मुख्यतया अंग्रेजीदाँ नेताओं ने किया और अंग्रेजी पढ़कर अंग्रेजी राज को उखाड़ फेंका।

दिनकर यह मानते हैं कि समग्र रूप से भारत की संस्कृति की निरंतरता बनी रही। उन्होंने लिखा है- ''आज से तीन हजार वर्ष पूर्व भारतीय संस्कृति का जो रूप था, आज भी मूलत: वैसा ही है। मिस्र, बेबीलोन और यूनान में भी प्राचीन सभ्यताएँ उठी थीं, किंतु काल ने उन्हें ध्वस्त कर दिया। केवल भारत ही एक ऐसा देश है, जिसका अतीत कभी मरा नहीं। वह बराबर वर्तमान के रथ पर चढ़कर भविष्य की ओर चलता रहा है। भारत का अतीत कल भी जीवित था, आज भी जीवित है और कदाचित् आगे भी जीवित रहेगा।'' (भारतीय साहित्य के निर्माता, रामधारी सिंह दिनकर, विजेंद्र नारायण सिंह, साहित्य अकादमी, रवींद्र भवन, 35 फीरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2005, पृष्ठ क्र. 93)

दिनकर अपने समय के कवि हैं। कोई भी काव्य अपने समय से बाहर नहीं लिखा जाता है। दिनकर की सोच यह थी कि आत्मा को आंदोलित करनेवाली कोई चीज इधर के युग में नहीं घटी है। इसलिए वे प्राचीन काल और मध्यकाल के नायक अशोक, चंद्रगुप्त, समुद्रगुप्त तथा महाराणा प्रताप की ओर मुड़ते हैं। उनके इतिहास प्रेम और अतीतप्रियता का यही कारण है कि उन्होंने अपने युग की आत्मा को ध्वनित किया है। दिनकर जी ने स्वयं स्वीकार किया है कि जिस तरह मैं जवानी भर इकबाल और रवींद्र के बीच झटके खाता रहा, उसी प्रकार मैं जीवन-भर गाँधी और मार्क्स के बीच झटके खाता रहा हूँ। इसीलिए उजले को लाल से गुणा करने पर जो रंग बनता है, वही रंग मेरी कविता का रंग है। मेरा विश्वास है कि अंततोगत्वा यही रंग भारत वर्ष के व्यक्तित्व का भी होगा-

'खुदी को कर बुलंद इतना, कि हर तकदीर से पहले
खुदा बंदे से खुद पूछे, बता, तेरी रजा क्या है।' (इकबाल)

सम्पर्क : नई दिल्ली
मो. 940 1555959

उत्कर्ष अग्निहोत्री

लोकसंग्रह के श्रीविग्रह : पं. विद्यानिवास मिश्र

भारतीय वाङ्मय के गौरवशाली ललाट पर यश का टीका लगाने वाले टीकाकार पण्डित विद्यानिवास मिश्र जी लोक और शास्त्र के पुरोहित हैं। पुरोहित अर्थात् हिताय पुरो धावति यः (जो आपके हित के लिए आपसे पहले दौड़ता है) वास्तव में वे मनुष्यता की अखण्ड ऋजुता और उदात्तता का कल्याण करने के लिए अग्रणी पंक्ति में दृढ़ता के साथ उपस्थित मिलते हैं तथा आजीवन हृदय की आंतरिक सम्पन्नता को बचाने के लिए वे दौड़ते भागते ही रहे। वे अपने लेखन में अपने पाठक के समक्ष उत्तरोत्तर आदरणीय से पूजनीय और महनीय होते जाते हैं।

'छान्दोग्योपनिषद्' में एक सूत्र-वाक्य है-'स्मरोववकाशाद्ध भूयः' अर्थात् स्मरण आकाश से भी उत्कृष्ट है। सत्पुरुषों और उनके कार्य का स्मरण और अनुशीलन हमें वैसे ही पुनीत करता है, विनीत करता है। संस्कृत और संस्कृति, लोक और साहित्य के मर्मज्ञ, श्रेष्ठ समालोचक और मूर्धन्य साहित्यकार पण्डित विद्यानिवास मिश्र जी का स्मरण और चिंतन हमारे आत्मिक विकासक्रम की तीर्थयात्रा है। उनकी विद्वत्ता बड़े-बड़े संस्थानों को कृतार्थ करती रही और उनके माध्यम से लोक में संस्कार भरती रही तथा अँधेरी राह में आशा का, विश्वास का प्रदीप धरती रही। इसके लिए उन्होंने गोरखपुर विश्वविद्यालय, आगरा विश्वविद्यालय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, काशी विद्यापीठ और फिर संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय में प्राध्यापक, आचार्य, निदेशक, अतिथि, आचार्य और कुलपति आदि पदों को सुशोभित किया। कैलिफोर्निया और वाशिंगटन विश्वविद्यालय में भी अतिथि प्रोफेसर रहे। 'नवभारत टाइम्स' के प्रधान संपादक, 'इनसाइक्लोपीडिया ऑफ हिंदुइज्म' के प्रधान संपादक (भारत), 'साहित्य अमृत' (मासिक) के संस्थापक संपादक और इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केंद्र, दिल्ली तथा वेद पुराण, शोध संस्थान नैमिषारण्य में मानद सलाहकार रहे। साहित्य के माध्यम से भी उनका परिचय बहुत सुखदायी है किंतु उनसे अलग होते समय वे बड़े लोगों की तरह अपूर्व निधि और सांस्कृतिक मूल्यों की शकुन-राशि आशीर्वाद देते हुए हमारे चिंतन को थमा जाते हैं। वे अपनी लोकगीत प्रकृति से शब्दों में जीवन-संगीत भर देते हैं। आठोंयाम के राग-रागिनियाँ उनके प्रातिभ आंचलिक स्वर में अभ्यस्त आरोह-अवरोह से निबंधों में संग्रथित हो जाते हैं। और पाठकों के पढ़ने पर वीणा के सधे हुए तारों को छूने की प्रतीति होती है जिससे मन प्रसन्न कर देने वाली झंकार सुनाई देती है। वे अपने रचनाकार होने का श्रेय भी लोक को ही देते हैं और कहते हैं-'मैं संस्कृत पढ़ने वाले परिवार में पैदा हुआ। लेकिन हिंदी का लेखक कभी नहीं बनता, यदि मेरी माँ का स्वर ललित नहीं होता और यदि वह लोक निधि न होतीं।' जब जननी का कण्ठ ही ललित हो तो लोकाचार का रस प्रवाहित करने वाला मनमोहक स्वर सहज ही संतति के हृदय से झरने की तरह फूट पड़ता है। पण्डित जी के साथ यही कविता घटित हुई। हम उनसे लेने की विनम्रता सीखें। कैसे विनीत भाव से ग्रहण किया जाता है? कोई कौतुक नहीं। एकदम

स्वाभाविक। लोक के आलोक को प्यासे मन की ओक से पीना हो तो पण्डित जी के वाङ्मय की प्रदक्षिणा की जाए। वे कहते हैं-'हमारा लोक मनुष्यों का समाज मात्र नहीं है। लोक समस्त इंद्रियगोचर संसार है। सबका एक रिश्ता है। केवल समुदाय नहीं है, भीड़ नहीं है। लोक का अर्थ ही है प्रकाश व्यक्त होना, आलोकित होना।' परम्परा में हमने लोक को बड़ी जीवंतता के साथ स्वीकार किया। प्रत्येक के साथ कोई न कोई मार्मिक कथा हमारे चेतन से सम्बन्ध जोड़े हुए थी। जिन्हें आज हमने नगण्य समझ लिया है। अप्रासंगिक समझ लिया है। जबकि वे हमारे लोक और पर्यावरण के संरक्षण में सहायक थीं। ये पूर्वजों की गहरी चिंतना थी। आज हम सिर्फ तर्क ही तर्क हो गए हैं। और इसे समझने को कल्पना की भाषा पढ़ना आना चाहिए। जबकि वे कहते हैं-'चित्रकूट का काँटा भी हमारा अपना सगा लगता है। हमें लगता है कि यह काँटा उस काँटे का वंशज है जो सीता के पैरों में चुभा था और वहाँ राम ने अपने हाथ से निकाला था। एक काँटे के साथ इतना सगापन है, जो कुछ भी है, सब में हम कहीं हैं और वह सब हमारे भीतर हैं। यह दृष्टि जो काम कर सकती है, वह एक बुद्धिवादी दृष्टि नहीं कर सकती है। लोक, बुद्धि का खंडन नहीं है, बुद्धि का परिमार्जन है। यही शास्त्र को नया अर्थ देता है, शास्त्र में नया कुछ जोड़ता है।'

पण्डित जी गोस्वामी तुलसीदास की 'जाने बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहीं प्रीती।।' की देशना के पालनकर्ता हैं। उन्होंने जीवन जगत से जितना परिचय बनाया है वह उनकी प्रसन्नचेता आत्मा के ममतामयी व्यवहार का संस्कार है। उनका निष्कपट व्यक्तित्व सभी के प्रति उनमें गहरा विश्वास जगाता है जिसके कारण उनका हृदय स्नेह से उच्छलित लोक का पारावार दिखाई देता है। वे कहते हैं-'एक जीवन ही पाठशाला है और जीवन के लिए खुली आँखें उस पाठशाला के लिए बस्ता हैं।' कितनी बड़ी बात आसानी से कह दी। इस पाठशाला में दिए जा रहे ज्ञान को हम आँखों के बस्ते में रख लेते हैं। इसी के माध्यम से वे साहित्य सृजन करते हैं। पण्डित जी साहित्य के बहुत बड़े समालोचक होने पर भी उसके कुरुपांडविय से हमेशा अलग रहे। संस्कृत को स्रोतस्विनी बनाकर हिंदी को एकांत भाव से पोषित करते रहे। उनके निबंध सृष्टि की कविता को भावप्रवणता के साथ देखने का रचनात्मक प्रयत्न हैं। पण्डित जी में ज्ञानबोध और सौंदर्यबोध के संवाद का उन्मीलन उनकी साहित्य शैली में सर्वत्र दीखता है। उनके लेखन में तथ्य, प्रमाण, ऐतिहासिक वर्णन की पारदर्शिता और तथाकथित बौद्धिक ज्ञान नहीं मिलता बल्कि भारत की शाश्वत भावधारा का आलोड़ित गुणकथन और रस चित्रण मिलता है। विषय का लालित्य ही उसका प्राथमिक प्रमाण बन जाता है। उन्होंने आजीवन साहित्य को अपना धर्म माना। उसकी स्वस्थ और मुक्त विवेचना उनकी साधना है। कभी कभी कोई व्यक्ति और उसका किया हुआ कार्य इतना महान, इतना समादृत हो जाता है कि विविध सम्मान उसके पास पहुँचकर खुद सम्मानित हो जाते हैं, उनकी सार्थकता नजर आती है। जिन सम्मानों का पण्डित जी की साहित्यिक सेवाओं के कारण महत्त्व बढ़ गया वे भारतीय ज्ञानपीठ के 'मूर्तिदेवी पुरस्कार', के के बिड़ला फाउंडेशन के 'शंकर सम्मान', उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी के सर्वोच्च 'विश्व भारती सम्मान', 'पद्मश्री' और 'पद्मभूषण', 'भारत भारती सम्मान', 'महाराष्ट्र भारती सम्मान', 'हेडगेवार प्रज्ञा पुरस्कार', साहित्य अकादमी के सर्वोच्च सम्मान 'महत्तर सदस्यता', हिंदी साहित्य सम्मेलन के 'मंगला प्रसाद पारितोषिक', तथा उ.प्र. संगीत नाटक अकादमी के 'रत्न सदस्यता सम्मान' हैं। अगस्त 2003 में भारत के राष्ट्रपति ने उन्हें राज्यसभा के मनोनीत सदस्य बनाया। ये उनके विपुल साहित्य-शिव का विविध रत्नों से किया गया अभिषेक है। वे अपने लेखन को आत्मविश्लेषण का साधन बनाते हैं। इसके बाद वे पाए हुए आनन्द प्राण की प्रतिष्ठा

अपनी पुस्तकों में कर देते हैं। पुस्तक का भी अपना एक लक्ष्य होता है जिसे पूरा करने में लेखक अपने को उसी में संकलित कर देता है। नितांत कलात्मकता का चित्रांकन करने वाली उनकी विलोड़ित सुमति 'स्वरूप विमर्श' करती है। अस्तित्व का भीतरी और बाहरी आकार, प्रकार, बनावट, रूप, रंग, प्रभाव क्या है? कैसा है? कब से है? क्यों है? जैसे प्रश्नों को सरल बुद्धि के विमर्श की प्रयोगशाला में लाकर उसकी व्यापक सुंदरता की उद्देशिका प्रस्तुत करते हैं। उनका दृढ़ अभिमत है–'शास्त्र, लोकाचार की उपेक्षा कर प्रतिष्ठित नहीं होता और लोक, शास्त्र की मर्यादा को काट कर प्रतिष्ठित नहीं होता।' वे लोकशास्त्र और शास्त्रलोक की निर्मल अन्विति के धारक हैं, प्रसारक भी। पण्डित जी अपने लेख को पुरखों की थाती सा सजा रखते थे। जिसमें प्रसंग के चौमुखी द्वार जब तब खुले ही दीखते हैं। और उन पर सजी धजी अशिक्षित शब्दों की झूलती हुई तोरण अनायास ही सिर को छूती हुई सहला जाती है। वहीं गाँव की आत्मा की अलभ्य मासूम गौरैया उनके इसी आँगन में अपने चीन्हे हुए को मीठी ध्वनि में गुंजन करती हमें मोह लेती है।

उनकी साहित्यिक कृतियों के नाम भी वैदिक हैं। निबन्ध जैसी 'कोऽहम्' विधा को भी वे 'सोऽहम्' में परिणत कर देते हैं। अध्यात्म की राह पर जब भी कोई योगी, साधक चलने का निर्णय लेता है, तो उसे इस राह के चार ब्रह्म वाक्य समझाए जाते हैं, जो कि साधना, ध्यान के मुख्य सोपान हैं–'पहला : तत्वमसि अर्थात् वह तुम हो, दूसरा : एको ब्रह्म द्वितीयो ना अस्ति अर्थात् सब ओर एक वही सर्वोच्च शक्ति ही विभिन्न रूपों में व्याप्त है, अहम् ब्रह्मास्मि अर्थात् : मैं ही ब्रह्म हूँ, सः अहम् अर्थात् सोऽहं वो मैं ही तो हूँ...'' अपने को सभी में देखना और उस समष्टि को सुमिरिनी की अहर्निश अजपाजाप करते रहना। व्यक्ति को सिद्धि की सीमा से अतिक्रमित कर के स्निग्ध द्रष्टा बना देता है। यदि इसे भगवत्ता से न जोड़ा जाए और विशुद्ध प्रांजल व्यक्तित्व के रूप में लिया जाए तो पण्डित जी के साथ यही हुआ है। इसलिए वे अपने व्याख्यानों को सोऽहम् कहते हैं। इन व्याख्यानों को पार्थिव स्पर्श देने के लिए वे इनमें देश की सम्वेदना, रसग्रहणीयता, मानसिकता और इतिहास दृष्टि से जुड़ी हुई अस्मिता की तलाश करते दिखाई देते हैं। वे शब्द के माध्यम से हमें अपने ही भीतर उतार ले जाते हैं। और हमें हमारे ही अपरिचित लोक से परिचय करा देते हैं। उनका साहित्य अध्यात्म के लक्ष्य का साधन बनता है तथा हमारे अधि को जगमगा देता है। हालाँकि इसी संग्रह में वे एक जगह कहते हैं– 'अध्यात्म और आध्यात्मिक कुछ बहुत ही अजूबा शब्द हो गए हैं। उनको गलत शिक्षा के अभ्यास में कुछ अलभ्य है, पदार्थ बना दिया है, जब अलभ्य मिलता नहीं, इसलिए अध्यात्म पाखंड हो जाता है और वही हो गया है।' लेकिन उनको पढ़ते हुए अध्यात्म शब्द का वास्तविक अर्थबोध होता है।

पण्डित जी का साहित्य हमारे मानस को विमल करता है। इसलिए भी आज उनका अनुशीलन आवश्यक है ताकि युगीन साहित्य अपने को उनकी पाठशाला में लाकर संस्कारित कर सके अपना परिशोधन कर सके, धन्य कर सके। प्रायः पण्डित जी की विद्वत्व की चाँदनी में भीग जाने को उस समय के बड़े–बड़े संस्थान उनके सामने उनके व्याख्यानों के लिए हाथ जोड़े खड़े रहते थे। कभी कभी समान गुणधर्म वाले मित्रों के स्नेह की डोर में बोलने के लिए सहज ही बंधे चले जाते थे। ऐसे ही कलकत्ते में विद्वान साहित्यकार आचार्य विष्णुकांत शास्त्री जी और कल्याणमल लोढ़ा जी के अत्यंत आग्रह पर पंडित जी ने छः व्याख्यानों की सुचिंत्य धारा प्रवाहित की। कालांतर में इन्हें 'साहित्य का प्रयोजन' नाम से संकलित किया गया। महीयसी महादेवी वर्मा जी के साहित्य में गद्य लेखन से प्रभावित हुए मिश्र जी ने ये पुस्तक उन्हीं को समर्पित की है। सहजता से

दिए गए ये व्याख्यान साहित्य के अभिप्राय, उसके उद्देश्य, उसकी उपस्थिति पर जरूरी दस्तावेज हैं।

क्या है साहित्यिकता? इस द्वंद्व में फँसे सामान्य जन के मन को सरल उदाहरणों से तथा अपनी वाग्विदग्धता से निर्द्वंद्व करते हुए वे कहते हैं 'वास्तविक खोज के लिए मन खुला और निर्भय होना चाहिए।' यही उसे समझने में सहायक होगा। उनके ऐसे ही व्यापक व्यक्तित्व पर पण्डित जी के बाद बने साहित्य अमृत के सम्पादक उनके गुरुभाई डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी जी ने अपने सम्पादकीय में लिखा–'भारतीय लोक-जीवन के इस आत्मस्थ, आश्वस्त और स्वाभिमानी वैतालिक ने पाया कि भारत के गँवई गाँव का लोकजीवन सबका पारमार्थिक मंगल मानते हुए विश्व जीवन से एकाकार है, जिसमें अनायास ही अथाह, विपुल, अगाध शिवतत्व सन्निहित है और जिसकी अंतश्चेतना जगद्धात्री की स्नेह-दृष्टि से संपोषित है। लोक जीवन और लोक साहित्य से संजीवनी शक्ति लेकर उन्होंने भाषा और साहित्य में रस वृष्टि की भारतीय होने की पहचान को परिभाषित किया और भारतीय संस्कृति को, शास्त्र को एवं परंपरा को गँवई गाँव का अखूट हल्दी, दूध, दधि, अक्षत चढ़ाया। अगणित नारियल चढ़ाए, अक्षय चैतन्य समर्पित किया। साहित्य अमृत उनके मन वृंदावन में मोर और पपीहे के प्रति प्रेरित बुलावे जैसा था।'

उनका स्वाध्याय परायण स्वभाव उन्हें सबसे अलग और विशेष बना देता। यदि उन्हें कोई कहता था कि वे मौलिक निबन्धकार हैं तो वे संकुचित हो जाते थे क्योंकि उनका मानना था कि कोई भी रचनाकार अपने पूर्व के रचनाकारों से प्रेरित होता है और अपने आने वाले रचनाकारों को प्रेरित करता है। इस सन्दर्भ में उनकी उक्ति है– 'मैं मौलिकता का किसी प्रकार से दावा नहीं करता चूँकि मैं वही लिखता हूँ जो मेरे सुकृति पूर्ववर्ती प्रणीत करते हैं जिसे असंख्य देश वासी भाषित कर रहे हैं और जिसका मेरे जीवन से गहरा सम्बन्ध है।'

पण्डित जी ने आधुनिक समय को अपनी परम्परा, आस्था, मूल्य और रीति-रिवाजों से जोड़ कर नवीन अर्थ प्रदान किया। समस्त बौद्धिकता को उन्होंने भावना की गोद में अर्पित कर दिया। और उसके माध्यम से लोकजीवन को मृत होने से बचाया। रिश्तों में बढ़ती निस्पृहता बोझ की तरह मनुष्य को ढोनी पड़ेगी। इसका संकेत वे पाठकों के सामने सलीके से करते हैं। प्राचीन मान्यताओं, संस्कृति और लोकगीतों से उन्होंने अपने चिंतन को ग्रहणीय बनाया है। रोचक बनाया है। मैं को नहीं हम को तरजीह देने वाले पंडित जी इसी पुस्तक में जगह कहते हैं 'मेरा भारत महान कहते ही भारत का निर्देश विराट रूप छोटा हो जाता है। देसी भाव यह है कि भारत के हम हैं, एक विशाल व्यापक भाव के, हम छोटे से करें इसमें देश तो बड़ा होता ही है हम भी बड़प्पन से भर उठते हैं।'

इसमें वे अखण्ड की विशालता के प्रखण्ड का होना कितना गौरवपूर्ण है ये बताते हैं। वे बड़े ढंग से कहते हैं–'सौभाग्यवश ऐसे परिवार में ऐसे वातावरण में पलना हुआ जिसमें एक तो मैं के लिए हम बोला जाता था इसलिए हिंदी बोलते समय भी प्रयास करने पर ही मैं निकलता है। जहाँ पत्नी को छोड़कर किसी को नितांत अपना निजी अपना नहीं कहा जा सकता था। बेटी हुई सब की बेटी हुई घर सब का घर हुआ। गाँव सब का गाँव था। घर का द्वार सबके लिए खुला था। घर के बाहर का मैदान गाँव भर के लोगों का अपना स्थान था।' अपने को विशेष प्रकट करने वाले समभाव के विरोधी हैं। और पण्डित जी इसी भाव को पोषित करने के लिए कृतसंकल्प हैं। उनका मितभाषी स्वभाव नेह झरी अंजुरी लगता था, जो सबको कुछ न कहने पर भी प्रभावित करता था। विदेशी कवि नेथन ने उनसे एक बार कहा–'मिश्र, तुम धन्यवाद न दो, तुम चुप रहते हो,

इतने में तुम्हारी कृतज्ञता प्रकट हो जाती है, धन्यवाद हम ही लोगों के पास रहने दो।' पण्डित जी के बालपन की भोर, बाबा की प्रभाती (दुख हरहु द्वारकानाथ सरन मैं तेरी) सुनते हुए जगती थी और रात रामायण-महाभारत की कथाएँ सुनते-सुनते सोती थीं।

इस तरह के सीधे सरल जीवन से उनके निश्छल चितंन और उज्ज्वल दर्शन का जन्म हुआ। पण्डित जी ने अपने मज्जागत सनातन भारतीय संस्कारों को औपनिषदिक मनीषा से दीक्षित कर साहित्य में नैष्ठिक सृजन किया। वे जब भी शब्द, घटना, प्रसंग या विषय के निकट जाते हैं तो वे उसकी आत्मा में प्रवेश करके बोलते हैं। ये बोलना इतना मौलिक और ज्ञानदीप होता है कि पाठक उनकी इस भेंट से उपकृत हो जाता है। उनका मानना है कि 'शब्द जब अनुवाद बनते हैं तो मूल अर्थ का ह्रास करते हैं।' जबकि हम उसके ह्रास नहीं अर्थ विकास को श्रेष्ठ मानते हैं। उसके अभाव को नहीं, भाव को मान्यता देते हैं। वे इसी के अनुसार जिसे नृशंस नहीं अपितु करुण होकर जिया जाए उसी को धर्म मानते हैं।

भारत के स्वभाव का रूपायन भारतीय संस्कृति उनके परखे हुए लेखन में प्रथित है। जब भी वे देश के बारे में बोलते हैं तो जड़ता और पराधीनता के बंद किवाड़ों की साँकल खोलते हैं। माटी की खाटी पहचान के स्वाभिमान को व्यापक बोध के साथ संस्कार की वेदपाठी में जिया। देश पर बोलते हुए वे उसके हृदय की तरह धड़कते थे। जिसकी धमनियों में विनम्र सनातन भारतीय संस्कृति बहती है। नीर-क्षीर को अलग-अलग कर देने वाली उनकी हंस-वृत्ति साहित्य के मानसरोवर में क्रीड़ा करती है। सत्यं, शिवं, सुन्दरं का त्रिआयामी पर्यवेक्षण वे अपने निबंधों में करते नजर आते हैं। मंत्र का अर्थ है मननात् त्रायते इति मंत्रः अर्थात् मनन से जो त्राण दिलाये (चिंतामुक्त, आश्रय, सहायता, रक्षा) वह मंत्र है।

पण्डित जी का लेखन इसी भूमिका का निर्वाह करता है। मैं यहाँ अस्थावन्त लोगों को चोट नहीं पहुँचाना चाहता ये कहकर की पण्डित जी के आलेख मंत्र हैं। लेकिन इतना जरूर कहूँगा कि उनका लेखन संकीर्णता में जकड़े हमारे विषादग्रस्त मन को प्रसादी त्राण अवश्य देता है। अज्ञेय ने टिप्पणी की है कि 'सर्जनात्मक गद्य के रचयिताओं में विद्यानिवास मिश्र अग्रगण्य हैं। उन्होंने संस्कृत साहित्य को मथकर उसका नवनीत चखा है और लोकवाणी की गौरव-गंध से एक स्फूर्ति भी पाते रहे।'' उनका यही पाना निबंधों में उतरकर हमें अपने निजत्व का बोध दिलाता है। अनन्तर हम स्वयं आत्मशोध में प्रवृत्त हो जाते हैं और अंततः अनपाये को पाकर आह्लादित हो उठते हैं।

वे एक जगह कहते हैं-'आप कहीं अगर जरा भी दो पग मेरे साथ चल सके तो मैं कृतार्थ होऊँगा।'' ये उनकी सरलता है जो अपने साहित्य के तीर्थ की यात्रा पर हमें ले चलने पर भी पाठकों का ही धन्यवाद ज्ञापित करते हैं। जबकि इस बात के लिए तो हम सबको उनका ऋणी होना चाहिए कि वे इस घटना को ऐसी पवित्रता में बदल देते हैं, जिसे हमारी कल्पना की आँख देख तक नहीं सकती थी। आइये हम उनके साहित्य के सागर की अक्षर-अक्षर लहर से स्नातक हो जाने के लिए संकल्पित हों। लोकसंग्रह के इस श्रीविग्रह की प्रदक्षिणा हमें अस्तित्वबोध के एकत्व का ज्ञान कराएगी।

सम्पर्क : फर्रुखाबाद (उ.प्र.)
मो. 887466315

डॉ. साधना बलवटे

नर्मदा जीवन भी जीवन उत्सव भी

''पुण्या कनखले गंगा कुरुक्षेत्रे सरस्वती।
ग्रामे वा यदि वारण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा।।
त्रिभिः सारस्वतं तीयं सप्ताहेन तु यामुनम्।
सद्यः पुनाति गांगेय दर्शनादेव नार्मदम।।''

अर्थात् गंगा तो कनखल में पुण्यवती है, सरस्वती कुरुक्षेत्र में, लेकिन, नर्मदा सभी स्थानों पर पवित्र है, चाहे वह गाँव हो या जंगल और यह कि सरस्वती का जल तीन दिन में, यमुना का जल एक सप्ताह में और गंगा का जल तुरन्त पवित्र करता है, परन्तु नर्मदा का जल तो दर्शन मात्र से ही पवित्र कर देता है।'' ऐसी पुण्यदायिनी माँ रेवा की प्रदक्षिणा का भी उसके जल के समान ही माहात्म्य है। सात कल्पों में जिसका अस्तित्व नहीं मिटा। प्रत्येक युग में जो उपस्थित रही, ऐसे सौभाग्य की स्वामिनी तो केवल सोमोद्भवा या शांकरी ही हो सकती है। सोमोद्भवा अर्थात् नर्मदा।

उमा रुद्रांग सम्भूता येन चेषा महानदी।

स्कन्द पुराण में उल्लेखित इस प्रसंग के अनुसार नर्मदा उमा व शिव के समवेत स्वेद से उत्पन्न हुई। अतः इसका एक नाम सोमाद्भवा भी है। उमा पुत्री होने से नर्मदा स्वाभिमानी तो है किन्तु गर्विणी नहीं। क्योंकि साथ ही वह शांकरी भी है। शिव की सरलता उसके तरल में निरन्तर प्रवाहमान है। तभी तो उसके प्रपातों को देख कर लगता है पहाड़ियों का मान मर्दन कर भी वह गर्विता नहीं है। पुनः मैदानों का सरल पथ पकड़ लेती है। युगों-युगों से शंकर की कृपा से कृतार्थ शांकरी केवल महर्षि मार्कण्डेय को ही अमृतपान करा कर आशीर्वाद नहीं देती बल्कि न जाने कितने ऋषियों, मुनियों, देवो-दैत्यों, गंधर्वों, मनुष्यों, पशु-पक्षियों का कल्याण करती है। उसका यह लोक कल्याणक स्वरूप शिव प्रदेय ही तो है। नर्मदा शिव-तनया होने से ही शांकरी नहीं है वह स्वयं में शिवत्व का पूर्ण साक्षात्कार है। सारा जगत जब अमृत चाहता है तब शिव विषपान करते हैं। उनके कठोर निर्णय में ही जगती के प्रति मृदु प्रेम है। नर्मदा में भी मृदुता और कठोरता का अद्भुत सामंजस्य है। जैसे शान्त गम्भीर, प्रसाद गुण से युक्त नीला रंग तथा चटक ऊर्जावान, उत्साही लाल रंग अपने गुण वैशिष्ट्य के कारण आपस में विपर्य है। नर्मदा भी कहीं शान्त तो कहीं बाल मन की चेष्टाओं सी चंचल है।

अमरकंटक से बिना किसी आहट के अपनी यात्रा प्रारम्भ करने वाली मैकलसुता ऐसी लगती है मानो मैकल के गर्भ में पल रहा कोई भ्रूण प्रकृति माँ की गोद में चुपके से प्रवेश कर गया हो किन्तु यह शान्ति रेवा का स्वभाव नहीं है इसलिये तो कूद पड़ती है कपिलधारा में उत्साही बालिका की तरह। चंचल

किशोरी सी अपनी केश राशि सहस्त्रधारा में बिखेरती है। सतपुड़ा और विंध्य की सखी बन उनके साथ लुकाछिपी खेलती, इठलाती, बलखाती विहार करती है। वह रेवा है सीधा चलना उसे आता ही नहीं। बिल्कुल मानव जीवन की तरह, मानव के स्वभाव की तरह उसे विरोध में जाना भाता है। तभी तो सभी नदियाँ पूर्व की ओर बहती हैं तो वह पश्चिम मुखी हो उदधि को अपना लक्ष्य बनाती है।

'नर्मदा तेन चोक्तेयं सुशीतलजला शुभा' (स्कन्द पुराण) अपने शीतल जल से लोक को 'नर्म' सुख प्रदान करने के कारण तो 'नर्मदा' है। भिन्न-भिन्न कल्पों में जब घोर प्रलयकाल था उसमें भी नर्मदा ही भिन्न-भिन्न रूपों मनु और महर्षि मार्कण्डेय की सहायता के लिये उपस्थित थीं। कभी वह रूप लौकिक था तो कभी अलौकिक किन्तु प्रत्येक में वह सुखप्रदायक था। दादा रामनारायण उपाध्याय का ये कथन एकदम उचित है कि- 'गंगा को ज्ञान का रूप माना जाता है क्योंकि उसके किनारे ऋषियों ने ज्ञान की उपलब्धि की और यमुना को प्रेम का प्रतीक माना गया है क्योंकि उसके किनारे भक्ति का संगम प्रयाग में हुआ। नर्मदा भी एक विशेष भावना का प्रतीक है, और वह है- तपस्या और आनन्द की भावना। इसके किनारे ऋषियों ने तपस्या के द्वारा आनन्द की प्राप्ति की।' तपस्या और आनन्द जीवन के सिक्के दो पटल हैं। आध्यात्मिक और भौतिक दोनों आनन्द माँ नर्मदा के सहचर्य सें हमें प्राप्त होता है। सुंदर घाटियाँ, मनमोहक जलप्रपात, घने अरण्य के बीच कल-कल करती रेवा का सौंदर्य अकथनीय है। नर्मदा पुरुष श्री अमृतलाल वेगड़ जी यूँ ही नहीं नर्मदा को सौंदर्य की नदी कहते हैं।

मैकल अपनी अल्हड़ किशोरी तनया को जब दुर्गम पहाड़ों के बीच से निकाल कर सकुशल मैदानों तक छोड़ जाता है तो इस विश्वास के साथ कि आगे का पथ मैकलसुता लिये दुर्गम नहीं होगा। पिता का हाथ छोड़ने के पश्चात् कुछ देर तो वह आज्ञाकारिणी बालिका की तरह मैदानों में सीधी राह चलती है। किन्तु नर्मदा तो मानों पर्वतारोही है, उसे बार-बार शिखरों को आलिंगन अच्छा लगता है जैसे कह रही हो बिना संघर्ष, कष्टों, कंटकों के जीवन में आनन्द कहाँ। कभी दुर्गम घाटियाँ चढ़ती हैं तो कभी, जल प्रपातों में खिलखिला के हँस पड़ती हैं। गाँवों, कस्बों वनों से बतियाती सी उनके दु:ख-सुख बाँटती हुई रेवा निरन्तर जीवन की तरह चलती ही रहती हैं। मनुष्य के जीवन में कितना कुछ होता है समझने-समझाने को, कहने-सुनने को, जीवन के उतार-चढ़ाव में कितनी ही बाधाएँ क्यों न हो जीवन चलता रहता है। नर्मदा के पास तो भंडार है अनुभवों का। वरिष्ठ साहित्यकार रमेशचन्द्र शाह सच ही कहते हैं ''इस नदी के पास कितना कुछ कहने-बताने को है कि वह इस तुमुल कोलाहल कलह के बीच हमें अपने हृदय की बात लगने लगती है।'' मनुष्य की प्रत्येक संवेदना और अनुभूति की सहचरी रही है नर्मदा।

मंडला में नर्मदा का जो रूप देखने को मिलता है उससे मानव जीवन में कितना साम्य है। मंडला में नर्मदा लगभग दोहरी हो कर घुमाव लेती है। परिस्थितियाँ यदि जीवन को घुमावदार बनाती है तो उन घुमावदार मोड़ों में उसी सहजता के साथ गतिमान रहना चाहिए जैसे की नर्मदा रहती है। जैसे-जैसे आयु और अनुभव में वृद्धि होती है। गंभीरता उसके स्वभाव में आती-जाती है। अनुभव लदी डाली विनम्र होना सिखाती है। अमृतलाल वेगड़ जी की पंक्तियाँ याद आती हैं कि ''नर्मदा ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती जाती है मानो पानी के भार से नीचे की ओर झुकती है।'' जब एक अल्हड़ युवती प्रौढ़ होने लगती है तो वह रेवा से नर्मदा होने लगती है। नर्मदा जैसे-जैसे आगे बढ़ती है उसका विस्तार होता जाता है मानो आयु के

अनुभव अधिक समेटने से उसका पाट विस्तृत और विस्तृत होता गया हो। एक ठहराव उसके स्वभाव में दिखाई देने लगता है मानो उसे एहसास हो गया कि आत्मा का परमात्मा में लीन होने का समय निकट आ रहा है। भागती दौड़ती रेवा जैसे-जैसे सागर के करीब आती है शान्त और गहरी होती जाती है जैसे वह दार्शनिक हो उठती है। उसे पता है अब मैं को विलीन हो जाना है सर्व में।

'नर्मदा' एक जीवन परिक्रमा है। इसलिए नर्मदा की परिक्रमा की परंपरा है। श्री रामनारायण उपाध्याय जी ने कितना सुंदर कहा है कि ''नर्मदा की परिक्रमा यानी भारत के हृदय की परिक्रमा। लोक संस्कृति, लोकभाषा से परिचय प्राप्त करना, भारत के हृदय से जुड़ना। एकता की प्रतीक है यह नर्मदा-परिक्रमा। रेवा संघर्ष करती है, पहाड़ों को तोड़ती है, यह नदी संघर्ष का प्रतीक है। उसके पास का सान्निध्य स्वाभिमान पैदा करता है स्वाभिमान की प्रतीक है नर्मदा। मैं तो इसी रूप में लेता हूँ परिक्रमा को।''

क्या कुछ नहीं है माँ नर्मदा के आँचल में अमरकंटक से सागर तक नर्मदा के दोनों तटों में प्राकृतिक सौंदर्य, विविध मनोहारी दृश्य तो मानो नर्मदा की ऐसी संगी-साथी है जो उसका साथ ही नहीं छोड़ते। ऊँची-ऊँची छलाँगें लगाता साहस है, पहाड़ों की दुर्गम पथरीली राहों को अपने स्नेह से भिगोता स्नेह भी, जबलपुर की संगमरमरी प्रतिबिम्ब में अपना मुख निहारता यौवन भी, अभेद्य वनों में चुपचाप बहती शांकरी भी, शूलपाणि के वनवासियों के भरण पोषण का दायित्व भी, सदैव कर्मरत, लोककल्याण में लीन शिवत्व का प्रमाण भी। नर्मदा की सम्पूर्ण तट वीथिका तीर्थ है। वह ऋषियों, भीलों, किसानों और भक्तों सभी के लिये महत्त्वपूर्ण है। श्री रामचन्द्र बिल्लोरे की पंक्तियों में कहें तो-

'ओ ऋषियों की जीवन गीता
भीलों की शुभ वाणी
ओ कृषकों की शस्य श्यामला
भक्तों की महाराणी
लहर-लहर पर मंगल गीत सुनाती सी
पतित पावनी रेखा रस बरसाती सी
विंध्याचल सतपुड़ा किनारे खड़े रहे
चली नर्मदा मधुदीपों की बाती सी।'

सम्पर्क : भोपाल (म.प्र.)
मो. 9993707571

डॉ. आशा कनेल

सुभाष चन्द्र बोस : नेता जी

डॉ. एच. डल्ब्यू. लान्ग फैलो की प्रख्यात कविता में यह उल्लेख आता है कि महापुरुषों का जीवन रेत पर बने हुये पद चिह्नों के समान होता है। जिन्हें देखकर आने वाली पीढ़ियाँ अपना मार्ग चुनती हैं। महापुरुषों का यह जीवन चरित्र हिन्दी साहित्य में जीवनी विधा के रूप में हमें प्राप्त होता है। नेता जी सुभाषचन्द्र बोस के जीवन पर इस प्रकार का जीवनी शास्त्र बहुत अधिक मात्रा में प्राप्त नहीं होता किन्तु अन्वेषण करने पर कुछ अच्छे साहित्यकारों द्वारा लिखित जीवनियाँ प्राप्त होती हैं। इन समस्त पुस्तकों का अध्ययन करने पर हमारे ध्यान में आता है कि नेताजी का सम्पूर्ण जीवन अत्यन्त प्रेरणादायी रहा है। बाल्यकाल से उनका बचपन कुछ यूँ ढल रहा था की देखने वालों को उनका भविष्य स्पष्ट दिखाई दे रहा था। कोई भी जीवनी साहित्य अपने आप में पूर्ण नहीं मानी जाती है। प्रत्येक लेखक के लेखन में उसकी व्यक्तिगत रुचि के आधार पर प्रसंगों का चयन होता है और आलेख की रसात्मकता भी तदनुसार परिवर्तनीय रहती है। लेखन की भाषा शैली जीवनी साहित्य को कई बार बहुत रोचक बना देती है। तो कभी-कभी यही जीवनी साहित्य उबाऊ भी हो जाता है। इस अध्याय में हम श्री रविचन्द्र गुप्ता, श्रीकृष्ण सरल, श्याम सुन्दर त्रिपाठी, शिशिर कुमार बोस, एम.पी.कमल, डॉ. दशरथ ओझा, प्र.ग.सहस्त्रबुद्धे, मीनू सिंहल, प्राणनाथ वानप्रस्थी, डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल सहित अनेक स्वनाम धन्य साहित्यकारों के द्वारा रचित जीवनियों का अनुशीलन करने का प्रयास किया है।

''यह आत्मा की विधि है कि देश को जीवित रखने के लिए व्यक्ति को मरना चाहिए। आज मुझे मरना ही चाहिए ताकि भारत जीवित रह सके और स्वतंत्रता और यश प्राप्त कर सके-मत भूलो कि गुलाम रहना सबसे बड़ा अभिशाप है। मत भूलो कि असत्य और अन्याय से समझौता करना सबसे बड़ा पाप है। यह शाश्वत नियम याद रखो-यदि तुम अमर जीवन प्राप्त करना चाहते हो, तो जीवन दे डालो।''

नेता जी अपने भाषण एवं सन्देशों से हर भारतीय को प्रेरित करते रहते थे। उनके प्रेरक सन्देशों से हर भारतीय अपनी जान तक न्यौछावर करने को तैयार रहते थे। नेता जी ने सम्पूर्ण जीवन मातृभूमि को समर्पित कर दिया था। वे देश की आजादी के लिए कई बार जेल गये। उन्हें अंग्रेजों की गुलामी एक अभिशाप लगती थी। असत्य और अन्याय से समझौता करना उन्हें पाप लगता था। वे भीख माँगने की बजाय संघर्ष में विश्वास रखते थे। वे अपने सन्देशों द्वारा भारतीय की प्रेरित करते थे। कि कुछ पाने के लिए कुछ खोना पड़ता है। यदि देश को जीवित रखना है तो व्यक्ति को मरना पड़ेगा। जीवन का त्याग करना पड़ेगा। नेता जी गुलामी को सबसे बड़ा अभिशाप मानते थे।

लेखक श्रीकृष्ण 'सरल' ने इन पंक्तियों के माध्यम से नेताजी की देश भक्ति वीरता आदि भावों को सामने

लाने का प्रयास किया है। लेखक ने नेताजी का संदेश उन्हीं के शब्दों में शुद्ध हिन्दी में प्रस्तुत किया है। लेखक का इन पंक्तियों के माध्यम से यह भाव सामने आता है कि देश की आजादी बलिदान चाहती है। लेखक ने अपने इन भावों से बालकों के मन में त्याग और बलिदान का भाव जाग्रत करने का प्रयास किया है।

''भगवान मनुष्य-मनुष्य में कोई भेद नहीं करता और मुझे भी वह व्यवस्था स्वीकार नहीं है जो मनुष्य को मनुष्य से अलग करे। लाखों तो क्या, यदि आप करोड़ों रुपये भी दें तो मुझे उस शर्त के साथ स्वीकार नहीं है, जो आप लगा रहे हैं। क्षमा करें, मैं मन्दिर नहीं आ सकूँगा।''

इन पंक्तियों में नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की धर्म निरपेक्षता पर प्रकाश डाला गया है। नेताजी को युद्धकोष की आवश्यकता थी। दक्षिण भारत के चेट्टियार समाज के लोगों ने सिंगापुर में अपना एक मंदिर बनाया था, जिसमें अपार धन था। मन्दिर के पुजारियों ने नेताजी से निवेदन किया कि आप हमारे मन्दिर में चलें और हम युद्ध-कोष के लिए लाखों रुपये देंगे। बशर्ते आप के साथ हिन्दू के अतिरिक्त अधर्म व्यक्ति प्रवेश न करें? नेताजी ने उन्हें दो टूक उत्तर दिया कि जब भगवान मनुष्य-मनुष्य में कोई भेद नहीं करता तो हम क्यों करें? यदि आपकी भावना ऐसी है तो आप मुझे करोड़ों रुपये भी दें तब भी मैं आपकी शर्त स्वीकार नहीं करूँगा। मंदिर के पुजारी बहुत लज्जित हुए और उन्होंने बिना किसी भेदभाव के सभी को मंदिर में प्रवेश करने दिया। सुभाष की इस धर्म निरपेक्षता से सम्पूर्ण देशवासियों पर प्रभाव पड़ा।

सरल जी ने नेताजी के भेदभाव विरोधी भाव को प्रकट करने के लिए सरल एवं सरस शब्दों का प्रयोग किया है ताकि बच्चे उनके भावों को अच्छी तरह समझ कर अपने जीवन में उतार सकें।

''सुभाष में दया भाव, क्षमा तथा कष्ट सहिष्णुता के गुण कूट-कूट कर भरे थे। जब वे हैजे से पीड़ित नगरवासियों की सेवा कर रहे थे तभी हैदर नाम का एक गुण्डा उनका विरोध करने लगा। वह उनके कार्य में रुकावटें डालने लगा परंतु सुभाष अपने काम से तनिक भी विचलित नहीं हुए। दुर्भाग्य से हैदर भी उसी रोग की चपेट में आ गया। उसके परिवार के लोग उसे मृत्यु से जूझने के लिए अकेला छोड़ गए। तब सुभाष का हृदय करुणा और दया से भर आया। उन्होंने जी जान से हैदर की सेवा की और उसे मृत्यु से बचा लिया। इस घटना ने हैदर का हृदय परिवर्तन कर दिया। वह एक गंदे व्यक्ति से एक दयावान मानव में बदल गया और लोगों की सेवा करने लगा।''

प्रस्तुत पंक्तियों में लेखक डॉ. श्याम सुन्दर त्रिपाठी ने सुभाष की मानवता का वर्णन किया है। सुभाष में दया भाव, क्षमा तथा कष्ट सहिष्णुता आदि गुण थे। सुभाष की इस दया भाव ने हैदर नाम के गुण्डे तक में मानवता के गुण जाग्रत कर दिये थे। सुभाष के इन गुणों का सम्पूर्ण भारतवासियों पर प्रभाव पड़ा। लेखक की ये पंक्तियाँ हर भारतीय पर प्रभाव डालती हैं। भाषा सरल एवं बोधगम्य है। लेखक का यह प्रयास है कि सुभाष के गुणों को प्रत्येक देशवासी अपने जीवन में उतारेगा एवं देशवासियों में मानवता की भावना जाग्रत होगी। भाषा सरल होने से बच्चों को प्रभावित करेगी।

''यह क्यों नहीं कहते कि तुम में आई.सी. एस. उत्तीर्ण करने की क्षमता ही नहीं है। जब तुमसे उनकी बराबरी की क्षमता ही नहीं हैं तो किस दम पर अंग्रेजों का सामना करोगे।''

सुभाष के पिता सुभाष को शिक्षा के लिए इंग्लैण्ड भेजना चाहते थे। लेकिन सुभाष अंग्रेजों की नौकरी कर उनकी सेवा नहीं करना चाहते थे। इस पर पिता जानकीनाथ ने हँस कर व्यंग्य करते हुए कहा

कि जब तुममें आई.सी. एस. उत्तीर्ण करने की क्षमता ही नहीं है! तब अंग्रेजों से मुकाबला कैसे कर पाओगे। सुभाष ने पिता की यह चुनौती स्वीकार कर ली और अतः आई.सी.एस.उत्तीर्ण कर अपनी क्षमता का परिचय दिया। लेखक ने सुभाष की क्षमता का वर्णन किया है। इस उपलब्धि से सम्पूर्ण विश्व में सुभाष की प्रसिद्धि हो गई। जिस परीक्षा को उत्तीर्ण करने के लिए लोग लालायित रहते थे उसे सुभाष ने कम समय में अध्ययन कर उत्तीर्ण कर ली। लेखक डॉ. त्रिपाठी ने इन पंक्तियों को व्यंग्य के रूप में प्रस्तुत करते हुए सुभाष के गुणों को प्रस्तुत किया है। लेखक ने इस व्यंग्य के माध्यम से चुनौतियों को स्वीकार करने का प्रयास किया है। व्यंग्य की भाषा हास्य प्रधान होने से बालकों को बहुत आनंदमयी लगती है तथा वे हँसते हुए चुनौतियों को स्वीकार करने का प्रयास करेंगे।

''ईश्वर को साक्षी करके मैं यह पुनीत शपथ लेता हूँ कि मैं सुभाषचन्द्र बोस भारत और अपने उन करोड़ों देशवासियों को स्वतंत्र कराने के लिए, स्वतंत्रता के इस पुनीत युद्ध को अपने जीवन के अंतिम क्षण तक जारी रखूँगा।''

सुभाष को आजाद हिन्द सेना के लिए धन की आवश्यकता थी। इसलिए सुभाष ने स्थानों का प्रवास किया। सिंगापुर में रहते हुए सुभाष ने भारतीय स्वतन्त्रता संघ का सम्मेलन आयोजित किया। उसी सम्मेलन में नेताजी ने अपने देश को आजाद कराने के लिए शपथ ली और आजाद हिन्द सरकार की स्थायी स्थापना हो गई। इस अवसर पर घोषणा में यह माँग की गई कि सभी भारतीय उसके प्रति निष्ठावान रहें और अंतिम समय तक साथ दें। सुभाष की इस शपथ में सेना में जोश का संचार भर दिया। इन पंक्तियों में सुभाष का अपनी मातृभूमि के प्रति अनन्य प्रेम झलकता है।

लेखक डॉ. त्रिपाठी ने इन पंक्तियों में सुभाष के दृढ़ संकल्पी होने का भाव प्रस्तुत किया है। इन पंक्तियों में लेखक का भाव यह है कि जब कोई कार्य प्रारम्भ किया जाए तो उसे समापन करके ही छोड़ना चाहिये। लेखक के इस भाव से बच्चों के मन में किसी कार्य के प्रति तटस्थता का भाव जाग्रत होगा। लेखक ने बोधगम्य एवं प्रवाहमयी भाषा का प्रयोग किया है।

''वहाँ, कुछ ही दूर-वहाँ, उस नदी के पार, उन जंगलों से आगे, उन पहाड़ियों के उधर फैली है हमारे सपनों की धरती, जिस धरती से हम जनमे थे और जिसकी गोद में अब हम लौट रहे हैं...लहू को लहू बुला रहा है। उठो, वक्त न गँवाओ। हथियार सँभालो। वह रहा तुम्हें राह दिखाने वालों का बनाया रास्ता छीनते जाएँगे या, ईश्वर चाहेगा तो, शहीद हो जाएँगे, और चिरनिद्रा में अपनी फौज को दिल्ली ले जाने वाली राह का आलिंगन करते रहेंगे। दिल्ली का रास्ता आजादी का रास्ता है। चलो, दिल्ली।''

इन पंक्तियों में लेखक श्री शिशिर कुमार बोस ने सेनाध्यक्ष सुभाषचन्द्र बोस के अपनी सेना को दिये आदेश का वर्णन किया है। यह आदेश उस समय का है जब आजाद हिन्द फौज भारत भूमि से कुछ ही दूरी पर थी। नेताजी अपनी फौज को प्रेरित कर रहे थे कि जिस धरती को हम अंग्रेजों की दासता से मुक्त कराना चाहते थे, वह मात्र कुछ ही दूरी पर है। वह अपनी सेना को 'दिल्ली चलो' का नारा देते हुये अपनी सेना में जोश भर रहे थे। दिल्ली का रास्ता आजादी का रास्ता है। नेताजी इतने भावुक हो उठे थे कि वे एक भी पल व्यर्थ न गँवाना चाहते थे और दुश्मनों को अपनी मातृभूमि से हमेशा के लिए खदेड़ देना चाहते थे।

लेखक ने नेताजी की देश सेवा भावना को व्यापक रूप से प्रस्तुत किया है। नेताजी में मातृभूमि के प्रति

अनन्य प्रेम को इन पंक्तियों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। लेखक ने नेताजी के आदेश को बहुत ही सरल शब्दों में प्रस्तुत किया है। ये पंक्तियाँ बालकों के मन पर पूर्ण रूप से प्रभाव डालती हैं। इन पंक्तियों से बालकों के मन में वीरता एवं पराक्रम का भाव जाग्रत होता है और लेखक अपने उद्देश्य में पूरी तरह सफल हुआ है।

''गाँधी जी आदरणीय हैं, यह मैं मानता हूँ।'' सुभाष बोले-''वे हमारे नेता हैं, देश उन पर भरोसा रखता है, यह अच्छी बात है। हम नहीं चाहते कि अंग्रेजों को यह संदेश जाए कि भारतीय एकजुट नहीं है अथवा उनमें नेतृत्व को लेकर मतभेद है, अत: गाँधी जी की शैली से पूरी तरह सहमत न होते हुए भी हमें उन्हीं के नेतृत्व में काम करना चाहिए, परंतु उस स्थिति के लिए पूरी तरह सावधान रहना चाहिए, जब गाँधी जी बहकें अथवा ढीले पड़ें, देश के स्वाभिमान, अस्मिता के साथ कोई समझौता करें।''

प्रस्तुत पंक्तियों में लेखक एम.पी.कमल ने नेताजी सुभाषचन्द बोस और देशबन्धु चितरंजन दास के वार्तालाप का वर्णन किया है। लेखक ने इन पंक्तियों के माध्यम से सुभाष के कुशल नेतृत्व, संयम एवं स्वाभिमान के गुणों को उजागर करने का प्रयास किया है। नेताजी में अपने बड़ों के प्रति सम्मान का भाव प्रदर्शित हुआ है। लेखक ने सुभाष के शब्दों को प्रभावी रूप से प्रस्तुत किया है। नेताजी ने चितरंजन दास के समक्ष गाँधी जी के निर्णयों को बड़ी सहजता से बताया। नेताजी गाँधी जी के विचारों का आदर करते थे। उग्र विचार धारा होने के बावजूद वे कभी भी यह नहीं चाहते थे कि आपसी मतभेद की बातें अंग्रेजों तक पहुँचें ताकि अंग्रेज उनका कोई लाभ उठा सकें।

नेताजी के इन गुणों का बालकों के मन पर गहरा प्रभाव पड़े, तथा उनमें कुशल नेतृत्व धैर्य एवं एकता का भाव जाग्रत हो।

''मातृभूमि को स्वतंत्र कराने के संघर्ष में हम ऐसे संकट में फँस गए, जिसके बारे में कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था। पर यह न समझें कि हम हार गए हैं... देश की अड़तीस करोड़ जनता आजाद हिन्द-फौज पर आस लगाए बैठी है। दिल्ली की ओर जाने वाले मार्ग अनेक हैं। दिल्ली ही हमारा अंतिम पड़ाव है... पृथ्वी की कोई भी शक्ति भारत को गुलाम बनाए नहीं रख सकती... भारत बहुत जल्द आजाद होगा, जय हिन्द।''

नेताजी का सम्पूर्ण जीवन संघर्षमयी रहा है। उन्होंने कभी भी मुखीबतों से हार नहीं मानी। अपनी मातृभूमि को स्वतंत्र कराने का जो उनका स्वप्न था उस पर देश की जनता आस लगाये बैठी थी। आजाद हिन्द फौज अपने इसी स्वप्न की पूरा करने के लिये मार्ग में आने वाली अनेक प्रकार की मुसीबतों को झेलते हुए भूखे-प्यासे आगे बढ़ रही थी और नेताजी उन्हें आगे बढ़ने की प्रेरणा दे रहे थे। नेताजी अच्छी तरह से जानते थे कि कोई भी शक्ति भारत को आजाद होने से रोक नहीं पायेगी।

लेखक डॉ. दशरथ ओझा ने इन पंक्तियों के माध्यम से नेताजी के उन गुणों का वर्णन किया है जिससे समाज के सभी वर्ग प्रभावित हो गये थे। नेताजी ने सम्पूर्ण जगत में मातृभक्ति एवं देशभक्ति की भावना को जाग्रत किया है। लेखक ने सुभाष के गुणों को सरल भाषा में प्रस्तुत किया है। ये पंक्तियाँ सत्य और न्याय के लिए बलिदान होने की प्रेरणा देती है।

''मैं भला अंग्रेजों की कभी सेवा कर सकता हूँ? असंभव। क्रूर-निर्दयी-अन्याय अंग्रेजों का, जालियाँवाला बाग के रक्तपात के पापियों का, क्या मैं कभी साथ दे सकता हूँ? क्या मैं स्वदेश का शत्रु बन सकता हूँ? असंभव। यदि सब लोग घरौंदों में मशगूल हो जायें, तो देश की चिंता कौन करेगा? माँ की

पुकार रात-दिन मेरे कानों में गूँज उठती है-'धाँव-धाँव समर क्षेत्रे'-परतंत्र राष्ट्र का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह स्वतंत्र्य प्राप्ति तक अखण्ड लड़ता रहे। स्वतंत्रता संग्राम का सैनिक बनने हेतु मैंने आई.सी.एस. का त्याग किया है।''

इन पंक्तियों में लेखक श्री प्र.ग. सहस्त्रबुद्धे ने बहुत ही सरल भाषा का प्रयोग किया है। लेखक बच्चों के मनोभाव एवं रुचि को अच्छी तरह जानते हैं। उन्होंने बालकों की रुचि को ध्यान में रखते हुए इन पंक्तियों के माध्यम से बालकों के मनमें त्याग एवं बलिदान की भावना को जाग्रत करने का प्रयास किया है।

''इतिहास बताता है कि साम्राज्य निर्माण होते हैं, फैलते हैं और नष्ट होते हैं। अंग्रेजी साम्राज्य अब तीसरी स्थिति में है। उनके राज्य की समाप्ति हमारी एकता, दृढ़ता, पराक्रम तथा त्याग पर निर्भर है। स्वराज्य प्राप्ति के लिये हमें क्रांन्तिकारी कदम उठाने होंगे।''

इस भाषण के माध्यम से उन्होंने देश की जनता में स्वातंत्र्य प्रेम की ज्योति प्रज्ज्वलित की थी। वे अंग्रेजी साम्राज्य को भारत से जड़ सहित उखाड़ फेंकना चाहते थे। उन्होंने इस भाषण के माध्यम से देश की भावना को जाग्रत कर दिया था।

लेखक ने नेताजी के इस भाषण को शुद्ध हिन्दी में लिखा। भाषा सरल और सरस है। लेखक ने नेताजी के प्रभावी शब्दों को ज्यों का त्यों लिखा है। ये पंक्तियाँ जनमानस की स्मृति पर गहरा एवं स्थायी प्रभाव डालती हैं। बालकों के मन पर भी ये प्रभावी शब्द अपनी अमिट छाप छोड़ते हैं एवं उनमें सच्चा देश भक्त बनने का गुण जाग्रत होता है।

''हमारे विद्यालय के पास ही एक गरीब बुढ़िया भिखारिन रहती थी। उसका संसार में कोई नहीं था। यह रोटियाँ मैं रोज उसी के लिए ले जाया करता था, परन्तु कल दिन में उसका देहांत हो गया, इसलिए अब इन रोटियों की कोई आवश्यकता नहीं रह गई है।''

प्रस्तुत पंक्तियों में लेखिका मीनू सिंहल ने सुभाष के गुणों का वर्णन किया है। बालक सुभाष शाला जाते समय भोजन ले जाता है और दीन-दुखियों को खिला देता है। एक दिन सुभाष रोटियाँ वापस घर ले जाता है। यह देखकर माँ पूछती हैं सुभाष पूरी घटना माँ को बताता है। वह रोटियाँ अपने लिए नहीं वरन बूढ़ी भिखारिन के लिए ले जाता था और अब वह मर गई हैं। घटना सुनकर माँ द्रवित होकर सुभाष को अपने सीने से लगा लेती हैं। लेखिका ने सामान्य व सरल हिन्दी भाषा में सुभाष के गुणों का वर्णन किया है। इन पंक्तियों से सुभाष का दीन-दुखियों के प्रति प्रेम भाव व दयाभाव का गुण जाग्रत होगा। भाषा सरल होने से बच्चों को पंक्तियों का भाव सरलता से समझ में आयेगा और वे इस भाव को अपने जीवन में उतार सकेंगे।

''मैं किसी भी मूल्य पर अंग्रेजों की नौकरी नहीं करूँगा। मैं अपना जीवन देश की सेवा में लगाऊँगा।''

भारत-मन्त्री ने पूछा, 'क्यों पागल हो रहे हो, अपना निर्वाह कैसे करोगे?'

सुभाष बाबू गम्भीर होकर बोले, 'मैंने अभ्यास कर लिया है कि मैं दो आने(रुपये का आठवाँ भाग) प्रतिदिन में अपना निर्वाह कर सकता हूँ।''

लेखक श्री प्राणनाथ वानप्रस्थी ने नेताजी की देश प्रेम की भावना का वर्णन किया है। नेताजी ने आई.सी.एस नौकरी को त्याग कर अपने देश की सेवा करने की ठान ली थी। अंग्रेज भारत-मंत्री को स्पष्ट

रूप में यह कह दिया कि मैं किसी भी मूल्य पर अंग्रेजों की नौकरी नहीं करूँगा। इस बात पर भारत-मंत्री ने उन्हें जीवन निर्वाह करने की बात पूछी। सुभाष बाबू ने सटीक रूप में बोल दिया कि मैं दो आने प्रतिदिन में अपना निर्वाह कर सकता हूँ।

लेखक ने नेताजी की देश सेवा भावना को बहुत ही प्रभावणता से प्रस्तुत किया है।

''ठीक है सुभाष, प्रयत्न आवश्यक है। कर्तव्य भी स्पष्ट है। तुम जो भी मार्ग अपनाओ, उसमें कोई न कोई उद्देश्य निहित रहना चाहिए।

'यदि ऐसा है तो हमारा पहला कर्तव्य है-अपने देशवासियों की रक्षा करना। जाजपुर के निवासियों की रक्षा होनी चाहिए। मैं अविलंब जाजपुर जाना चाहता हूँ।'

'क्यों?' बेनी माधव का मुँह आश्चर्य से खुला रह गया। 'जाजपुर के निवासियों की रक्षा करने के लिए, उनके जीवन की रक्षा के लिए।'

'सुभाष, मैं नहीं समझ पा रहा हूँ कि तुम इस संक्रामक बीमारी का सामना किस प्रकार कर पाओगे? मेरी राय है कि तुम वहाँ न जाओ। मुझे भय है कि कहीं...।'

''बाबूजी, मैं अवश्य जाऊँगा, मेरा निश्चय दृढ़ है।''

लेखक डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल ने सुभाष की कर्तव्य निष्ठा का व्याख्यात्मक विवेचन किया है। बचपन से सुभाष के मन में देश सेवा की भावना प्रबल थी। बालक सुभाष अपने कर्तव्यों के प्रति निष्ठावान थे। जब जाजपुर गाँव में हैजा फैला तो सुभाष अपने आपको वहाँ जाने से रोक नहीं पाये। पिताजी के मना करने के उपरान्त भी सुभाष ने जाजपुर जाने का दृढ़ निश्चय किया। सुभाष ने हैजा जैसी संक्रामक बीमारी का सामना करने का निश्चय किया। बाबू बेनी माधवदास जानते थे कि सुभाष जिस कार्य का संकल्प कर लेता है उसको किये बिना उसे चैन नहीं मिलता अंततः सुभाष के पिताजी को झुकना ही पड़ा।

लेखक ने अपनी भाषा एवं शैली के माध्यम से सुभाष और उनके पिताजी के कथ्य को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है। इन पंक्तियों से बालक भी अपने कर्तव्यों को समझेंगे एवं निष्ठावान बनने का प्रयत्न करेंगे।

''मैं सदैव ही भारत का सेवक रहूँगा और अपने अड़तीस करोड़ भाई-बहनों के शुभचिंतन को अपना कर्तव्य समझूँगा। आजादी अर्जित कर लेने के पश्चात् भी भारत की आजादी की रक्षा के लिए अपने खून की आखिरी बूँद भी बहाने के लिए तैयार रहूँगा।''

इन पंक्तियों में लेखक श्रीकृष्ण सरल जी ने नेताजी के दिल में आजादी को लेकर कितना दर्द हैं और आजादी ही उनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य है। इस बात को उन्होंने पाठकों के समक्ष नेताजी के कथन के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

''खुदीराम बोस को 11 अगस्त 1908 को फाँसी पर चढ़ाया गया था। सुभाष ने स्कूल में उनकी बलिदान तिथि मनाने का निश्चय किया। जब उन्होंने उनके बलिदान की कहानी पढ़ी तो चित्र सामने रख कर रात भर आँसू बहाते रहे। अगले दिन अपने गुरु बेनी माधव दास से खुदीराम बोस की बलिदान तिथि मनाने की आज्ञा लेकर विद्यालय में छोटे से कार्यक्रम का आयोजन किया।''

खुदीराम बोस के चित्र के समक्ष उस बालक का फूट-फूट कर रोना यह सिद्ध करता है कि नन्हा सुभाष अपने जीवन काल के लिए प्रेरणा कहाँ से ले रहा था। जीवनी में आये इस प्रसंग को लेखक ने

अत्यन्त भाव प्रवण भाषा का प्रयोग करते हुए रोचक बना दिया है।

''फिर वह भव्य आकृति आगे बढ़कर पुष्प-मालिका शिशु के गले में डालती कहती है, ''ओ देवपुत्र... तू अवतारी है, तुझे जननी जन्मभूमि को बंधन-मुक्त कराने के लिए भेजा गया है। मेरा आशीष है कि तू अपने महान् उद्देश्य में सफल हो।''और यह पुष्पमाला शिशु के गले में जा गिरी।

''माँ... साक्षात् माँ दुर्गा...।'' भाव विभोर होकर रायबहादुर दुर्गा के चरण स्पर्श करने को झपटते हैं। अचानक उन्हें पलंग के पाए की ठोकर लगती है और स्वप्न-भंग हो जाता है।

रायबहादुर अथाह अचरज से आँखें मलते हुए देखते हैं। कहीं कुछ भी नहीं था। स्वप्न, केवल स्वप्न। मगर अद्भुत स्वप्न। ऐसा स्वप्न उन्होंने कभी नहीं देखा था।

लपकते हुए पत्नी के कक्ष में आए। देखा तो प्रभावती गहरी निद्रा में लीन थी और समीप ही पालने पर सुभाष सोया था।

वास्तव में उसके गले में एक ताजी पुष्पमाला पड़ी थी।''ओह! तो स्वप्न केवल स्वप्न नहीं था? पत्नी के निकट आकर उसे सारी घटना कह सुनाई और शिशु के गले में पड़ी माला की ओर संकेत किया।

''सच... यह कैसी लीला है।'' प्रभावती चकित हो उठी।''ईश्वर जाने...।'' रायबहादुर हर्षातिरेक के कारण अधिक कुछ न कह सके।''

सुभाष के जन्म के साथ ही उनके जीवनकाल में कुछ बड़ा काम किये जाने के संकेत मिलते हैं। ऐसे ही एक घटनाक्रम को साहनी पब्लिकेशन्स द्वारा प्रकाशित 'नेताजी सुभाषचन्द्र बोस' पुस्तक में बहुत रोचक ढंग से उल्लेखित किया है। बालक सुभाष के माता-पिता ईश्वर से जिस प्रकार की तेजस्वी संतान चाहते थे उसके लक्षण उन्हें अपने नवजात शिशु में ईश्वरीय अनुकम्पा के कारण दिखाई देने लगे थे।

''स्वतन्त्रता आन्दोलन के दिनों में जिनकी एक पुकार पर हजारों महिलाओं ने अपने कीमती गहने अर्पित कर दिये, जिनके आव्हान पर हजारों युवक और युवतियाँ आजाद हिन्द-फौज में भर्ती हो गये, उन सुभाषचन्द्र बोस का जन्म उड़ीसा की राजधानी कटक के एक मध्यम वर्गीय परिवार में 23 जनवरी 1897 को हुआ था।''

श्री विजय कुमार अनेक वर्षों से बाल एवं प्रौढ़ साहित्य का लेखन कर रहे हैं। उनकी मँजी लेखनी से अनेक महापुरुषों का जीवन चरित्र पाठकों के लिए सहज सुलभ हुआ है। लंबे-लंबे वाक्य होने के बाद भी शब्दावली की सरलता उनकी भाषा को रोचक बनाती है। ऊपर दिये गये उद्धरण में हमारे ध्यान में आता है कि सुभाष बाबू के जन्म का उल्लेख करते हुए जिस प्रकार से सुभाष बाबू के स्वतन्त्रता आन्दोलन की सम्पूर्णता को रेखांकित किया गया है, वह अद्भुत है। 'हर दिन पावन' पुस्तक का केवल यह अंश ही नहीं अपितु सम्पूर्ण पुस्तक बाल पाठकों के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

पूर्व में उल्लेखित समस्त संदर्भों का भाषागत अनुशीलन करने पर हमारे ध्यान में आता है कि कुछ स्थानों पर लेखक की भाषा अत्यधिक क्लिष्ट हो गई है जो कि बाल जीवनी साहित्य की दृष्टि से उचित नहीं कहीं जा सकती। एक उदाहरण श्रीकृष्ण सरल द्वारा लिखित हमारे नेताजी पुस्तक से उद्धृत है जिसमें कुछ शब्द तो बहुत ही कठिन है 'यह आत्मा की विधि है', 'असत्य और अन्याय से समझौता करना पाप है' तथा 'यह शाश्वत नियम याद रखो' जैसे कठिन वाक्य बच्चों के लिए सहजग्राह्य नहीं हो सकते हैं।

इसी प्रकार इसी पुस्तक का एक अन्य उद्धरण भी भाषा की दृष्टि से थोड़ा कठिन ही है। विशेषकर

अल्पविरामों का उपयोग करते हुए अत्यन्त दीर्घ वाक्यों का प्रयोग करना भाषायी दृष्टि से ठीक नहीं माना जाता। इस कारण से मूल सन्देश सीधे-सीधे पाठक तक पहुँचने में बाधा उत्पन्न होती है।

डॉ. श्याम सुन्दर त्रिपाठी चूँकि बाल जगत से जुड़े रहे हैं इसलिए उनकी भाषा बहुत ही सहज, सरल है। छोटे-छोटे वाक्य, सरल शब्दावली और अर्थ ग्रहण करने की सहजता पाठकों के लिए अत्यधिक अनुकूल मानी जायेगी। डॉ. त्रिपाठी के एक और अन्य उद्धरण में पिताजी द्वारा सुभाष को गई चुनौती बाल मनोविज्ञान का सरल रूप प्रस्तुत करता है। बालमन प्राप्त चुनौती का मुकाबला जान बूझकर दृढ़ता से करता है यही भाव उक्त उद्धरण से पता चलता है।

श्री एम. पी. कमल द्वारा लिखित पुस्तक व्यावसायिक प्रकाशक द्वारा प्रकाशित है। इस प्रकार की पुस्तकों के प्रकाशक भी अपने पाठक वर्ग की विविधता का ध्यान रखकर भाषा से कोई समझौता नहीं करते यही कारण है की इस पुस्तक की भाषाभी पाठकों के लिए अत्यन्त सरल बन पड़ी है।

डॉ. दशरथ ओझा द्वारा लिखित जीवनी में लेखक की भाषा की प्रगल्भता पाठकों के मानस तक पहुँचने में बाधा उत्पन्न करती है।

प्र.ग. सहस्त्रबुद्धे मूलतः मराठी लेखक हैं। यही कारण है कि उनकी मराठी निष्ठ हिन्दी कहीं-कहीं सामान्य हिन्दी पाठक के लिये अटपटी सी हो जाती है। 'धाँव-धाँव समर क्षेत्रे' जैसे वाक्य तथा 'राज्य की समाप्ती एकता दृढ़ता पराक्रम पर निर्भर है'। जैसे वाक्य विन्यास भाषा में अहिन्दी स्पर्श का अनुभव कराता है।

जहाँ तक मीनू सिंहल की जीवनी का प्रश्न है वह भी भाषा की दृष्टि से बालमन के अनुकूल है। प्राणनाथ वानप्रस्थी की जीवनी में यूँ तो भाषा सरल है किन्तु कहीं-कहीं कुछ शब्दों का प्रयोग मन को खटकने लगता है। मैं किसी भी मूल्य पर अंग्रेजों की नौकरी नहीं करूँगा के स्थान पर यदि सामान्य प्रचलित शब्द किसी भी कीमत पर प्रयोग होता तो ज्यादा बेहतर होता।

श्री गिरिराज शरण अग्रवाल भी अत्यन्त उद्भट विद्वान हैं किन्तु उनकी विद्वतापूर्ण भाषा के कारण सामग्री सहज ग्राह्य नहीं रह जाती है प्रयत्न, कर्तव्य, उद्देश्य, वासियों संक्रामक, अवश्य, निश्चय जैसे शब्द कठिनाई उत्पन्न करेंगे ही। यही स्थिति सरल जी के उद्धरण में शुभचिंतन जैसे शब्दों से पैदा होती है।

अन्तिम रूप से यह निष्कर्ष दिया जा सकता है की जीवनी साहित्य जब बड़ों की दृष्टि से अवलोकन किया जाता है तो अत्यन्त श्रेष्ठ प्रतीत होता है किन्तु बाल पाठकों की आयु, बुद्धि और समझ के आधार पर यही सामग्री हमें उसके स्तर की श्रेष्ठता सिद्ध करने में कमतर प्रतीत होती है।

सम्पर्क : बैतूल (म.प्र.)
मो. 8821165666

कर्नल प्रवीण शंकर त्रिपाठी

साहित्य में पावस ऋतु

इस धरा पर ऋतुओं का बड़ा महत्त्व है। धरती पर हर प्राणी न सिर्फ ऋतुओं से किसी न किसी रूप में जुड़ा है अपित उस पर आश्रित है। भारतीय मौसम चक्र के अनुसार छः ऋतुएँ हैं जो गर्मी, वर्षा व सर्दी के मौसम पर आधारित हैं जिन्हें हम निम्नलिखित नामों से जानते हैं :-

वसन्त (Spring), चैत्र से वैशाख (मार्च से अप्रैल)
ग्रीष्म (Summer)ज्येष्ठ से आषाढ़ (मई से जून)
वर्षा (Rainy)श्रावन से भाद्रपद (जुलाई से सितम्बर)
शरद् (Autumn) आश्विन से कार्तिक (अक्टूबर से नवम्बर)
हेमन्त (pre-winter) मार्गशीर्ष से पौष (दिसम्बर से 15 जनवरी)
शिशिर (Winter) माघ से फाल्गुन (16 जनवरी से फरवरी)

वैसे तो सभी ऋतुएँ महत्त्वपूर्ण होती हैं पर इस ऋतु चक्र में सबसे ज्यादा चर्चा दो ही ऋतुओं की होती है। वो हैं वसंत और वर्षा ऋतु, जिन्हें हम मधुमास व पावस के नाम से जानते हैं जो अपनी प्रकृति, गुणों एवं उपयोगिता के कारण सर्व प्रसिद्ध हैं।

वसंत के सुहाने मौसम के बाद प्रचंड गर्मी से धरती और इस पर रहने वाले सभी प्राणियों को राहत दिलाने हेतु पावस का आगमन होता है। वैसे पावस के आगमन के पीछे गर्मी का भी बड़ा हाथ है, क्योंकि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखें तो गर्मी से जहाँ समुद्रों में जल का वाष्पीकरण तेज होने के कारण बादल बनते हैं, वहीं जमीन पर अत्यधिक गर्मी के कारण वायु भी गर्म होकर ऊपर उठ जाती है जिसका स्थान लेने के लिये ठंडी, नम और वाष्प कणों से लदी वायु का एक चक्र बनाता है और अपने साथ बादलों और उनके द्वारा वर्षा को लाता है। जिसे हम भारतीय उप महाद्वीप में मानसून भी कहते हैं। करीब चार महीने चलने वाले वर्षा चक्र को चातुर्मास भी कहते हैं। वैसे देखा जाये तो सभी ऋतुओं में वर्षा ऋतु का बहुत महत्त्व है अतः इसे अलग-अलग दृष्टिकोण से विश्लेषित किया जा सकता है या यह कहें कि इस ऋतु संबंधित सभी पक्षों की व्याख्या कर के इसकी महत्ता को समझा जा सकता है। वर्षा ऋतु के निम्नलिखत पक्ष हैं जो इसको अन्य ऋतुओं से महान बनाते हैं।

भाव पक्ष : भाव पक्ष में वर्षा ऋतु को पावस के नाम से जानते हैं। जो ऐतिहासिक और पारम्परिक रूप से बहुप्रतीक्षित होता है। ताप से झुलसती धरा को इस ऋतु में न केवल शीतलता मिलती है अपितु सर्वत्र हरियाली की छटा बिखरने के कारण हरी-धानी चूनर ओढ़े हुए लगती है।

पावस में हरीतिमा के कारण धरती के बदले स्वरूप का भी मनोरम चित्रण करके मानवीकरण किया गया है। मानव के साथ-साथ पशु-पक्षियों पर भी पावस के आगमन का असर व्यापक रूप से दर्शाया गया है। जैसे मधुमास में कोयल का वैसे ही पावस मोर, पपीहा और दादुर का भी भरपूर चित्रण किया गया है। जब साहित्यकार ऋतु के प्रभाव को अंतस में उतार कर उसे शब्दों में ढाल कर प्रस्तुत करता है तो उकेरे गये बिंब पाठक के मनमस्तिष्क में सजीव हो उठते हैं :-

'दादुर धुनि चहुँ दिसा सुहाई, बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई।
नव पल्लव भए बिटप अनेका, साधक मन जस मिलें बिबेका।
लछिमन देखु मोर मन, नाचत बारिद पेखि।
गृही बिरति रत हरष जस, विष्नु भगत कहुँ देखि।'

साहित्यिक पक्ष : वर्षा प्रकृति की सुन्दरतम ऋतु है जो कि आदि कवि वाल्मीकि से लेकर आधुनिक नवगीतकारों तक को काव्य सृजन की प्रेरणा देती रही है। संस्कृत साहित्य में कालिदास का वर्षा-ऋतु चित्रण अप्रतिम है। इस ऋतु के सभी पक्षों का वर्णन आदिकाल से ही कवि अपने काव्यों और महाकाव्यों में करते आये हैं और अब भी जारी है। हिन्दी साहित्य के मध्ययुग में तुलसी, सूर, जायसी आदि कवियों ने पावस ऋतु का सुंदर-सरस चित्रण किया है। वर्षा ऋतु में सभी प्राणी तपती गर्मी से राहत पाकर अपने-अपने ढंग से आनंदोत्सव मनाते हैं जिस कारण भावभूमि में विचरने वाले कवियों ने पावस ऋतु को लेकर नई-नई कल्पनाओं की उड़ानें भरी हैं, जिनके कारण वे साहित्य के माध्यम से आज भी जीवित हैं। ऐसे अमर कवियों में कविकुल-गुरु कालिदास का अपना विशिष्ट स्थान है। वैसे तो उन्होंने अपनी सभी रचनाओं में प्रकृति की छटा का खुलकर वर्णन-चित्रण किया है, फिर भी उनका 'मेघदूतम् खंडकाव्य' पावस ऋतु वर्णन की पराकाष्ठा है। मेघदूत एक ऐसा खंडकाव्य है, जिसमें विरही यक्ष ने अपनी प्रेयसी के पास अपना संदेसा भेजने के लिए मेघ को दूत बनाया। इसमें कालिदास ने प्रेमी हृदय की भावना को उड़ेल दिया है

पावस ऋतु में जहाँ मेघदूत द्वारा रामगिरि से लेकर मानसरोवर तक बीस स्थानों की यात्रा और शोभा का वर्णन है, वहाँ कवि का वाक्वैभव भी मुखर हुआ है। मेघदूत के उत्तर मेघ में यक्ष मेघदूत को अपनी विरहिणी प्रिया के निकट यह संदेश पहुँचाने का विशेष अनुरोध करता है और कहता है कि 'यह जो मैंने श्यामा लता में अपनी प्रियतमा का अंग-लावण्य खोजने की चेष्टा की है, चकित-हिरणी के दृष्टिपात में उसकी चंचल-दृष्टि को देखना चाहा है, चंद्रमा में उसके मुख की उज्ज्वलता, मयूर-पुच्छ में उसका केश-संभार एवं नदी की छोटी तरंगों में जो उसके भ्रू-विलासों का संधान करना चाहा है, उससे ही शायद मेरी प्रियतमा मेरी धृष्टता देखकर अत्यंत रुष्ट हो गई है क्योंकि इनमें से किसी के भी साथ उसके किसी अंग के लावण्य की तुलना नहीं हो सकती।'

इसी प्रकार ऋतु संहार में महाकवि कालिदास वर्षा ऋतु की समानता एक ऐसे राजा से करते हैं जो प्रजा को सुख से सम्पन्न करने के लिए ऐसे राजा को नष्ट कर देता है, जो उसका शोषण करता रहा हो- यथा..

'मोतियों की झालरें फुहारों से सजाए हुए बादलों के मतवाले हाथी पर आता हुआ।

व्योम तक विद्युत की झंडियों को फहराता घनघोर गर्जन की दुंदुभि बजाता हुआ।
कालिदास प्यासे पपीहों की पुकार सुन झूम झुक धुआँधार पानी बरसाता हुआ।
कामियों का प्यारा किये राजाओं का ठाट-बाट पावस पधारा इन्द्रधनुष चढ़ाता हुआ।।'

भक्त-कवि तुलसीदास भी पावस-ऋतु के आगमन पर आनंद-विभोर हुए बिना न रह सके। पावस ऋतु प्रेमियों के विरह को बढ़ा देती है। भगवान राम जैसे मर्यादा-पुरुष को वर्षाकालीन छटा अनेक प्रकार से अपनी प्रिया के स्मरण से भयभीत करके तीव्र वेदना के सागर में धकेल देती है। प्रेम और विरह की अग्नि के लिए पावस ऋतु जैसे घी का काम करती है। अंतर है तो केवल इतना कि तुलसीदास प्रत्येक चौपाई के दूसरे भाग में तुलना तथा उपमा द्वारा उसे भक्ति और ज्ञानमय बना देते हैं, किंतु मूल भाव तो वेदना, विरह, उद्विग्नता और मिलनातुरता ही है। यथा- रामचरित मानस के किष्किंधा कांड में गोस्वामी तुलसीदास जी लिखते हैं-

'वर्षा काल मेघ नभ छाए, गरजत लागत परम सुहाए।
घन घमंड नभ गरजत घोरा, प्रिया हीन डरपत मन मोरा।
दामिनि दमक रह घन माहीं, खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं।
बरषहिं जलद भूमि निअराएँ, जथा नवहिं बुध बिद्या पाएँ।
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे, खल के बचन संत सह जैसे।
छुद्र नदीं भरि चलीं तोराई, जस थोरेहुँ धन खल इतराई।
भूमि परत भा ढाबर पानी, जनु जीवहि माया लपटानी।'

भक्ति काल में वर्षा रितु अपनी सम्पूर्ण गरिमा और सौन्दर्य के साथ उपस्थित है। इस काल के सभी कवियों ने वर्षा ऋतु का चित्रण किया है- कहीं प्रतीकात्मक रूप में, कहीं शृंगार के उद्दीपक रूप में तो कहीं वियोग के रूप में। इस प्रकार वर्षा ऋतु की उपस्थिति और उससे जुड़े प्रत्येक पहलू को किसी न किसी रूप में चित्रित किया है। कहीं मेघों के द्वारा संदेश देने का वर्णन है तो कही विरहन की पीड़ा का चित्रण है। कहीं सावन में झूलों की पींगे तो कहीं मेहंदी लगे हाथों के बिंब उकेरे गये हैं।

हिंदी साहित्य में बारहमासा की जब बात की जाती है, तब जायसी का नाम सबसे पहले लिया जाता है। बारह मासा की शुरुआत आषाढ़ से की जाती है। नागमती विरह से उपजी पीड़ा को जायसी इन शब्दों में व्यक्त करते हैं -

'चढ़ा असाढ़ गगन घन गाजा/साजा विरह दुंद दल बाजा।
धूम साम धौरे घन धाये/सेत धजा बग पाँति देखाये।'

आधुनिक हिन्दी साहित्य में छायावादी कवियों में प्रसाद, निराला, पंत तथा महादेवी ने वर्षा संबंधी कई कविताएँ लिखी हैं। महादेवी का आत्म-परिचय ही 'नीर भरी दुख की बदली' के रूप में है। नवगीत के प्रेरक पुरुष माने जाने वाले निराला की कविताओं में वर्षा की अनेक छवियाँ हैं। नई कविता और प्रगतिशील कविता की धरा में भी वर्षा से संबंधित कविताएँ हैं। नागार्जुन की मेघ बजे, घन कुरंग, बादल को घिरते देखा है, जैसी कई वर्षा-केंद्रित प्रसिद्ध कविताएँ हैं।

आधुनिक काल में नवगीत परम्पराओं के कवियों ने वर्षा ऋतु का सर्वथा यथार्थवादी और

विंडम्बनाओं से भरपूर रूप का चित्रण किया है। बुद्धिनाथ मिश्र के नवगीत 'आर्द्रा' में वर्षा की विकल प्रतीक्षा मर्मस्पर्शी है-

'छाती फटी कुँआ-पोखर की/धरती पड़ी दरार
एक पपीहा तीतर पाखी धन को/रहा पुकार
चील उड़े डैने फैलाये/जलते अम्बर में
सहमे-सहमे बाग-बगीचे/सहमे-से घर द्वार
सूखे की उपज होती है अकाल।'

शिव बहादुर सिंह भदौरिया के नवगीत-'सूखे का गीत' में भी वर्षा के लिए टोटके दिखाए गए हैं-

इन्द्र को मनाएँगे टुटकों के बल/रात ढले निर्वसना जोतेगी हल।

खाली बादल की विडम्बना को चित्रित करते हुए योगेंद्रदत्त शर्मा ने लिखा हैं :

जल मरुथल में/ विलीन हुई दोपहरी
उड़ते खाली बादल/रीती गंगा लहरी
जितनी ही प्यास बढ़ी/उतनी जल से दूरी धार।

धार्मिक पक्ष : भारत में पावस ऋतु में रथ यात्रा, हरियाली तीज, नाग पंचमी, रक्षा बंधन और जन्माष्टमी, ओणम जैसे प्रमुख तीज-त्यौहार पड़ते हैं जिन्हें सभी विशेषकर महिलाएँ बहुत उत्साह से मनाती हैं। जिस प्रकार धरती हरीतिमा की चूनर ओढ़ कर शृंगारित होती है उसी प्रकार महिलाएँ भी भाँति-भाँति के रंग-बिरंगे परिधान पहन कर पर्व-त्यौहार मना कर प्रकृति की सुंदरता को बढ़ाती हैं। सुदूर केरल में इसी ऋतु में विश्वविख्यात बोट रेस भी आयोजित की जाती है। इसी ऋतु में जन जागृति हेतु आरंभ किया गया दस दिवसीय गणपति उत्सव पूरे देश में उत्साहपूर्वक मनाया जाता है जो कि अनंत चतुर्दशी को समाप्त होता है। तदोपरांत शारदीय नवरात्र पर्व आरंभ होते हैं।

धार्मिक दृष्टि से देखें तो इस दौरान रथ यात्रा और जन्माष्टमी की बात तो कर चुके हैं, पर सबसे महत्त्वपूर्ण धार्मिक आस्था का प्रतीक सावन का महीना है जो कि शिव जी को अति प्रिय है और श्री अमरनाथ यात्रा इसका अभिन्न अंग है। पौराणिक मान्यता है कि देव-दैत्यों द्वारा समुद्र का मंथन सावन मास में किया गया था। जब मंथन से हलाहल विष निकला तो चारों तरफ हाहाकार मच गया। संसार की रक्षा करने के लिए भगवान शिव ने विष को कंठ में धारण कर लिया और उनका कंठ नीला पड़ गया जिससे उनका नाम नीलकंठ भी पड़ा। विष का प्रभाव कम करने के लिए सभी देवी-देवताओं ने भगवान शिव को जल अर्पित किया, जिससे उन्हें राहत मिली। इससे वे प्रसन्न हुए। तभी से हर वर्ष सावन मास में भगवान शिव को जल अर्पित करने या उनका जलाभिषेक करने की परंपरा बन गई। इसी परंपरा के अंतर्गत उत्तर एवं पूर्व भारत में काँवड़ यात्रा पूरी श्रद्धा तथा उत्साह से मनाया जाता है, जिसमें श्रद्धालु गंगाजल लाकर अपने गाँव शहर के मंदिरों में अभिषेक करते हैं।

श्रावण मास में त्रयोदशी, सोमवार और शिव चौदस प्रमुख हैं। भगवान शंकर को भस्म, लाल चंदन, रुद्राक्ष, आक के फूल, धतूरे का फल, बेल पत्र, भांग विशेष प्रिय हैं। भगवान शिव की पूजा वैदिक, पौराणिक, मंत्रों से की जाती है। इस दौरान शायद ही कोई शिव भक्त हो जो शिव जी की आराधना नहीं

करता हो। इस महीने पड़ने वाले सोमवार को श्रद्धालु मन:पूर्वक व्रत रखते हैं और इच्छित अभीष्ट को प्राप्त करने हेतु शिव आराधना करते हैं।

सामाजिक एवं आर्थिक पक्ष : भारत में वर्षा ऋतु एक बेहद ही महत्त्वपूर्ण ऋतु है इसका भारत की कृषि आधारित अर्थव्यवस्था पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। भारत में वर्षा ऋतु आषाढ़, श्रावण तथा भादो मास में मुख्य रूप से होती है तथा खरीफ फसल के लिए बहुत उपयोगी होती है। मानसून भारतीय खेती का जीवनदाता है, क्योंकि इस पर लगभग दो खरब डॉलर की अर्थव्यवस्था निर्भर करती है तथा कम से कम पचास प्रतिशत कृषि को पानी वर्षा द्वारा ही प्राप्त होता है। सामान्य से ऊपर मानसून रहने पर कृषि उत्पादन और किसानों की आय दोनों में बढ़ोतरी होती है, जिससे ग्रामीण बाजारों में उत्पादों की मांग को बढ़ावा मिलता है। बढ़ी आय न सिर्फ कृषकों और उनके परिवारों के जीवन स्तर में वृद्धि करती है अपितु बाजार में माँग बढ़ने पर औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि होती है जिससे उद्योगों से जुड़े व्यक्तियों की आय में तथा परोक्ष रूप से रोजगार की उपलब्धता में भी बढ़ोत्तरी होती है।

इसको इस प्रकार से भी समझा जा सकता है कि देश की 60 प्रतिशत से अधिक भारतीय आबादी कृषि में लगी हुई है, जो भारतीय सकल घरेलू उत्पाद में 20.5 प्रतिशत के आसपास है। भारत में, किसानों के लिए सोने की तुलना में पानी अधिक मूल्यवान है। अच्छी वर्षा का कृषि पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। मानसून अनुकूल नहीं होता तो माल की कीमत बढ़ जाती है और अन्य वर्गों की सेवाएँ कम हो जाती हैं। औद्योगिक उत्पादों को जब तैयार बाजार नहीं मिलता तो उत्पादकता प्रभावित होती है। जो सीधे सकल घरेलू उत्पाद (GDP) पर प्रभाव डालता है।

व्यापक और अच्छी वर्षा कृषि के साथ- साथ व्यापार संतुलन में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वर्षा की कमी से फसलों के उत्पादन में आई कमी से आंतरिक माँग को पूरा करने के लिए आयात का सहारा लेना पड़ता है जिसका विदेशी मुद्रा भंडार पर सीधा असर होता है। इसके विपरीत अच्छे मानसून के फलस्वरूप आवश्यकता से अधिक कृषि उत्पादों के निर्यात से विदेशी मुद्रा भंडार में वृद्धि होती है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वर्षा अथवा मानसून का भारतीय अर्थव्यवस्था पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। जिसे निम्नलिखित बिंदुओं से समझा जा सकता है :-

भारतीय कृषि पर प्रभाव : कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार है क्योंकि 60 प्रतिशत से अधिक भारतीय आबादी कृषि में लगी हुई है, जो भारतीय सकल घरेलू उत्पाद में 20.5 प्रतिशत के आसपास है। भारत में, किसानों के लिए सोने की तुलना में पानी अधिक मूल्यवान है या जो कृषि में लगे हैं यदि मानसून अनुकूल है तो हमारे पास सकारात्मक प्रभाव पड़ता है या अनुकूल नहीं होता तो माल की कीमत बढ़ जाती है और अन्य वर्गों की सेवाएँ कम हो जाती हैं। उद्योग के उत्पादों को तैयार बाजार नहीं मिल रहा है और उद्योगों को कच्चे माल की आपूर्ति भी ग्रस्त है।

2. जी.डी.पी. पर प्रभाव (सकल घरेलू उत्पाद) : यदि मानसून में विफल रहता है तो यह भारत की समग्र जीडीपी विकास दर से प्रतिशत अंक को कम करेगा। इसके गैर-कृषि क्षेत्र में माँग पर भी हानिकारक प्रभाव होगा।

व्यापार के संतुलन पर प्रभाव : व्यापार का संतुलन भी मानसून में अप्रत्याशित और अभूतपूर्व

परिवर्तन पर निर्भर है जैसे मानसून अनुकूल है, हमारे पास व्यापार का अनुकूल संतुलन है और यदि मानसून अनुकूल नहीं है तो हमारे पास नकारात्मक संतुलन है व्यापार। मानसून की असफलता भारत के विदेशी व्यापार के खंडों और संतुलन को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती है। राष्ट्रीय आय में गिरावट के कारण सरकार का राजस्व तेजी से गिरावट और सरकार को अतिरिक्त आम व्यय के साथ बोझ है। इसलिए हम यह कह सकते हैं कि राज्य का राजस्व और आय हर साल मानसून पर निर्भर करता है।

खाद्य आपूर्ति पर प्रभाव : यदि मानसून असफल हो, तो यह कृषि उत्पादन में बाधा पड़ेगा, जो खाद्य कीमतों पर आघात होगा।

हाइड्रो पावर सेक्टर और सिंचाई सुविधाओं पर प्रभाव : बारहमासी नदियों पर स्थापित अधिकांश भारतीय ऊर्जा प्रोजेक्ट यदि मानसून विफल हो जाता है, तो यह पानी के स्तर को कम करेगा जिससे बिजली उत्पादन और सिंचाई सुविधाओं पर हानिकारक प्रभाव पड़ सकते हैं।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर प्रभाव : भारत के ग्रामीण जीवन छोटे गाँवों में कृषि और संबद्ध गतिविधियों के आसपास घूमते रहते हैं, जहाँ जनसंख्या की भारी संख्या में जीवन रहता है। 2001 की जनगणना के अनुसार, जनसंख्या का 72.2 प्रतिशत लगभग 638, 000 गाँवों में रहते हैं और बाकी 21.8 प्रतिशत 5, 100 से ज्यादा शहरों में और 380 शहरी समूह से अधिक जीवित हैं। अप्रयुक्त और पूर्व-मानसून बारिश ने फसलों को नुकसान पहुँचाया, खासकर उन क्षेत्रों में जहाँ मानसून की बारिश पर्याप्त है, और फिर यह खेत के उत्पादन को प्रभावित करेगा और ग्रामीण माँग को प्रभावित करेगा।

इस विवेचना का निष्कर्ष निकालने के लिए, हमें प्रसिद्ध उद्धरण को नहीं भूलना चाहिए कि 'जल है तो जीवन है' मानसून का भारतीय अर्थव्यवस्था पर गहरा असर है क्योंकि 60 प्रतिशत से अधिक आबादी कृषि पर निर्भर करती है। दूसरे शब्दों में, मानसून भारतीय अर्थव्यवस्था की जीवन रेखा है, जैसे जीवन के अस्तित्व के लिए रक्त की आवश्यकता होती है और ऐसा है कि मानसून के बिना हमारी कृषि अर्थव्यवस्था जीवित नहीं रह सकती।

संप्रति पावस-ऋतु आषाढ़ और श्रावण मास में अपने चरम यौवन पर होती है। जून महीने का प्रारंभिक उतरार्द्ध पावन-ऋतु का शैशव और अगस्त महीने का उत्तरकालीन उत्तरार्द्ध इसका तिरोधान है। पावस-ऋतु स्वयं में उत्सवमय है कदाचित इसी कारण यह लोक-जीवन में अनेक उत्सवों के रंग बिखेरती हुई पदार्पण करती है। यही कारण है कि जीवन और जगत में खान-पान, परिधान, लोकरंग तथा उमंग आपसी प्रेम और मेल जोल के नाना उत्सवों का समागम लगा रहता है। इस आलेख में समाहित व्याख्या के आधार पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि वर्षा या पावस ऋतु न सिर्फ ऋतुओं की धुरी है बल्कि सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक गतिविधियों का केंद्र भी है।

सम्पर्क : नोएडा (उ.प्र.)
मो. 8447576479

अखिलेश आर्येन्दु

साहित्य, संस्कृति व समाज के युगशिल्पी संतराम बी.ए.

स्वतंत्रता संग्राम के समय स्वतंत्रता प्राप्ति का लक्ष्य मात्र विदेशी शासन से मुक्ति नहीं था, बल्कि समाज, धर्म, जाति, संस्कृति और भाषा को भी स्वतंत्र करा कर उन्हें उनका उचित स्थान दिलाना भी था। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के मार्गदर्शन में सरस्वती और अन्य पत्रिकाओं में जो लिखा जा रहा था, वह हिंदी साहित्य व हिंदी क्षेत्र को समृद्ध ही नहीं कर रहा था, बल्कि समाज, संस्कृति और जीवनदर्शन को भी समृद्ध कर रहा था। ऐसे अनेक मनस्वी हुए जिन्होंने देश, समाज, साहित्य, संस्कृति और धर्म के उन्नयन के लिए सारा जीवन लगा दिया। ऐसे ही मनस्वी थे सन्तराम बी.ए.। 14 फरवरी 1887 को पंजाब के होशियारपुर जनपद के पुरानी बस्ती नामक गाँव में जन्मे संतरामजी हिंदी, उर्दू, फारसी और पंजाबी भाषाओं के जानकार थे। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम-एकता और जातिभेद के उन्मूलन पर सौ से अधिक लघु पुस्तिकाएँ लिखीं। इन पुस्तिकाओं की चर्चा पंजाब से बाहर उत्तर भारत में भी खूब हुई। वे एक लेखक, सम्पादक के अलावा एक प्रखर समाज सुधारक व वक्ता थे। वे जन्मगत जाति प्रथा और जाति व्यवस्था को भारतीय समाज की अनगिनत समस्याओं और दुखों का कारण मानते थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि जात-पाँत के रहते भारत एक महान् राष्ट्र और विश्व गुरु नहीं बन सकता है। उनका विचार था कि- जात-पाँत का भेदभाव तो समता, बंधुता, स्वतंत्रता तथा लोकराज्य का विरोधी है। यह मानव समाज के बीच घृणा तथा फूट का कारण है। उन्होंने समाज में प्रचलित जाति प्रथा, अस्पृश्यता, ऊँच-नीच एवं जाति के नाम पर घृणा, शोषण, हिंसा, क्रूरता, ईर्ष्या और उपेक्षा के कृत्य मानव के लिए सबसे बड़े कलंक बताए। हिंदी में छायावाद युग के स्तम्भ माने जाने वाले सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के जाति प्रथा का समर्थन करना उन्हें कभी अच्छा नहीं लगा। उन्होंने उत्तम समाज निर्माण में जिन प्रवृतियों और विचारों को बाधक पाया उन्हें निर्भय होकर सचेत किया। यही कारण है अनेक लोग उनके जात-पाँत तोड़ो मंडल का विरोध किया करते थे। लेकिन यह सत्य किसी से छिपा नहीं है कि भारतीय समाज अनेक जातियों और उपजातियों में बटने के कारण कभी राष्ट्रीय एकता, भाईचारे और सहिष्णुता का आदर्श प्रस्तुत नहीं कर पाया। एक बार एक व्यक्ति उनके पास आए और बोले—आप केवल जात-पाँत के विरुद्ध ही आंदोलन क्यों छेड़े हुए हैं

जबकि भारतीय समाज में भ्रष्टाचार, स्वार्थ, कर्तव्यहीनता, दहेज जैसी अनेक बुराइयाँ हैं?

तब उन्होंने कहा था-- बुराइयाँ सभी अहितकर होती हैं पर प्रत्येक व्यक्ति की शक्ति सीमित रहती है। मैं समझता हूँ—ऐकहि साधे सब सधे सब साधे सब जाय। उनकी क्षमता सीमित भले थी लेकिन जितनी क्षमता थी उसे पूरी तरह उपयोग करते थे। यही कारण है कि वे अपने मिशन में सफल हुए और बड़ी संख्या लोगों ने जन्मगत जाति व्यवस्था से ऊपर उठ कर कार्य किए। उनके आंदोलन का परिणाम है कि आजादी के

उपरांत बड़ी संख्या में लोगों ने अपने नाम के आगे या पीछे जाति सूचक शब्द लगाने बंद किए।

आधुनिक भारतीय समाज में जात-पाँत से ऊपर उठकर सोचने वालों की संख्या बढ़ी है तो, संतराम जी के आंदोलन का प्रभाव भी कहा जाएगा। वे विनम्रता की प्रतिमूर्ति थे। उन्हें सीखने में कभी शर्म नहीं आती थी। इस लिए वे सीखकर लोगों को सिखाया। उनके लेख, पुस्तकें और पत्रिकाएँ आज भी लोगों को जीवन व्यवहार और समाज सेवा से समाज निर्माण का संदेश दे रही हैं।

ब्रिट्रिश भारत में जाति व मजहब से प्रत्येक व्यक्ति की पहचान जुड़ती थी, ऐसे में संतराम बी.ए. द्वारा जन्मगत जात-पाँत का विरोध करना ही नहीं, बल्कि इसे समाज, राष्ट्र और स्व-संस्कृति के लिए कलंक बताना बहुत बड़ी बात थी। उनका बचपन पंजाब में बीता। अमृतसर जनपद में ग्रेजुएट करने के बाद मिडिल स्कूल के प्रधानाध्यापक नियुक्त हुए लेकिन इनका मन नौकरी में नहीं लगा और सन् 1913 में नौकरी छोड़कर जन्मगत जाति व वर्ण व्यवस्था के विरोध में 1922 में भाई परमानंद की अध्यक्षता में जात-पाँत तोड़क मंडल की स्थापना की।

यशस्वी जीवन के अनुगामी संतराम जी का जीवन समाज सुधार और लेखन के लिए समर्पित हो गया था। उन्होंने देश को स्वतंत्र कराने के लिए तत्कालीन प्रखर राष्ट्रनायकों का साथ ही नहीं दिया अपितु आंदोलन, लेखन और भाषण के माध्यम से जन जागृति कर समाज-राष्ट्र निर्माण का कार्य निरन्तर करते रहे। वे जन्मगत जात व वर्ण व्यवस्था के विरोधी थे लेकिन गुण, कर्म और स्वभाव पर आधारित वर्ण व्यवस्था जो वैदिक परम्परा से आई है के घोर समर्थक थे। वेदवाणी के अध्येता और अनुगामी थे ही, वेद ज्ञान-विज्ञान के प्रचारक भी थे। वेद में लिखा है- तुममें न कोई ऊँच है न कोई नीच। तुम सब भाई हो। इस लिए भाइयों की भाँति अपने-अपने क्षेत्रों में उन्नतिशील बनो। वेदवाणी के उक्त संदेश को प्रत्येक परिवार तक प्रचारित-प्रसारित करने के लिए अपना सारा जीवन समर्पित कर दिया। अंग्रेजी पराधीनता के विरुद्ध उन्होंने आर्य-समाज द्वारा चलाए जा रहे आंदोलन में बढ़-चढ़ कर भाग ही नहीं लिया बल्कि आगे बढ़कर स्वदेशी, स्वभाषा, स्वसंस्कृति, स्वधर्म और स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए अपना जीवन लगा दिया। समाज, साहित्य और संस्कृति के उन्नायकों का जीवन सामान्यत: अभावों में व्यतीत होता है। इस महान् कर्मयोगी समाजसेवी और देशभक्त को भी जीवन भर अभावों का सामना करना पड़ा, लेकिन उससे उनमें कभी निराशा नहीं आई। और उन्होंने अपने जाति विहीन समाज की स्थापना वाले लक्ष्य में कभी कमी नहीं आने दी। वे एक सत्साहसी, सहिष्णु, अहिंसा के पथ अनुगामी, न्याय के लिए वीर योद्धा, शोषण के विरुद्ध इंकलाबी स्वर बुलंद करने वाले अजेय योद्धा और नव समाज निर्माता थे। जन्मगत जाति व्यवस्था की अगणित हानियों, उपेक्षाओं, घृणा, अस्पृश्यता और भ्रष्टाचार को उन्होंने बहुत समीप से देखा और भोगा था। समाज में जन्मगत जाति के आधार पर जो बँटवारा है, संतराम उसके प्रबल विरोधी थे। वे कहा करते थे- वेदों में जात-पाँत का कहीं कोई भेद नहीं है। वेद में प्रत्येक व्यक्ति की पहचान उसके गुण, कर्म और स्वभाव से बताई गई है, इसलिए यह कहना कि जातिगत बँटवारा ईश्वर की आज्ञा से हुआ है, पूरी तरह असत्य और मिथ्या प्रलाप है। उनकी कथनी व करनी में साम्य था। वे ऐसे समाज सुधारक व साहित्य निर्माता थे जिनका प्रत्येक क्षेत्र पारदर्शी और जाग्रत था।

संतराम ने जाति प्रथा और जाति के नाम पर समाज में व्याप्त अंधविश्वास, पाखंड, कुरीतियों और बुराइयों को समाप्त करने के लिए कुछ ऐसे कार्य किए जो समाज के लिए मिशाल बन गए। पहली पत्नी के विवाह के बाद

1929 में महाराष्ट्र की एक विधवा महिला सुन्दर बाई से विवाह उनके इसी कार्य का ज्वलंत उदाहरण है। समाज में व्याप्त रूढ़िवादी मान्यताओं के युग में इस प्रकार का आदर्श प्रस्तुत करना कोई साधारण बात नहीं थी। उस समय उर्दू और अंग्रेजी का बोलबाला था। लेकिन उन्होंने महर्षि दयानंद और लाला लाजपतराय से प्रेरणा ले हिंदी भाषा और हिंदी संस्कृति को समृद्ध करने के लिए अनेक कार्य किए। इसी क्रम में उन्होंने लाहौर से पत्रिका भारतीय और जालंधर से उषा का सम्पादन किया। ये दोनों पत्रिकाएँ जनमानस को क्रान्ति के लिए जाग्रत करती थीं ही, जाति विहीन समाज निर्माण के लिए भी प्रेरित करती थीं। आगे चलकर जात-पाँत आन्दोलन के प्रचार के लिए क्रान्ति ((उर्दू) और युगान्तर (हिंदी) जैसे क्रांतिकारी पत्रों का सम्पादन व प्रकाशन किया। विभाजन के बाद विश्वज्योति पत्रिका का सम्पादन किया और जन जागरण का कार्य करते रहे। उन्होंने आर्यसमाज से प्रभावित हो हिंदी सीखी थी। वे स्वामी दयानंद और स्वामी श्रद्धांनद के विचारों से अनुप्रेरित थे ही, आर्यसमाज के गुण, कर्म व स्वभाव वाली वर्णव्यवस्था को उन्होंने अपने अनुरूप समझा।

संतराम नाम से ही संत नहीं थे अपितु उनका सारा जीवन संत का था। संत स्वभाव का होने के कारण वे पराधीन हो नौकरी नहीं करना चाहते थे। 1935 में रीवा के महाराजा गुलाबसिंह ने उनके समक्ष एक आकर्षक नौकरी का प्रस्ताव रखा। वेतन के साथ सभी तरह की सुविधाएँ उन्हें मिल रही थीं, लेकिन उन्होंने विनम्रता के साथ उस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। जबकि उस समय वे अभावों में जी रहे थे। संतराम जी का स्वभाव संतों का तो था, लेकिन वे किसी असत्य, समाजविरोधी और राष्ट्रविरोधी बात को किसी भी हालत में स्वीकार नहीं करते थे। समझौतावादी होना उनके स्वभाव में था ही नहीं। उनका लेखन उनके स्वभाव, कार्य और उद्देश्य का प्रतीक हुआ करता था। उन्होंने अपनी पत्रिकाओं के अतिरिक्त जब तक जीवित रहे भारत से निकलने वाली सभी हिंदी, पंजाबी, उर्दू आदि पत्रिकाओं में लेखन करते रहे। उन्होंने अल्बरूनी की भारत यात्रा, इत्सिंग की भारत यात्रा, वर्णाश्रम पर आधारित पुस्तक हमारा समाज जैसी लोकप्रिय पुस्तकों का अनुवाद भी किया। उन्होंने अपनी आत्मकथा मेरे जीवन के अनुभव लिखी जो 1941 में प्रकाशित हुई। उनके ये सभी कार्य इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि यदि इन्हें आगे बढ़ाया जाए तो नई पीढ़ी को नये भारत के निर्माण के लिए प्रेरणा तो मिलेगी ही, ज्ञान भी प्राप्त होगा।

संतराम जी ने लेखन, सम्पादन या सामाजिक क्रांति के कार्य किसी पुरस्कार के लिए नहीं किए। उनकी कभी तृणमात्र भी किसी पुरस्कार की इच्छा भी नहीं हुई। फिर भी उनके कार्यों का मूल्यांकन अनेक संस्थाओं और संस्थानों ने किया और महात्मा गाँधी पुरस्कार वर्धा से मिला, तो पंजाब सरकार ने हिंदी के श्रेष्ठ विद्वान का पुरस्कार दिया। हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयागराज (तब प्रयाग) ने 1918 में 'साहित्य वाचस्पति की उपाधि देकर सम्मानित किया। संतराम जी में सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि सामाजिक और देश परक कार्यों के लिए कभी किसी प्रलोभन को स्वीकार नहीं किया। इस तरह लेखन, सम्पादन और भाषण को समाज सुधार का हथियार बनाने वाला यह महानायक 101 वर्ष की आयु में 31 मई 1988 में यह कहते हुए हमारे मध्य से चल बसा कि-

छोड़ जाएँगे जब हम इस आशियाने को
हमारी याद आएगी तब जमाने को।।''

सम्पर्क : दिल्ली
मो. 8118110334

डॉ. कुमारी उर्वशी

हिंदी साहित्य, सिनेमा और समाज

साहित्य और सिनेमा दो ऐसे माध्यम हैं जिसमें समाज को बदलने की ताकत सबसे अधिक होती है। हालाँकि साहित्य के चिंतक, लेखक और आलोचक सिनेमा को साहित्य का हिस्सा मानने से हमेशा हिचकते रहे हैं, यह जानते हुए भी कि सिनेमा का आरंभ ही साहित्य से होता है। जमाना बदलता रहेगा, फिल्मों में प्रयोग होते रहेंगे लेकिन फिल्मों में साहित्य का असर हमेशा प्रभावी रहेगा। चर्चित उपन्यासों और कालजयी रचनाओं पर आधारित फिल्में हर दौर में पसंद की जाती रही हैं।

यह तो ठीक है कि साहित्य से 'सहभाव' ध्वनित होता है किन्तु सहभाव किसका? यह सहभाव शब्द और अर्थ का ही हो, ऐसा संकेत इस शब्द में कहीं नहीं मिलता। कुछ विद्वानों ने 'साहित्य' में से 'सहित' को अलग करते हुए हितकारक रचना को साहित्य बताया है, लेकिन यह व्याख्या भी सर्वांश में सत्य सिद्ध नहीं होती। एक अच्छे सुन्दर चिकने पत्र पर रंग-बिरंगे शब्दों में मुद्रित यह रचना भी जिसकी एक ओर अशोक चक्र तथा दूसरी ओर बैंक का नाम, गवर्नर के हस्ताक्षर देय राशि व क्रम संख्या आदि अंकित है, किसी के लिए कम हितकारक नहीं होती, किन्तु क्या हम इसे 'साहित्य' की संज्ञा दे सकते हैं।

पाश्चात्य विद्वान दी क्विन्सी ने साहित्य के दो वर्ग किए हैं:- ज्ञान का साहित्य और भावना का साहित्य। उन्होंने लिखा है कि ज्ञान के साहित्य का लक्ष्य सिखाना होता है। वहीं भावना के साहित्य का लक्ष्य भावनाओं को पूर्ण करना होता है, एक में तथ्यों और उपदेशों की प्रधानता होती है जबकि दूसरे में कला और सौंदर्य की अभिव्यक्ति होती है।

यह तो हो गई साहित्य की बात, अब बात करते हैं सिनेमा की :-फिल्मकार कमलस्वरूप का कहना है कि सिनेमा अनुभूति और संवेदना व्यष्टि और समष्टि के सम्बन्ध का विज्ञान है। विभिन्न नाट्य एवं ललित कलाओं का सम्मिश्रण है। किसी घटना के काल और दिक के आयामों का रूपांकन है।

विजय शर्मा के अनुसार 'फिल्म साहित्य से अलग एक भिन्न विधा है। यहाँ कथा होती है मगर वही सब कुछ नहीं होता है। फिल्म भिन्न मुहावरों में बात करती है।

आलोक पांडेय का मत है 'दरअसल सिनेमा सिर्फ अभिव्यक्ति नहीं है। वह बहुत कुछ ऐसा भी कहता और करता है, जिसे शब्दों में नहीं कहा जा सकता।'

विनोद दास कहते हैं कि 'सिनेमा एक कला है और अन्य कलाओं की तरह यह भी हमारे समय और समाज की बुनियादी चिंताओं-जिज्ञासाओं को अपनी सृजनशीलता का एक अनिवार्य अंश बनाता रहा है।'

दरअसल फिचर फिल्म केवल कला न होकर तकनीक भी है। फिल्म की कल्पना एक व्यक्ति विशेष से प्रारम्भ होती है, किन्तु उस कल्पना को दर्शकों के समक्ष फिल्म के रूप में प्रस्तुत करने तक की प्रक्रिया में निर्माता, निर्देशक अनेक कलाकारों, तकनीशियनों तथा विशेषज्ञों का भी योगदान होता है।

दृश्य-श्रव्य माध्यमों द्वारा झूठ या सच आसानी से स्थापित किया जा सकता है। अतः इन माध्यमों में निहित सम्मोहक शक्ति का प्रयोग कर भूमंडलीकरण के पक्षधर अपने मनचाहे विचारों को स्थापित करने के लिए इन माध्यमों पर पूरा नियंत्रण रखते हैं। साथ ही इन माध्यमों का प्रयोग अफीम के नशे की तरह समाज को स्वप्निल नींद सुलाने में करते हैं। जनसंचार माध्यमों में सबसे सशक्त माध्यम है सिनेमा। सिनेमा के उपयोगी पक्ष के अतिरिक्त उसकी एक दूसरी तस्वीर भी है। आधुनिक युग में बनने वाली फिल्मों ने युवा पीढ़ी को सर्वाधिक लुभाया है। सिनेमा कलाकारों की अभिनय क्षमता से नहीं, अपितु उनके ऐश्वर्य तड़क-भड़क और आमोद-प्रमोद के जीवन से आकर्षित होकर कई युवक-युवतियाँ अपने मानस में यही स्वप्न देखने लगते हैं। कई बार ऐसे उदाहरण भी मिले हैं, जब ये घर से भाग गए तथा असामाजिक तत्वों के हाथ पड़कर या तो कुमार्ग पर चल पड़े अथवा जीवन से ही हाथ धो बैठे।

यह संसार 'ग्लैमर' और चकाचौंध का संसार है, जिसका आकर्षण युवक और युवतियों को मोहित करता है। इस पक्ष के साथ ही आधुनिक युग में निर्मित होने वाली कई फिल्में प्रेरणाप्रद और शिक्षादायक भी नहीं होती हैं। उनमें जीवन का सत्य कम और भावनाओं को उदीप्त करने वाले प्रसंग अधिक होते हैं। अश्लील दृश्य, नग्नता, नृत्य और कामुक हाव-भाव, भंगिमा व सवाद किशोर मन को विचलित करते हैं। नए-नए फैशन के प्रति आकर्षण के साथ अनैतिक दृश्य, चोरी, अपहरण, डकैती और बलात्कार, मार-धाड़ आदि के प्रसंग किशोर-मानस को रोमांचित करते हैं, जिनसे वे अपने अध्ययन में पूर्ण समर्पण नहीं कर पाते हैं। चारित्रिक पतन और सामाजिक अपराधों के लिए भी वर्तमान फिल्में उत्तरदायी हैं। धन और समय के दुरुपयोग के साथ ही सिनेमा का नशा अनुशासनहीनता और अराजकता को भी आश्रय देता है। फिल्मों के गिरते हुए स्तर से बच्चे बुरी बातों को सीखते हैं, जिससे उनकी रुचि का परिष्कार नहीं हो पाता है।

इक्कीसवीं सदी के तीसरे दशक में प्रवेश कर चुके विश्व पर आज यदि सबसे ज्यादा प्रभाव जिस माध्यम का है तो वह सिनेमा का ही है। हमारे रीति-रिवाज, खान-पान, रहन सहन से लेकर चिंतन तक सिनेमा की गहरी पहुँच है। समूची मानवीय सभ्यता का यथार्थ जिस माध्यम से आज हमारे सामने उपस्थित है, उसमें सिनेमा की भूमिका अग्रणी है। सिनेमा का सौ साल से ज़्यादा का सफर हमारा, आपका और समूची मानव सभ्यता के विकास का सफर है। इस सफर ने देश की कई पीढ़ियों से साक्षात्कार किए हैं। सिनेमा ने एक उभरते हुए देश को आकार दिया है। भारतीय हिंदी सिनेमा ने जनसामान्य के अवचेतन जीवन को संबोधन और स्थिर भावों को गति प्रदान की है। सिनेमा में बहुसंख्य समाज अपने समग्र तेवर, कलेवर अपने संपूर्ण चरित्र और व्यवहार के साथ हजारों गीतों, संवादों, पात्रों, किस्से, कहानियों में मौजूद है। 'सिनेमा की सार्थकता उस बदलाव से जुड़ी होती है। जो

उसके प्रभाव से व्यक्ति परिवार और समाज में दिखाई देता है। बॉलीवुड ने हमारे देश व समाज को अपने समय के हिसाब से फैशन करना सिखाया, सामाजिक बदलाव को स्वीकार करने की समझ दी, जोर-जुल्म के खिलाफ इन्कलाब का जज़्बा दिया और हमारी भावनाओं को दृश्य-शब्द दिए।

मानव जीवन और समाज को प्रभावित करनेवाले विभिन्न माध्यमों में सिनेमा वह माध्यम है जो समाज को भी प्रभावित करता है और प्रतिबिम्बित भी करता है। पिछले कई दशकों में कई पीढ़ियाँ सिनेमा में सक्रिय रहीं, उन्होंने अपने-अपने तरीके से सिनेमा में यह क्षमता पैदा की कि वह हमारी जीवन शैली का हिस्सा बन सके, क्योंकि सिनेमा जहाँ समाज को प्रतिबिम्बित करता है, वहीं निकलता भी उसी समाज से है। सिनेमा के भीतर समाज की मौजूदगी दिखती है, लोक दिखता है और उसमें सैकड़ों साल का अपना समाज कई रूपों में प्रतिबिम्बित होता है।

सिनेमा ने अक्सर समाज की दशा को दिशा देने का काम भी बखूबी किया है। फिर चाहे देश में व्याप्त सामाजिक रूढ़ियों एवं कुरीतियों पर प्रहार करने की बात हो या बेरोजगारी, बेगारी, गरीबी, अशिक्षा की समस्या को प्रमुखता से सामने रखने की बात हो। फिल्म जगत ने फिल्मों के माध्यम से समाज में साम्प्रदायिक एवं जातिगत सौहार्द्र का वातावरण बनाने में भी अपनी भूमिका के साथ न्याय किया है, यही नहीं अनेक व्यवस्थाजन्य समस्याओं जैसे उग्रवाद, नक्सलवाद, आतंकवाद की तह तक पहुँचने तथा जनादेश को समझने में तथा सामंतवादी व्यवस्था, लालफीताशाही और भ्रष्टाचार के विरुद्ध जनाक्रोश एवं विद्रोह को हथियार बना उनके विरुद्ध माहौल बनाने में, साथ ही साथ उनके संभावित समाधानों को दिखाने में भी फिल्म जगत ने अमूल्य योगदान दिया है। फिल्मों ने देश के हर वर्ग में भाईचारे और देशभक्ति की भावना को प्रसारित करने में भी अहम भूमिका निभाई है। बाजारीकरण, पाश्चात्य चलन एवं सामाजिक ताने-बाने के बदलाव ने परिवारों की टूट तो बढ़ा दी है लेकिन समाज, परिवार एवं माता-पिता के महत्त्व को फिल्मों के माध्यम से बार-बार प्रमुखता से दर्शाकर फिल्म जगत ने पारंपरिक भारतीय मूल्यों को बचाकर रखने में भी मदद की है।

फिल्मों ने आज जहाँ नारी को बाजार में खड़ा कर दिया है, वहीं फिल्मों के माध्यम से समाज में उसके विभिन्न स्वरूपों को महिमा मंडित करने के प्रयास भी किए गए हैं। इसके अलावा क्षेत्रीय या देशज भाषाओं एवं राष्ट्रभाषा हिंदी के उत्थान एवं उन्हें निकट लाने में फिल्मों का अभूतपूर्व योगदान रहा है। इसी तरह गीत-संगीत, नृत्य को प्रश्रय देने तथा आगे बढ़ने का विशेष योगदान रहा है। अतः सिनेमा ने समाज को बहुत कुछ दिया है, इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता।

आइए सिनेमा के इतिहास को देखें : सिनेमा का आविष्कार सर्वप्रथम अमेरिका में हुआ। वाशिंगटन के निवासी टामस ने 1859 में एक चलचित्र-यंत्र तैयार किया। इसका प्रदर्शन जन साधारण के लिए बाद में हुआ, जब लंदन में लुमैर द्वारा इसे उपस्थित जन-समूह के सामने प्रस्तुत किया गया था। वर्तमान रूप में सिनेमा दिखाने की मशीन सन् 1900 में बनकर तैयार हुई और इस प्रकार इसका प्रचार पहले पश्चिमी देशों इंग्लैंड, फ्रांस आदि में हुआ। भारत में सन् 1898 में पहली लघु फिल्म बनी थी। हमारे देश में सिनेमा के संस्थापक दादा साहब फालके माने जाते हैं तथा यहाँ पहली फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र' सन् 1913 में बनी। फिल्में आरंभ में मूक होती थीं। पहली बोलती फिल्म 1931 में

'आलमआरा' बनी थी। आज भारत विश्व में प्रतिवर्ष सर्वाधिक फिल्मों का निर्माण करता है।

साहित्य और सिनेमा तात्विक दृष्टि से दो धरातल पर होने के बावजूद कई बिन्दुओं पर मिल ही जाते हैं। सिनेमा कल्पना प्रधान है भावों की अभिव्यक्ति के लिए ऐसे दृश्यों का निर्माण कर दिया जाता है जो शब्दों के द्वारा संभव नहीं है। वहीं साहित्य शब्दों के माध्यम से जिस वातावरण का निर्माण करता है उसे दृश्य रूप में लाना फिल्मकारों के लिए कभी-कभी चुनौती भी बन जाती है। साहित्यकार शब्दों के जिस वातावरण का निर्माण करता है उसे पाठक अपनी-अपनी कल्पना द्वारा अलग-अलग भाव और दृश्य मन में बनाते हैं, जबकि फिल्मकार द्वारा तैयार किया गया वातावरण दर्शकों के लिए एक जैसा होता है। फिल्मकार अपने अनुभव के द्वारा साहित्य से ली गई सामग्री का ज्यों का त्यों रूपान्तरण नहीं कर पाता है या करना नहीं चाहता है, क्योंकि वह साहित्य को फिल्म के रूप में परोसना चाहता है और साहित्य फिल्म के साँचे में पूर्णरूप से उतर नहीं पाता और यहीं से साहित्य और सिनमा के अंत:संबंध में विलगाव उत्पन्न हो जाता है। ऐसी जगह पर आकर ही साहित्य अपनी सीमा को जान पाता है। प्रसिद्ध फिल्म समीक्षक विमलेन्दु जी साहित्य और सिनेमा के अंत:संबंध को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि ''साहित्य और सिनेमा का संबंध भी दो पड़ोसियों की तरह रहा है। दोनों एक-दूसरे के काम तो आते रहें लेकिन यह कभी सुनिश्चित नहीं हो पाया कि इनमें प्रेम है या नहीं।''

भारतीय सिनेमा के इतिहास में हिंदी फिल्मों ने भारत के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक सरोकारों को विश्व के सम्मुख प्रस्तुत करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हिंदी फिल्मों में मनोरंजन के साथ-साथ भारतीय जीवन के विविध पहलुओं को, बदलते परिवेश में चित्रित करने में सफलता हासिल की है। हिंदी फिल्मों की सबसे बड़ी विशेषता जीवन में व्याप्त हर तरह की संवेदना को दर्शाना रहा है। भारत में सिनेमा के उदय काल से ही इस माध्यम का प्रयोग फिल्मकारों ने देश में राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना जगाने के लिए किया।

साहित्य की ही तरह आजादी से पहले की फिल्मों के मुख्य विषय स्वतन्त्रता संग्राम, अंग्रेजी राज से मुक्ति के प्रयास और देशभक्त वीरों के बलिदान की कथाओं पर आधारित रहे। हिंदी फिल्मों का प्रथम दौर ऐतिहासिक और धार्मिक फिल्मों का था। इस दौर में निर्माता-निर्देशक और अभिनेता सोहराब मोदी ने सिकंदर, पुकार, झाँसी की रानी जैसी महान ऐतिहासिक फिल्में बनाईं। इन फिल्मों ने लोगों में देश प्रेम की भावना को उद्दीप्त करने का माहौल बनाया। भारतीय नवजागरण आन्दोलन से प्रेरित और प्रभावित होकर फिल्मकारों की दृष्टि भारतीय समाज में व्याप्त सामाजिक कुरीतियों और कुप्रथाओं की ओर गई। परिणामस्वरूप सुधारवादी फिल्मों का आविर्भाव आजादी से पहले हुआ। साहित्य की ही तरह सिनेमा भी समाज का दर्पण है। समाज की सच्ची तस्वीर सिनेमा में दिखाई देती है। फिल्मकारों ने इस सशक्त माध्यम के द्वारा एक कारगर परिवर्तन और सुधार को समाज में प्रचारित करने के लिए महत्त्वपूर्ण फिल्में बनाईं जिनकी प्रासंगिकता आज भी अक्षुण्ण है।

भारत में बनने वाली पहली फीचर फिल्म आधुनिक हिंदी साहित्य के जनक भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाटक 'हरिश्चंद्र' से प्रेरित थी। प्रारंभ से ही हिंदी सिनेमा में लिखित और अलिखित साहित्य की भूमिका अहम रही है। 1931 में पहली बोलती फिल्म 'आलम आरा' से आज तक सर्वाधिक फिल्में

हिंदी भाषा में ही बनाई गईं।

हिंदी सिनेमा में साहित्य के योगदान की बात करते हैं तो पहली बार हिंदी सिनेमा में स्थापित लेखक के रूप में कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद का प्रवेश हुआ। वर्ष 1933 में हिंदी के सर्वाधिक लोकप्रिय साहित्यकार प्रेमचंद की कहानी पर मोहन भावनानी के निर्देशन में फिल्म 'मिल मजदूर' बनी। 1934 में प्रेमचंद की ही कृतियों पर 'नवजीवन' और 'सेवासदन' बनीं। भगवतीचरण वर्मा, पांडेय बेचन शर्मा, फणीश्वरनाथ रेणु, अमृतलाल नागर, चतुरसेन शास्त्री जैसे साहित्यकारों की रचनाओं पर भी फिल्में बनीं। आर.के. नारायणन के उपन्यास 'गाइड' पर फिल्म बनी। फिल्म में देवआनंद राजू गाइड की भूमिका में थे, वहीं वहीदा रहमान एक कुशल नर्तकी और पति द्वारा उपेक्षित महिला रोजी के किरदार में थीं।

1962 में आई फिल्म साहिब बीवी और गुलाम लेखक बिमल मित्र के उपन्यास पर आधारित थी। कोलकाता के जमींदार पृष्ठभूमि पर आधारित इस फिल्म को बेहद पसंद किया गया था। गोवर्धनराम माधवराम त्रिपाठी द्वारा लिखित गुजराती उपन्यास सरस्वतीचंद्र पर आधारित फिल्म 1968 में बनी थी। इसमें नूतन लीड रोल में थीं। इस फिल्म का विषय जागीरदारी प्रथा पर बेस्ड था। 1977 में बनी सत्यजीत रे निर्देशित फिल्म शतरंज के खिलाड़ी प्रेमचंद की लघु कहानी पर आधारित थी। यह फिल्म 1857 की क्रान्ति के आसपास के दौर की कहानी कहती है। इसमें अमजद खान, संजीव कुमार, सईद जाफरी के साथ शबाना आजमी और टॉम अल्टर मुख्य भूमिका में थे।

जानी-मानी लेखिका अमृता प्रीतम के उपन्यास पिंजर पर इसी नाम से फिल्म बनी। बँटवारे के दौरान हुए सामाजिक उथल-पुथल, प्यार और नफरत पर आधारित इस फिल्म को बेहद पसंद किया गया। वहीं फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी मारे गए गुलफाम पर बनी फिल्म तीसरी कसम, वहीदा रहमान और राज कपूर के अभिनय से जीवंत हो उठी थी।

निर्देशक विशाल भारद्वाज की फिल्म मकबूल शेक्सपीयर के नाटक मैकबेथ पर आधारित थी। वहीं ओंकारा, ऑथेलो पर बेस्ड थी और हैदर, हेमलेट पर आधारित थी। इसी तरह फिल्म सात खून माफ रस्किन बॉन्ड की कहानी सुजैनाज सेवन हस्बैंड पर बनी थी। लेखक चेतन भगत के उपन्यास फाइव पॉइंट समवन पर बेस्ड थ्री इडियट्स, थ्री मिस्टेक्स ऑफ माय लाइफ पर बेस्ड काय पोचे, वन नाइट ऐट कॉलसेंटर पर आधारित फिल्म हैलो और टू स्टेट्स, हाफ गर्लफ्रेंड पर आधारित फिल्म बन चुकी है।

उपेंद्रनाथ अश्क और अमृतलाल नागर के बाद कमलेश्वर ऐसे साहित्यकार थे जिन्होंने सिनेमा की भाषा और जरूरत को बेहतरीन ढंग से समझा। गुलजार ने कमलेश्वर की कृति पर 'आँधी' और 'मौसम' बनाई तो फिल्मकार बासु चटर्जी ने मन्नू भंडारी की कहानी 'यही सच है' पर 'रजनीगंधा' बनाई। मणि कौल ने मोहन राकेश, विजयदान देथा, मुक्तिबोध और विनोद कुमार शुक्ल की रचनाओं पर फिल्में बनाईं। कुमार शाहनी ने निर्मल वर्मा की कहानी माया दर्पण पर फिल्म बनाई।

व्यावसायिकता और विनोदात्मकता के संग-संग संदेशात्मकता और रूढ़ियों से मुक्ति की आकांक्षा भी फिल्मकारों की सोच का हिस्सा हुआ करती है। ऐसे फिल्मकारों में सोहराब मोदी,

पृथ्वीराज कपूर, वी. शांताराम, कमाल अमरोही, गुरुदत्त, ऋत्विक घटक, विमलराय, महबूब खान, नितिन बोस, सत्यजीत राय, ताराचंद बड़जात्या, बी आर चोपड़ा, चेतन आनंद, देव आनंद, विजय आनंद, मनोज कुमार, यश चोपड़ा, गोविंद निहलानी, श्याम बेनेगल, अनुराग कश्यप, आशुतोष गावरीकर, प्रकाश झा आदि नाम आते हैं। यह सभी उद्देश्यमूलक सामाजिक सरोकारों की लोकप्रिय फिल्मों के निर्माण के लिए पहचाने जाते हैं। 1946 में चेतन आनंद ने 'नीचा नगर' में कामगारों और मालिकों के संघर्ष को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया था। 'नीचा नगर' गोर्की की 1902 की रचना 'द लोअर डेप्थ्स' पर आधारित है। फिल्म में गाँधी टोपी लगाने वाला और चरखा कातने वाला एक आम आदमी कैसे सर्वहारा समाज के लिए इलाके के सबसे बड़े दबंग से भिड़ जाता है, यही इस फिल्म की कहानी है।

ख्वाजा अहमद अब्बास की 'धरती के लाल' (ख्वाजा अहमद अब्बास और बिजोन भट्टाचार्य द्वारा यह संयुक्त रूप से द्वारा लिखा गया था) में सामाजिक यथार्थ का अभूतपूर्व चित्रण हुआ था। भारतीय किसान जीवन की त्रासदी को विमल राय ने 1953 में 'दो बीघा जमीन' (पॉल महेंद्र) फिल्म में जिस यथार्थ के साथ प्रस्तुत किया वह मर्मांतक है। पूँजीपतियों के द्वारा गरीब किसानों की जमीन को बड़े-बड़े उद्योगों के लिए हड़प लेने के षड्यंत्र की दारुण और अमानवीय कथा कहती है यह फिल्म।

वी. शांताराम हिंदी सिनेमा को सामाजिक सरोकार से सीधे जोड़ने वाले एक सशक्त फिल्मकार थे। सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध नए युग का आह्वान करने वाली उनकी फिल्में उल्लेखनीय हैं। बेमेल विवाह की समस्या पर आधारित, स्त्रीत्व की गरिमा को बेहद खूबसूरती से उभारती हैं, औरत को भोग्या, चरणों की दासी और उपभोक्ता- वस्तु मानने वालों को उनकी फिल्में करारा सबक सिखाती हैं। उनकी 'दो आँखें बारह हाथ' भी एक प्रयोगात्मक और संदेशात्मक फिल्म थी जिसमें पहली बार वे सजायाफ्ता मुजरिमों के चरित्र में बदलाव लाने के लिए, उन्हें बंद कारागारों से बाहर निकालकर, मुक्त ग्रामीण परिवेश में खेतीबाड़ी करवाकर उनमें मानवीय मूल्यों के प्रति जागरूकता पैदा करते हैं। शांताराम गाँधीवादी विचारधारा को व्यावहारिक रूप से सिद्ध करते हैं जिसके अनुसार मनुष्य में छिपी हुई बुराई को खत्म करना चाहिए न कि मनुष्य को ही।

फ्रांज ऑस्टेन की सन् 1936 में निर्मित 'अछूत कन्या' गाँधी जी के सुधार आंदोलन से प्रेरित थी। यह फिल्म प्रताप (अशोक कुमार) नाम के ब्राह्मण लड़के और कस्तूरी (देविका रानी) नाम की अछूत लड़की की प्रेम कहानी है। इस वर्जित और उपेक्षित विषय को पहली बार फिल्म के माध्यम से लोगों के बीच लाने के लिए फिल्मकार ने काफी प्रशंसा बटोरी। 'अछूत कन्या' जैसी फिल्में भारतीय समाज की कुप्रथाओं पर प्रहार थीं। 1936 में ऐसे विषय को कथानक बनाना बहुत साहस का काम था।

1959 में इसी समस्या पर विमल राय ने 'सुजाता' बनाई जो फिर से अछूत लड़की और ब्राह्मण लड़के के प्रेम की कहानी है। 'सुजाता' कथा नायिका (नूतन) एक अछूत लड़की है जो एक संभ्रांत परिवार में आश्रय लेती है। 'सुजाता' के लिए पण्डित कहता है कि 'अछूतों के शरीर से जहरीली हवा निकलती है जो आसपास के लोगों के लिए बहुत खतरनाक है।' विमल राय की सुजाता का पंडित

कोई अतिरंजित व्यक्ति नहीं है बल्कि भारत में सचमुच ऐसे लोग हैं जो आज भी इन बेतुकी बातों पर विश्वास करते हैं। इसी फिल्म में रवीन्द्रनाथ ठाकुर कृत नाटक 'चांडालिका' का मंचन किया जाता है। इस नाटक में 'बुद्ध' अछूत लड़की के हाथों से पानी लेते हैं और सभी जातियों की समानता को व्याख्यायित करते हैं। इस फिल्म में विमल राय, 'अछूत-कन्या' के फ्रांज ऑस्टेन से भी आगे निकल जाते हैं और वे एक अछूत लड़की की ब्राह्मण लड़के से शादी को संभव बना देते हैं।

बी.आर. चोपड़ा हिंदी फिल्मों में सामाजिक सुधार और सामाजिक चेतना को आधुनिक संदर्भों में व्याख्यायित करने वाले सफलतम निर्माता-निर्देशक हुए हैं। विधवा विवाह को सामाजिक मान्यता दिलाने के लिए उन्होंने 'एक ही रास्ता' (1956) बनाई। यह एक त्रिकोणात्मक कहानी है। सुनील दत्त और मीनाकुमारी पति-पत्नी हैं। जब एक हादसे में सुनील दत्त की मृत्यु हो जाती है तो अशोक कुमार एक मित्र के रूप में मीना कुमारी की देखभाल करने लगते हैं। लेकिन यह स्थिति एक विधवा स्त्री को बदचलन घोषित करने के लिए समाज में पर्याप्त थी। बी आर चोपड़ा ने साहस के साथ फिल्म में विधवा स्त्री का विवाह (अशोक कुमार के साथ) करवाकर सुधार की एक नई परंपरा को स्थापित किया।

सन् 1959 में ही अविवाहित मातृत्व की समस्या से जूझने वाली स्त्रियों के जीवन के बिखराव और उसकी परिणति को दर्शाने वाली सशक्त फिल्म 'धूल का फूल' बी.आर. चोपड़ा के ही निर्देशन में आई। अविवाहित मातृत्व के परिणामस्वरूप जन्म लेनी वाली संतान अवैध घोषित की जाती है और उसका जीवन नारकीय हो जाता है। यह एक बहुत ही संवेदनशील विषय है जिसे फिल्म द्वारा समाज के सम्मुख लाने का साहस बी.आर. चोपड़ा ने किया है। ये फिल्में समाज को ऐसी विषम स्थितियों से बचने के लिए आगाह करती हैं और उन स्थितियों के पर्यवसान को बेबाकी से प्रस्तुत कर स्त्रियों के पक्ष में समाज को खड़े होने का साहस प्रदान करती हैं। बी.आर. चोपड़ा अपनी एक और फिल्म 'इंसाफ का तराजू' (1959) में बलात्कार पीड़िता को न्याय दिलाने की माँग करते हैं।

अगर हम बात करें सिनेमा का समाज पर प्रभाव पर तो सिनेमा का प्रभाव समाज पर कैसा पड़ता है, यह हमारी मानसिकता पर निर्भर करता है। सिनेमा में प्रायः अच्छे एवं बुरे दोनों पहलुओं को दर्शाया जाता है। समाज यदि बुरे पहलुओं को आत्मसात करे, तो इसमें सिनेमा का क्या दोष है। विवेकानन्द ने भी कहा था- 'संसार की प्रत्येक चीज अच्छी है, पवित्र है और सुन्दर है, यदि आपको कुछ बुरा दिखाई देता है, तो इसका अर्थ यह नहीं कि वह चीज बुरी है। इसका अर्थ यह है कि आपने उसे सही रोशनी में नहीं देखा।'

सामाजिक बुराइयों को दूर करने में सिनेमा सक्षम है। दहेज प्रथा और इस जैसी अन्य सामाजिक समस्याओं का फिल्मों में चित्रण कर कई बार परम्परागत बुराइयों का विरोध किया गया है। समसामयिक विषयों को लेकर भी सिनेमा निर्माण सामान्यतः होता रहा है। चूँकि सिनेमा के निर्माण में निर्माता को अत्यधिक धन निवेश करना पड़ता है, इसलिए वह लाभ अर्जित करने के उद्देश्य से कुछ ऐसी बातों को भी सिनेमा में जगह देना शुरू करता है, जो भले ही समाज का स्वच्छ मनोरंजन न करती हों, पर जिन्हें देखने वाले लोगों की संख्या अधिक हो।

गीत-संगीत, नाटकीयता एवं मार-धाड़ से भरपूर फिल्मों का निर्माण भी अधिक दर्शक संख्या को ध्यान में रखकर किया जाता है। जिसे सार्थक और समाजोपयोगी सिनेमा कहा जाता है, आम तौर पर वह आम आदमी की समझ से भी बाहर होता है एवं ऐसे सिनेमा में आम आदमी की रुचि भी नहीं होती, इसलिए समाजोपयोगी सिनेमा के निर्माण में लगे धन की वापसी की प्राय: कोई सम्भावना नहीं होती।

इन्हीं कारणों से निर्माता ऐसी फिल्मों के निर्माण से बचते हैं। बावजूद इसके कुछ ऐसे निर्माता भी हैं, जिन्होंने समाज के खास वर्ग को ध्यान में रखकर सिनेमा का निर्माण किया, जिससे न केवल सिनेमा का, बल्कि समाज का भी भला हुआ।

हिंदी फिल्मकारों ने भारतीय स्त्री के लगभग सभी रूपों को फिल्मों में प्रस्तुत किया है। घरेलू स्त्री, कामकाजी स्त्री, किसान स्त्री, विवाहित और अविवाहित स्त्री, जुझारू स्त्री, संघर्षशील स्त्री और अन्याय- अत्याचार से लड़ने वाली स्त्री आदि रूप हिंदी फिल्मों में प्रमुख रूप से आते रहे हैं। राजकपूर द्वारा निर्मित 'प्रेमरोग' (1982) (जैनेन्द्र जैन, के.के. सिंह) में आभिजात्य परिवार की विधवा युवती 'मनोरमा' (पद्मिनी कोल्हापुरी) का विवाह सामान्य वर्ग के युवक 'देवधर' (ऋषिकपूर) से करवाकर वर्ग वैषम्य को मिटाने की पहल की गई है। इस फिल्म में एक ओर वर्ग-संघर्ष है तो दूसरी ओर आभिजात्य परिवारों में प्रच्छन्न रूप से प्रचलित स्त्री-शोषण का घिनौना रूप भी अनावृत्त हुआ है। ये फिल्में संदेशात्मक फिल्में हैं। इसी श्रेणी में आर.के. फिल्म्स के बैनर तले बनी फिल्म 'प्रेमग्रन्थ' (जैनेन्द्र जैन) भी आती है जो कि बलात्कार पीड़ित स्त्री के उत्पीड़न और परिणामों को दर्शाती है। इस फिल्म के माध्यम से ऐसी स्त्रियों को समाज में स्वीकार करने की पहल की गयी है।

'प्रकाश झा' ने 1985 में 'दामुल' बनाई, जिसमें अमीर लोगों द्वारा गरीबों का शोषण दिखाया गया है। दामुल' के जरिये गाँव की पंचायत, जमींदारी, स्वर्ण तथा दलित संघर्ष की नब्ज को उन्होंने छुआ है। इसके पश्चात् 'मृत्युदंड' में उन्होंने ग्रामीण वातावरण में स्त्री के यौन शोषण और कर्मकाण्डी धार्मिक व्यवस्था द्वारा स्त्री की दुर्गति के प्रयासों के विरुद्ध स्त्रियों के संघर्ष को दर्शाया है। यह फिल्म सामाजिक और लिंग अन्याय पर एक टिप्पणी है।

महबूब खान द्वारा निर्देशित तथा लिखित फिल्म 'मदर इंडिया' भारतीय किसान तथा नारी के संघर्ष और त्रासदी की महागाथा है। यह ग्रामीण महाजनी सभ्यता की क्रूरता और अत्याचार से लड़ती हुई नारी की मार्मिक कहानी भी है। जमींदारी अन्याय से लड़ते-लड़ते गाँवों में डाकुओं की जमात भी तैयार होती है। ग्रामीण सामंती अत्याचार से उत्पन्न डाकू समस्या को उजागर करने वाली फिल्मों में भी यह शामिल है। 'मुझे जीने दो' (सुनील दत्त-वहीदा रहमान) अघजानी कश्मीरी द्वारा लिखित, गंगा-जमुना (दिलीप कुमार-वैजयंती माला) लेखक दिलीप कुमार, शेखर कपूर की बैंडिट क्वीन (सीमा बिस्वास)माला सेन, जिस देश में गंगा बहती है (राजकपूर-पद्मिनी-प्राण) प्रमुख हैं।

समकालीन समय में उरी द सर्जिकल स्ट्राइक (आदित्य धर), थप्पड़, लेखक अनुभव सिन्हा (फिल्म और लोकप्रिय ऑस्ट्रेलियाई टेलीविजन श्रृंखला द स्लैप (टीवी श्रृंखला) के बीच उल्लेखनीय समानताएँ हैं, जो स्वयं 2008 के उपन्यास द स्लैप पर आधारित हैं जिसके लेखक हैं क्रिस्टोस

त्सोलकास। लिंग भेदभाव, पितृसत्ता में फँसे पारंपरिक समाज के लिए हमेशा एक बड़ी चुनौती के रूप में देखा गया है। अनुभव की फिल्म थप्पड़ ने इसी पुरुष विशेषाधिकार को चुनौती दी है, जिसे हमारा समाज लंबे समय से एन्जॉय करता हुआ नजर आ रहा था। फिल्म में घरेलू हिंसा जैसी सामाजिक कुरीति पर गहनता से चर्चा की गई है और बताया गया है कि यदि कहीं घरेलू हिंसा होती है तो उसके कई आयाम या ये कहें कि अलग-अलग दृष्टिकोण होते हैं।

2021 में आयी फिल्म शेरशाह विक्रम बत्रा की एक प्रेरक कहानी है। इस में कारगिल युद्ध में शहीद हुए युवा परम वीर चक्र विजेता कप्तान विक्रम बत्रा के जीवन के विभिन्न पहलुओं का वर्णन किया गया है।

पैड मैन, (आर. बाल्की स्वानंद किरकिरे) यह फिल्म अरुणाचलम मुरुगनाथम की वास्तविक जीवन की कहानी से प्रेरित है, जिन्होंने कम लागत वाले सैनिटरी पैड बनाने की मशीन का आविष्कार किया था। मुरुगनाथम ने एक ऐसी मशीन का निर्माण किया था जो सैनिटरी नैपकिन्स सस्ते दाम में उत्पादित करती थी। उनको इस आविष्कार के लिए पद्म श्री से भी नवाजा गया था।

टॉयलेट एक प्रेम कथा, तारे जमीन पर आदि आधुनिक फिल्में बेहिचक और बिना संकोच आम आदमी की मनोवैज्ञानिकता के दरवाजे खटखटाती हैं। इसीलिए ऐसी फिल्में बेहद पसंद की जाती हैं जो सच्चाई को बेपरवाह, बेखटके सबके सामने लाती हैं और साधारण व्यक्ति के दिल में घुसकर उसे सोचने-समझने पर मजबूर कर देती हैं। आज के दौर में कई ऐसी फिल्में बनी हैं तथा बन रही हैं जिनका आधार या लक्ष्य आम आदमी को जागरूक करना है। इस समय, मैं आपके सामने आज के दौर की कुछ फिल्मों के नाम रख रही हूँ।

'पीके' फिल्म पर आरोपित विवादों की बात छोड़ दे तो यह बहुत खूबसूरती से व मनोरंजक ढंग से आदमी के हृदय में गहराया हुआ अपनी असफलताओं और कमजोरियों का डर दर्शाती है। यह फिल्म बताती है कि कैसे यह डर मनुष्य को भगवान पर या ढोंगी साधुओं पर निर्भर रहने पर मजबूर कर देता है। कहीं न कहीं हर व्यक्ति स्वयं यह जानता है कि इसमें कुछ गलत है परन्तु उसके अन्दर का भय उसे स्वयं या समाज से विद्रोह करने की अनुमति नहीं देता। 'पीके' जैसी फिल्में उसकी सुप्त अंतरात्मा पर दस्तक देती हैं, उसे संबल और साहस देती हैं। ये फिल्में उसे बताती हैं कि यह उस अकेले की समस्या नहीं है, पता नहीं कितने और इसके शिकार हुए हैं। हाथ पर हाथ धरकर बैठने की बजाय यदि कुछ किया जाए तो उसके साथ-साथ समाज का भी भला होगा।

'अ वेडनेस्डे' फिल्म आतंकवाद जैसा मुद्दा उठाती है जिसे सामान्यत: और अनन्य रूप से सरकार की समस्या मानकर आम आदमी सरलता से अपने दायित्वों से हाथ झाड़ लेता है। यह फिल्म व्यक्ति को अपनी इस सोच पर पुनर्विचार करके, एक साधारण व्यक्ति को उसकी ताकत का अहसास करवाती है। इस फिल्म के खत्म होते ही हर दर्शक अपने आपको कहीं बहुत ज़्यादा सबल और सक्षम महसूस करता है। यह फिल्म आतंकवाद, जो एक जोंक की तरह खून चूसकर पूरे विश्व को सुरक्षा कवच टूटने के भय से ग्रस्त कर रहा है, उसे खींचकर निकाल फेंकने का सुगम रास्ता दिखाती है।

'हिंदी मीडियम' कहने को तो भारत की शिक्षा व्यवस्था की असमानता और उसमें उच्च वर्ग

द्वारा निम्न वर्ग के अधिकार को हड़पने के षड्यंत्र पर आधारित है, पर इसमें दो ऐसे वर्गों को दिखाया गया है जो शिक्षा के लिए संघर्षरत हैं। एक वर्ग जो सभी प्रकार से सम्पन्न है। वह शिक्षा को पाने के लिए निम्न वर्ग का व्यक्ति बनने का नाटक करता है और दूसरा वह वर्ग जो निम्न वर्ग का होते हुए शिक्षा के द्वारा उच्च वर्ग में सम्मिलित होने का आकांक्षी है। भारतीय समाज स्वतंत्रता के पूर्व वर्ण आधारित था। समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नामक वर्णों में बाँटा गया था। स्वतंत्रता के पश्चात् संविधान में सभी के साथ एक जैसा व्यवहार करने के लिए कानून का निर्माण किया गया। सभी के लिए समान रूप से शिक्षा, स्वास्थ्य और क्षमता अनुसार रोजगार उपलब्ध करवाने का सरकार द्वारा वादा किया गया। पर देखते ही देखते सरकार का यह वादा सिर्फ छलावा साबित हुआ। शिक्षा के क्षेत्र ने दो प्रकार के समाज का निर्माण किया। एक शिक्षा समाज के उन लोगों को सभी प्रकार की आधुनिक सुविधाओं से संपन्न और सुसज्जित इमारतों में दी जाती है, जिनकी संख्या समाज में सिर्फ पाँच प्रतिशत है। दूसरी शिक्षा किसी टूटी, बरसात में पानी की बूँद टपकती सरकारी इमारत या फिर किसी पेड़ के नीचे समाज के पंचान्वे प्रतिशत लोगों को दी जाती है। शिक्षा का यह विभेद आगे चलकर विद्यार्थियों में हीन भावना के जन्म का कारण बनता है। सम्पूर्ण फिल्म समाज के दो ऐसे वर्गों का चित्रण करती है जो आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा को पाने के लिए संघर्षरत हैं।

'टॉयलेट एक प्रेम कथा' हमारी समाज की एक मूलभूत समस्या पर अँगुली रखती है। भारत सहित अनेक देश में लोग आज भी खुले में शौच का प्रयोग करते हैं। जैसे-जैसे सभ्यता का विकास होता है लोग सुविधानुसार पुराने विचार छोड़कर नए विचार को अपनाते लगते हैं। यही समाज के विकास का क्रम है। इस प्रक्रिया में कभी-कभी नए विचार या संस्कृति को अपनाने में हम शर्म या गर्व का अनुभव कर सकते हैं। भारत में अंग्रेजी शासन के आने पर यहाँ के कुछ लोग उनकी संस्कृति को अपनाकर एक तरफ गौरवान्वित हो रहे थे वहीं कुछ के लिए यह शर्म की बात थी। यह फिल्म एक ऐसी नायिका पर आधारित है, जिसकी ससुराल में टॉयलेट नहीं है, जिसकी वजह से वह अपनी ससुराल छोड़कर मायके चली आती है। नायक को नायिका को वापस लाने के लिए अपने घर में टॉयलेट बनवाना पड़ता है।

'टॉयलेट-एक प्रेम कथा' श्री नारायण सिंह द्वारा निर्देशित साल 2017 में आई हिंदी भाषा की कॉमेडी-ड्रामा फिल्म है। यह फिल्म भारत में स्वच्छता की स्थिति में सुधार करने के लिए सरकारी अभियानों के समर्थन में एक व्यंग्यपूर्ण कॉमेडी है, जिसमें खुले में शौच के उन्मूलन पर जोर दिया गया है, खासकर ग्रामीण इलाकों में। फिल्म भारत की शौचालय समस्या पर प्रकाश डालती है। आज भी भारत में बहुत से ग्रामीण क्षेत्रों में शौचालय नहीं हैं। यदि हैं भी तो साझे, जहाँ गली, मोहल्ले के सभी लोग जाते हैं। और तो और, शर्म के कारण महिलाएँ इसे इस्तेमाल नहीं करतीं। उनके लिए शौचालय है, दूरदराज के खेत या जंगल या कंटीला या सुनसान इलाका। कई बार यही यौन उत्पीड़न का कारण बनता है। यह एक बुनियादी जरूरत है, जिसका इस फिल्म ने संदेश दिया है।

न्यूटन सिनेमा के माध्यम से फिल्मकार ने भारत में विभिन्न जाति, समुदाय, धर्म और मान्यताओं के जो लोग रहते हैं उनको अभिव्यक्ति दी है। जिन्हें सामाजिक रूप से उपेक्षित किया जाता है, फिल्मों

में उनकी मान्यताओं या व्यवहारों को किसी न किसी रूप में अभिव्यक्ति मिलती रही है। ऐसा कहा जाता है कि भारतीय फिल्मों में भारतीय समाज का दर्शन होता है। एक हद तक यह सही भी हो सकता है। पर भारतीय समाज में जितनी विविधता और विस्तार है, ये फिल्में उसके सम्पूर्ण अंश का भी चित्रण करने में सफल नहीं हुई हैं। अधिकतर भारतीय फिल्मों में समाज के कुछ प्रतिशत लोगों का ही चित्रण हो पाया है। समाज का अधिकांश हिस्सा अभी भी इसकी पहुँच से छूटा हुआ है। हाशिये के समाज पर बनने वाली फिल्मों को आज भी अँगुलियों पर गिना जा सकता है।

न्यूटन फिल्म का आरंभ ही आदिवासी इलाके में चुनाव प्रचार के दौरान नेता की हत्या से होता है। नेता की हत्या करने वाले कौन लोग हैं? वे इस प्रकार नेता की हत्या क्यों करते हैं? इस हत्या के पीछे किसकी चाल है? फिल्म इन सभी प्रश्नों को दर्शकों को सोचने के लिए छोड़कर आगे बढ़ जाती है। हमारी सरकार इस प्रकार की हत्या करने वालों को नक्सली कहती है और अपने इस अभियान में वह आए दिन नक्सलियों को पुलिस मुठभेड़ में मारती रहती है। इस फिल्म में इस समाज की शांति को भंग करने वाले कारक तत्वों को बहुत ही सूक्ष्मता से उकेरा गया है।

अनुषा रिजवी निर्देशित फिल्म 'पीपली लाइव' किसानों की व्यथा-कथा को सम्मुख लाती है, इसमें किसानों को कर्ज से तबाह होने पर आत्महत्या जैसे कदम की ओर बढ़ना दिखाया गया है एवं आज की मीडिया और राजनीति के दोगले चरित्र को बखूबी परदे पर उतारा गया है। पीपली लाइव सिनेमा में इस समस्या को दर्शाया गया है कि आए दिन किसान आत्महत्या कर रहा है, कारण है कर्जा या सूखी जमीन या गरीबी। यह सिलसिला थमने का नाम ही नहीं ले रहा है। और तो और किसानों की बदहाली की कोई सुध नहीं लेता। नेता, मंत्री आश्वासन देते हैं, पर सटीक उपाय नहीं देते।

स्वदेश फिल्म का मोहन नासा जैसी स्पेस एजेंसी को छोड़कर अपने वतन लौट आता है, वह भारत को उस ऊँचाई पर ले जाने का स्वप्न देखता है जहाँ से भारत की गरिमा बनी रहे। फिल्म में शिक्षा व्यवस्था, जातिप्रथा, छुआछूत, ऊँचनीच का भेदभाव, बालविवाह, स्त्रीशिक्षा, बाल मजदूरी, गाँवों की बदहाल स्थिति, बेरोजगारी, सामाजिक विकास के कार्य, राजनीति, पंचायतों की रवायतें, बिजली की समस्या आदि पर प्रकाश डाला गया है।

स्वदेश फिल्म के लेखक निर्देशक आशुतोष गोवारिकर हैं। इस सिनेमा में नासा में वैज्ञानिक नौजवान मोहन का अपने भारत के प्रति प्यार छलक उठता है, वह भारत वापस आकर यहाँ की समस्याओं को हल करने का प्रयत्न करता है, उसे यहाँ की मिट्टी, वायु, जल, उसकी माँ, धरती माँ, प्रेयसी और यहाँ के भोले-भाले ग्रामीण किसान उनकी संस्कृति, सभ्यता से बेहद लगाव है, वह भी अपने देश की माटी में खेल कर बड़ा हुआ है, वह बचपन में बिताये दिनों को याद करता है और अमरीका छोड़ कर वापस अपने देश की सेवा में लग जाता है। फिल्म का मोहन भार्गव (शाहरुख खान) उन सारे युवाओं के लिए प्रेरणास्त्रोत है, जो बेहतर जिंदगी की तलाश में देश छोड़कर पलायन कर रहे हैं। मोहन नासा में रहता है, लेकिन उसकी जड़ें भारत में हैं, जिन्हें वो चाहकर भी खुद से अलग नहीं कर पाता। वो देश की याद दिलाती कावेरी अम्मा को अपने साथ अमेरिका ले जाना चाहता है। इस दौरान वह खुद अपने देश का होकर रह जाता है और उन बुनियादों, समस्याओं को ठीक करने

की कोशिश करता है। जिनका नाम लेकर लोग देश छोड़कर चले जाते हैं और सुख-सुविधाओं से भरी जिंदगी जीते हैं। ये फिल्म शाहरुख खान के कॅरियर की सबसे शानदार फिल्मों में से एक है। जिसे आधुनिक भारतीय सिनेमा की क्लासिक फिल्म माना जा सकता है।

सुप्रसिद्ध फिल्म लगान का नायक भुवन भारत के उस आम आदमी का प्रतीक है, जिसके पास अंग्रेजों से लड़ने के लिए कोई भी हथियार नहीं है। लेकिन वो अपने आत्मबल के भरोसे ऐसी लड़ाई लड़ता है, जिसके बारे में कोई सोच भी नहीं सकता। एक आम आदमी हमेशा एक मौके की तलाश में रहता है, क्योंकि उसे जीत की आस हमेशा मौका मिलने पर ही नसीब हो सकती है। भुवन के साथ भी कुछ ऐसा ही था। उसके पास सिर्फ एक मौका है जीतने का...और हार के कई मौके हैं। लेकिन हार से बेफिक्र भुवन अपनी मिट्टी व अपने लोगों के लिए आखिरी वक्त तक लड़ता है और अपनी कभी न हार मानने वाली जिद की वजह से ही जीतता है।

फिल्म 'सलाम नमस्ते' में 'लिव इन रिलेशनशिप' के मुद्दे को उठाया गया जहाँ नायिका पुरुष की ही भाँति स्वतंत्रता चाहती है। वह प्रेम सूत्र में बँधना तो चाहती परन्तु अभिव्यक्ति को स्वतंत्र रूप में प्रकट भी करती है। वहीं सन 2002 में आई 'मित्र माई फ्रेंड' फिल्म ने एक ऐसी स्त्री को पेश किया जो रूटीन लाइफ से उदासीन बन जाती है और कुछ नयापन खोजती है। अपने अकेलापन बाँटने के लिए वह इंटरनेट पर फ्रेंड बनाती है। इसी तरह की और फिल्में जैसे- 'लव आजकल', 'इश्किया', 'नो वन किस जेसिका', 'बैंड बाजा बारात', 'अंजाना-अंजानी' ने नयी नारी के चरित्रों को नया आयाम और परिभाषा दी है।

'डेढ़ इश्किया' में माधुरी और हुमा कुरैशी ने पर्दे पर जिस चरित्र को जिया है, वह साधारण स्त्री की कहानी नहीं है पर उनकी इच्छाओं से परे भी नहीं है। माधुरी दीक्षित और हुमा कुरैशी ने पूरी फिल्म में उन्मुक्त होती स्त्री के जीवन के तमाम पहलुओं को बहुत ही बखूबी से चित्रित किया है। यहाँ माधुरी दीक्षित ने एक ऐसी स्त्री की भूमिका को जीवंत किया है जो अपने जीवन के अकेलेपन को तोड़ने के किसी मर्द के कंधों का सहारा नहीं लेती बल्कि बाकायदा स्वयंवर रचाती है। जिसमें सैकड़ों छोटे-बड़े हैसियत के मर्द शामिल होते हैं। इन मर्दों का एक स्त्री को मात्र लेने के लिए अपने आप को एक-दूसरे से बेहतर दिखाने के संघर्ष करते देख सुखद अनुभूति होती है। स्त्री अस्मिता की दृष्टि से यह एक नए आस्वाद की फिल्म है।

'डेढ़ इश्किया' के कुछ दिन बाद ही इम्तियाज अली की 'हाइवे' प्रदर्शित हुई जिसकी चर्चा उसके विषय वस्तु को लेकर कम और अलिया भट्ट के अभिनय को लेकर अधिक हुई। 'हाइवे' एक तरह से हर उस घर की कहानी है जिस घर में स्त्रियों को अन्याय सहते देखा जाता है और उसकी वेदना को महसूस भी किया जाता है लेकिन समाज के तिरस्कार के चलते चुप करवा दिया जाता है।

'हाइवे' हमें हमारे घर के अंदर झाँकने का मौका देती है। अपने घर में आने वाले रिश्तेदारों, संगी साथियों और पड़ोसियों, जो हमारे परिवार का हिस्सा बन चुके हैं पर नजर रखना सिखाती है। आलिया भट्ट ने अपने घर में यौन शोषण की शिकार लड़की के चरित्र को जिस मासूमियत और गंभीरता से जिया है, वह उनके वर्तमान फिल्मी जीवन का सर्वोत्तम अभिनय है। इम्तियाज अली की

सबसे बड़ी विशेषता यही है कि वह अपने स्त्री-पात्रों को उन्मुक्त होने का पूरा अवसर देते हैं।

'हाइवे' के ठीक बाद प्रदर्शित 'गुलाब गैंग' विवादित और कमर्शियल फिल्म की तरह याद की जा सकती है। गुलाब गैंग के बारे में सभी को पता है कि वह सच्ची घटना पर आधारित फिल्म है इसलिए उसके प्रदर्शन के साथ ही उसे उसकी मूल घटना से हूबहू जोड़कर देखना लाजिमी भी है पर हम मान लें कि हम फिल्म देख रहे हैं, जिसका एक पक्ष व्यवसायिक भी है तो गैर जरूरी भी है।

'क्वीन' का प्रदर्शन यह चिह्नित करता है कि महिलाओं के जीवन का एकमात्र उद्देश्य मात्र पति-परमेश्वर नहीं है बल्कि उसकी अपनी इच्छाएँ भी हैं। 'क्वीन' की नायिका साधारण सी लड़की है जिसकी शादी होने वाली है। वह हनीमून मनाने के सपने सजाती, सकुचाती और पर लगाकर उड़ जाने को आतुर है। उसकी भावना हर उस मध्यमवर्गीय लड़की की भावना है, जिनका मकसद चाँद को छूने का नहीं होता बल्कि जो होता है, उसी में खुश रहने का होता है। वह महत्त्वाकांक्षी नहीं होती पर स्वाभिमान को डगमगाने नहीं देती। इस फिल्म की नायिका अपनी शादी को लेकर उत्साहित है और जब शादी का सपना पूरा नहीं होता तो वह अपना दूसरा सपना तोड़ने को राजी नहीं होती। खुद अकेले निकल जाती है हनीमून मनाने। दरअसल यह एक ऐसी मासूम और भावनात्मक लड़की की कहानी भी है जो सिनेमा के प्रचलित शब्दों में देशी है और जिससे उसकी शादी होने वाली है उसका स्वाद बिगड़ चुका है क्योंकि वह यूरोप में रहता है। एक झटके से टूटे सपने को आँसू पोछकर झटके से खड़ी हुई लड़की के चरित्र को कंगना राणावत ने जी लिया है। इस फिल्म से उनकी ग्लैमरस छवि टूटती है और वह एक गंभीर अभिनेत्री के रूप में चिह्नित हो जाती हैं।

'क्वीन' की नायिका की विदेशी यात्रा तमाम मुश्किलें पैदा करती है पर वह बहुत आसानी से उन्हें अपना कवच बना लेती है। मुश्किलों को अपने अनुभवों में तब्दील कर लेती है। कोई भी देश हो, समाज हो, संगठन हो उससे सब लोग निष्ठुर नहीं होते। कुछ लोग प्रेमी भी होते हैं। नायिका तमाम संघर्षों और समस्याओं से जूझती हुई आत्मविश्वासी हो रही है, कुछ अच्छे दोस्त भी बनते हैं और जब वह इस दुनिया के तौर-तरीके सीख कर जीना सीख जाती है तो उसे लगता है जहाँ खुशी मिले उससे बेहतर जगह नहीं है।

'रिवाल्वर रानी' कंगना राणावत की एक कमजोर फिल्म ही सही पर स्त्री स्वर से भरी हुई है। यह पूर्ण रूप से व्यावसायिक पर स्त्री जीवन के छूट गए पक्ष को देखने लिए ठीक ठाक फिल्म है। 'मर्दानी' में नायिका के हाथ में पिस्तौल है, पर कानूनी है। इस रिवाल्वर से होने वाले कत्ल गैर-कानूनी नहीं है क्योंकि उसके पास लाइसेंस है। रिवाल्वर रानी और मर्दानी दोनों ही सिनेमा की नायिकाओं का मुख्य स्वर गुनाह खत्म करना है पर तरीका अलग है। स्त्री अस्मिता के बदलते तेवर की दृष्टि से यह एक जरूरी फिल्म है। मर्दानी की कहानी शिवानी शिवाजी रॉय के इर्द-गिर्द घूमती है, जो एक पुलिसकर्मी है। रानी मुखर्जी द्वारा अभिनीत शिवानी किशोर लड़की के अपहरण के केस की परतें खोलती है, जहाँ उसे भारतीय माफिया द्वारा मानव तस्करी के रहस्यों का पता चलता है। यह फिल्म महिला की बहादुरी को दर्शाती है और मानव तस्करी पर कड़ा प्रहार करती है।

'सुपर नानी' एक स्त्री के त्याग और पारिवारिक समता को बनाए रखने के लिए अपनी

इच्छाओं की बलि देने वाली स्त्री की कहानी है। ममतामयी स्त्री के कठोर बन जाने के चरित्र को रेखा ने बखूबी अदा किया है। फिल्म की कहानी आम भारतीय नारी की है जिसकी सबसे बड़ी प्राथमिकता अपना परिवार है। परिवार मतलब पति, बच्चे और अन्य सदस्यों की जिम्मेदारी परिवार की वरिष्ठ सदस्य होकर भी उपेक्षित नारी का जीवन जी रही भारती भाटिया (रेखा) का पूरा जीवन अपने घर-परिवार को सँभालने में गुजर जाता है, यह ठीक है कि एक पारिवारिक नारी कि अपनी जिम्मेदारियाँ होती हैं जिन्हें वह निभाती भी है पर यहाँ समस्या दूसरी है। यहाँ एक स्त्री के अपने परिवार के लिए मर-खप जाने कि कहानी भर नहीं है, न ये फिल्म का मुद्दा है बल्कि मुद्दा यह है कि इतना शारीरिक, मानसिक और आर्थिक बलि देने के बाद भी स्त्री का सम्मान क्यूँ नहीं है? सवाल सम्मान का है? दिन भर घर में सबकी इच्छाओं कि पूर्ति करती नानी को जब उसका नाती अचानक उससे मिलने आता है तो वह उसकी इस उपेक्षा से दुखी होकर उसके अंदर छुपे रूप-गुण को निखारता है और एक दिन उन्हें प्रोत्साहित करता है तो वह जिस साबुन का वह प्रयोग करती हैं, उसी की ब्रांड अंबेसडर बन जाती हैं। यह करिश्मा होते ही नानी की वैल्यू बढ़ जाती है। समाज में सम्मान मिलते ही वह परिवार की हीरोइन बन जाती है। सामान्य सी इस फिल्म का महत्त्व इसलिए है कि यह फिल्म ये संदेश देने में सफल हो जाती है कि स्त्री की आर्थिक आत्मनिर्भरता ही उसे सम्मान दिला सकती है। स्त्री सिर्फ परिवार के लिए किचेन में पूरी अपनी जिंदगी गुजार दे तो वह मात्र सहानुभूति पा सकती है पर उसकी आर्थिक स्थिति ही उसे हर तरह से मजबूत कर सकती है। फिल्म की कहानी में यह भी छुपा है कि किसी भी उम्र में किसी भी क्षेत्र में नई शुरुआत की जा सकती है बस आपकी स्वयं की इच्छा हो। उम्र खत्म होने से जिंदगी खत्म नहीं होती।

'इंग्लिश विंग्लिश' एक भारतीय कॉमेडी-ड्रामा फिल्म है, जो गौरी शिंदे द्वारा लिखित और निर्देशित है। कहानी शशि नाम की एक महिला के इर्द-गिर्द घूमती है, जो एक छोटी उद्यमी है, जो स्नैक्स बनाती है। शशि अपने पति और बेटी से अंग्रेजी न बोल पाने के कारण अपमान झेलती है।

'हैदर' फिल्म विलियम शेक्सपियर की हैमलेट पर आधारित है। इसे विशाल भारद्वाज ने लिखा और निर्देशित किया। 'हैदर' को सामाजिक और साहित्यिक चिंतकों ने भी बहुत गंभीरता से लिया। जनसत्ता जैसे प्रतिष्ठित समाचार पत्र में किसी फिल्म पर बड़े स्तर पर बड़े विद्वानों द्वारा सार्थक बहसें हुईं। 'हैदर' चाहे भले ही शाहिद कपूर के नायकत्व की फिल्म हो पर इसके केंद्र में तब्बू है, एक स्त्री। ऐसी स्त्री जिसका पति ईमानदार और इंसानी भावों से युक्त है। एक माँ है जिसे अपने शहर के हालात में अपने बच्चे के बिगड़ जाने की पूरी संभावना है इसलिए वह उसे अलीगढ़ पढ़ने भेजती है। यह फिल्म अपने समय के कई मुद्दों से जुड़ जाती है। कश्मीर भारत का सबसे विवादित और खूबसूरत हिस्सा है पर यहाँ का जीवन कठिन है, हालात गंभीर हैं।

खिलाड़ियों पर आधारित फिल्में भी बहुत बन रही हैं। महिला खिलाड़ियों पर बनी फिल्मों में 'मेरीकॉम' एक ऐसी फिल्म है जिसमें स्त्री की जिजीविषा और प्रगतिशील चेतना की अभिव्यक्ति है। मेरीकॉम उन तमाम औरतों के लिए एक प्रेरणा की तरह है जिनके जीवन में सिर्फ अभाव है। शून्य से शिखर तक पहुँचने की कहानी को, उनके संघर्षों से यह फिल्म परिचित कराती है। 'मेरीकॉम' से

पहले मिल्खा सिंह के जीवन पर 'भाग मिल्खा भाग' का निर्माण हो चुका था, लिहाजा उससे भी तुलना हुई।

'रंगरसिया' के केंद्र में भी एक स्त्री है। जिसे समाज वेश्या कहता है पर कलाकार देवी कहता है क्योंकि उसकी सुंदरता में उसे किसी देवी का चेहरा दिखता है। यह फिल्म महान कलाकार रवि वर्मा के जीवन पर केंद्रित है। जिन्होंने हिंदू देवी-देवताओं की कहानियों को रंगों में परिभाषित किया। यह सिनेमा स्त्री की मुक्ति और अस्मिता दोनों के संकट को बहुत ही गंभीरता से व्यक्त करता है। नायिका को देवी बन जाने से अधिक खुशी कलाकार की अभिव्यक्ति का साधन बन जाने में है। दुनिया के लिए उपेक्षित नायिका को प्रेम मिलता है तो वह पिघल जाती है। कलाकार उसकी तस्वीर बनाता है तो उसे देवी की तरह पूजता है और जैसे ही वह कलाकार की खोल से बाहर निकलता है, प्रेमी बन जाता है। कलाकार और प्रेमी की अद्भुत भूमिकाओं में रणदीप हुडा ने सर्वोत्कृष्ट अभिनय किया है।

फिल्म 'रंग दे बसंती' का मुख्य भाव है जागृति। यह फिल्म अपनी मान्यताओं के बारे में सोचने और उठ खड़े होने के बारे में है और हमें यह इशारा करती है कि क्रांति की जरूरत शायद आज भी है। फिल्म का कथानक एक युवा ब्रिटिश फिल्मकार सू की है जो भारत में अपने दादा की डायरी पढ़ कर भारत आती है, भारत के क्रांतिकारियों के बारे में एक वृत्तचित्र के निर्माण का इरादा लिये। उसका उद्देश्य है भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद और उनके साथियों के ब्रिटिश तानाशाही के खिलाफ हुए संघर्ष के बारे में एक डॉक्यूमेंट्री बनाना। चूँकि उसके पास बहुत पैसे नहीं हैं इसलिये वह चाहती है कि दिल्ली विश्वविद्यालय के कुछ छात्र उसकी इस फिल्म में अभिनय करें।

यहाँ उसकी मुलाकात डीजे से होती है। डीजे को दिल्ली विश्वविद्यालय से अपनी पढ़ाई पूरी किये हुए पाँच साल हो चुके हैं। पर डीजे को ऐसा लगता है कि बाहर की दुनिया में उसके लिये कुछ नहीं रखा है। डीजे के दोस्त हैं करण, असलम और सुखी। करण-राजनाथ सिंघानिया नाम के एक उद्योगपति का बेटा है और उसकी अपने पिता से नहीं पटती। असलम जामा मस्जिद के पास की गलियों में रहने वाले एक मध्यम वर्गीय मुस्लिम घर से है। वह इन दोस्तों के बीच का शायर है। सुखी इनमें सबसे छोटा है और सबकी आँखों का तारा है। सब उसे गुट के बच्चे की तरह प्यार करते हैं। इन दोस्तों से अलग है लक्ष्मण पान्डेय। लक्ष्मण एक हिन्दुत्ववादी है जिसे राजनीति पर काफी भरोसा है और वह यह मानता है कि राजनीति से देश और समाज में सुधार लाया जा सकता है। लक्ष्मण की डीजे और उसके साथियों से नहीं बनती है और उनमें अक्सर झगड़ा होता रहता है। डीजे और साथियों की एक दोस्त है सोनिया- इस दल की अकेली लड़की। सोनिया की अजय से शादी होने वाली है। अजय एक चुस्त फाइटर पायलट है जो कि भारतीय वायु सेना में मिग लड़ाकू विमान उड़ाता है। सभी युवा बाकी के आम युवाओं की तरह अपनी जिन्दगियों और मौज-मस्तियों में मस्त हैं। इनकी मौज-मस्ती से भरी जिन्दगी में देशभक्ति इतिहास की किताबों में वर्णित कहानियों से ज़्यादा कुछ भी नहीं है। अपनी फिल्म के माध्यम से सू दुनिया को भारतीय क्रांतिकारियों के स्वतंत्रता संग्राम में बलिदान की महानता को दर्शाना चाहती है।

कहानी मोड़ लेती है जब सोनिया के मंगेतर अजय का विमान गिर जाता है और उस हादसे में उसकी मौत हो जाती है। सरकार उस हादसे के लिये पायलट अजय को ही जिम्मेदार मानती है। सोनिया और अजय के दोस्त इस बात को नहीं मानते। उनको पूरा यकीन था कि अजय ने कोई गलती नहीं की बल्कि उसने कई और लोगों की जान बचाने के लिये विमान को शहर में नहीं गिरने दिया। और अपनी तरफ से सच्चाई का पता लगाते हैं। फिल्म का अंत थोड़ा अलग है जिसमें अजय के दोस्तों को सच्चाई को सामने लाने के लिये भगत सिंह और राजगुरु जैसे क्रांतिकारियों वाले रास्ते का रुख करना होता है।

'चक दे इंडिया' सिनेमा में बिना कुछ जाने समझे एक खिलाड़ी को देशद्रोही साबित कर दिया जाता है। कई सालों बाद उसे अपने माथे पर लगे उस झूठे कलंक को धोने का मौका मिलता है। एक कोच बनने का मौका, वह भी लड़कियों की टीम का। अब एक तरफ देश-समाज का सताया हुआ कोच है, तो दूसरी ओर ताश के पत्तों के माफिक बिखरी हुई गर्ल्स टीम। इंडियन हॉकी टीम के कोच कबीर खान के लिए ये मौका है बदनामी के दाग धोने का, तो हॉकी टीम की लड़कियों के पास मौका है उन सभी लोगों को गलत साबित करने का, जो ये कहते हैं कि लड़कियाँ, लड़कों की बराबरी नहीं कर सकतीं, बल्कि वो उनसे बेहतर काम कर सकती हैं। इस फिल्म को देखते हुए आप हर किरदार से इस कदर जुड़ जाते हैं कि इनकी लड़ाई आपको अपनी लगने लगती है। स्वदेश के बाद शाहरुख की ये दूसरी फिल्म है, जिसमें उनके अभिनय को हमेशा याद किया जाएगा।

'पिंक' सिनेमा के बारे में कहा जा सकता है कि लंबे समय बाद कोई ऐसी फिल्म रिलीज हुई, जिसने बिना कोई भाषण दिए सीधे लोगों के दिलो-दिमाग को झकझोर कर रख दिया। फिल्म कई सवाल खड़े करती है। जैसे-गलती किसी की भी हो, लेकिन इल्जाम हमेशा लड़की पर आता है। हमेशा उसके कैरेक्टर पर ही अँगुली उठाई जाती है। उसे ही कहा जाता है कि अपनी इच्छाओं को मारो। ऐसे कई सवाल, जो आपको सोचने पर मजबूर कर देते हैं। हम अपने लड़कों को क्या सिखा रहे हैं, बजाय लड़कियों को समझाने कि हम लड़कों से ये क्यों नहीं कह सकते कि औरतों की 'न' की भी उतनी ही इज्जत करो, जितनी आप उनकी 'हाँ' की करते हो।

विकी डोनर, मद्रास कैफे, पान सिंह तोमर, गैंग ऑफ वसेपुर, अलीगढ़, बर्फी, लंच बॉक्स, पीकू, मसान, एनएच 10, उड़ान, निल बटे सन्नाटा, मुक्ति भवन, आँखों देखी जैसी बेहतरीन फिल्मों के विषय इतने अनोखे थे जिन पर फिल्म बनाने की सहज आवश्यकता थी।

हिंदी में फिल्मों की दो प्रमुख धाराएँ विकसित हुई हैं। एक मुख्य धारा की फिल्में हैं जिन्हें व्यावसायिक (कमर्शियल) अथवा लोकप्रिय सिनेमा कहा जाता है जिनका महत्त्व व्यापारिक दृष्टिकोण से अधिक होता है। इन फिल्मों का निर्माण बहुत बड़ी संख्या में होता है और ये लोगों का भरपूर मनोरंजन भी करती हैं। इन फिल्मों का प्राण तत्व गीत और संगीत होते हैं। इनमें हल्की-फुल्की हास्य एवं विनोदप्रधान फिल्मों की भरमार है। ये विनोदपूर्ण फिल्में भी अपने साथ कोई संदेश लेकर आती हैं। पारिवारिक मनमुटावों का समाधान खोजने वाली और स्त्री-पुरुष संबंधों की व्याख्या करने वाली फिल्में इनमें प्रमुख हैं। 'ताराचंद बड़जात्या' ने राजश्री पिक्चर्स के बैनर तले अनेक घरेलू-पारिवारिक

प्रसंगों पर आधारित बहुत सुंदर, विनोदपूर्ण, उद्देश्यप्रधान फिल्में बनाईं जो संदेशात्मक और सुधारवादी दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं।' आरती, नदिया के पार, गीत गाता चल, दोस्ती, दुल्हन वही जो पिया मन भाए, चितचोर, मैं तुलसी तेरे आँगन की' आदि फिल्में पारिवारिक मूल्यों को बल प्रदान करने वाली फिल्में हैं। इसी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए सूरज बड़जात्या ने 'मैंने प्यार किया, हम आपके हैं कौन, विवाह, मैं प्रेम की दीवानी हूँ', आदि फिल्मों का निर्माण किया। ये फिल्में पूरी तरह पारिवारिक मनोरंजन से भरपूर किन्तु भारतीय सांस्कृतिक परम्पराओं की पक्षधर फिल्में हैं। हृषिकेश मुखर्जी एक ऐसे निर्देशक रहे जो प्रेम के मांसल रूप की जगह उसके मानवीय पक्ष को लेकर आए।

प्रयोगधर्मी निर्देशक हृषिकेश हिंदी फिल्मों की मुख्य धारा के साथ ताल-मेल रखते हुए ही अपने नूतन प्रयोग करते रहे। आज से 40-45 साल पहले उन्होंने वे विषय उठाए, जिस पर आज फिल्म और धारावाहिक बनाना फैशन-सा हो गया है लेकिन उसमें समस्या में मूल में जाकर उसके कारण और निवारण की बात नहीं रहती। बलराज साहनी, लीला नायडू को लेकर 1960 में बनाई गई फिल्म 'अनुराधा' एक ऐसे व्यस्त डॉक्टर पति की कहानी है, जिसके पास अपनी गायिका पत्नी के लिए वक्त नहीं है और इस कारण उसकी हताशा अवसाद के उस स्तर पर जा पहुँचती है, जहाँ वह अपने पुराने प्रेमी के प्रति पुनः आकर्षण का शिकार हो जाती है। भूमंडलीकरण और पाश्चात्य जीवन शैली के अनुकरण के कारण आज के युवाओं की व्यस्तता और उस व्यस्तता से जीवन में उपजे संत्रास, घुटन और कालांतर में आए खोखलेपन की आज जो स्थिति है, उसे हृषिकेश मुखर्जी ने चालीस साल पहले ही उस विषय पर अपना दृष्टिकोण सिद्ध कर दिया था।

भारतीय फिल्मों की एक सशक्त धारा समांतर सिनेमा अथवा कला सिनेमा के रूप में भी विकसित हुई। जो कम बजट की, बिना चमक-दमक की, बहुत ही सपाट कथ्य को लिए हुए किसी एक विशेष सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए बनाई जाती रही हैं। इस धारा के निर्माता और निर्देशक फिल्म निर्माण की नई सोच के साथ फिल्मी दुनिया में आए। श्याम बेनेगल, गोविंद निहलानी, ऋतुपर्णा घोष, दीपा मेहता, अनुराग कश्यप आदि इस श्रेणी में आते हैं। इन फिल्मकारों की प्रतिबद्धता और सामाजिक दायित्व इनकी फिल्मों में स्पष्ट रूप से उजागर हुआ हैं।

बहुचर्चित निर्देशक श्याम बेनेगल ने जिन्हें कई राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिल चुके हैं, अपनी पहली फिल्म 1974 'अंकुर' नाम से बनाई। यह फिल्म भी अछूत औरत और ब्राह्मण आदमी के रिश्ते की कहानी है। इसके बाद, भुवन शोम, मृगया, भूमिका, मंडी आदि फिल्मों में श्याम बेनेगल ने हाशिये पर के समाज के उपेक्षित जीवन को प्रस्तुत किया है। अस्सी के दशक से कला फिल्मों ने मुख्यधारा फिल्मों के समानान्तर अपनी एक ठोस जगह बनाई है। इसी श्रेणी में विभाजन की त्रासदी पर भी कुछ बहुत श्रेष्ठ फिल्में बनी हैं जो विभाजन के दर्द को ताजा कर जाती हैं। प्रकाश द्विवेदी द्वारा निर्मित- 'पिंजर', खुशवंत सिंह द्वारा रचित पुस्तक पर आधारित 'ट्रेन टू पाकिस्तान', 1941 अर्थ, तमस (टेलीफिल्म) आदि महत्त्वपूर्ण हैं। कन्या भ्रूण हत्या पर आधारित 'मातृभूमि' बहुत ही मार्मिक फिल्म है। इसके अतिरिक्त गुजरात के दंगों पर आधारित 'परजानिया', 1984 के सिख दंगों पर आधारित 'अम्मू' आदि फिल्में लघु-फिल्मों की श्रेणी में आकर भी बहुत ही प्रभावशाली फिल्में हैं जो

देशवासियों को इन समस्याओं के प्रति संवेदनशील बनाती हैं और इन विषयों पर सोचने के लिए मजबूर करती हैं।

हिंदी फिल्मों में पारिवारिक मूल्यों और संबंधों को सुदृढ़ रखने की परंपरा को प्रोत्साहित करने वाले कथानकों पर आधारित फिल्मों की एक सुदीर्घ शृंखला दक्षिण भारतीय फिल्मी संस्कृति की देन रही है। मध्यवर्गीय पारिवारिक जीवन के सुख-दुखों का चित्रण दक्षिण भारतीय हिंदी फिल्मों की विशेषता रही है। सम्मिलित परिवार परंपरा तथा दाम्पत्य संबंधों की जटिलता को सुलझाकर एक स्वस्थ सामाजिक जीवन की ओर इंगित करने वाली ये फिल्में हैं। ए वी एम, जेमिनी और प्रसाद स्टूडियो द्वारा निर्मित लोकप्रिय पारिवारिक फिल्मों में 'घराना, भाभी, बेटे-बेटी, मैं चुप रहूँगी, ससुराल' महत्त्वपूर्ण हैं। नब्बे के दशक में मणिरत्नम, बालचंदर और के विश्वनाथ के निर्देशन में निर्मित 'बॉम्बे, और रोजा' आतंकवाद और सांप्रदायिक वैमनस्य के दुष्परिणामों को रेखांकित करने वाली फिल्में आईं जिन्हें अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्रात हुई।

हिंदी फिल्में हर युग में बदलती परिस्थितियों के साथ भारतीय समाज के हर रूप और रंग को किसी न किसी रूप में प्रस्तुत करने में सफल हुई हैं। आज का दौर फिल्मों का ही दौर है। फिल्में ही मुख्य मनोरंजन और ज्ञान-विज्ञान को समृद्ध करने का कारगर साधन हैं। फिल्म प्रस्तुतीकरण की शैली में बदलाव अवश्य दिखाई देता है किन्तु इसके केंद्र में व्यक्ति और समाज के अंतर्संबंध ही रहे हैं। निश्चित रूप से फिल्में समाज को एक नई सोच दे सकती हैं।

'तारे जमीं पर' साल 2007 में आई फिल्म ईशान के जीवन और कल्पना की खोज करती है, जो एक 8 वर्षीय डिस्लेक्सिक बच्चा है। वह कला में उत्कृष्ट है, उसके खराब शैक्षणिक प्रदर्शन से उसके माता-पिता उसे एक बोर्डिंग स्कूल में भेजते हैं। ईशान के आर्ट टीचर को पूरा विश्वास है कि ईशान डिस्लेक्सिक है और वो इसे दूर करने में उसकी मदद कर सकते हैं। दर्शील सफरी 8 वर्षीय ईशान के रूप में, और आमिर खान ने कला शिक्षक की भूमिका निभाई। फिल्म स्पेशल चाइल्ड की जरूरतों के बारे में है।

'दामिनी' राजकुमार संतोषी द्वारा निर्देशित साल 1993 में रिलीज फिल्म अपराध ड्रामा है। इस फिल्म में दिखाया है कि कैसे एक महिला न्याय के लिए समाज से लड़ती है। यह फिल्म बॉलीवुड में अब तक बनी महिला केंद्रित फिल्मों में सर्वश्रेष्ठ है।

'मातृभूमि : ए नेशन विदआउट वुमन' सामाजिक मुद्दे यानी कन्या भ्रूण हत्या पर आधारित फिल्म देश के भविष्य को दिखाती है। यदि लड़कियों को मारते रहे तो वो दिन दूर नहीं जब देश ही नहीं रहेगा। आज भी भारत में कई जगहों पर लड़कियों को जन्म के समय ही मार दिया जाता है। यह फिल्म एक लड़की की कहानी के इर्द-गिर्द घूमती है, जिसकी शादी पाँच भाइयों से होती है। फिल्म क्रूर समाज की झलक दिखाती है और एक बच्ची को बचाने का संदेश देती है।

'जॉली एलएलबी' साल 2013 में रिलीज फिल्म है। इसे सुभाष कपूर ने लिखा और निर्देशित किया है। फिल्म में अरशद वारसी, बोमन ईरानी और अमृता राव मुख्य भूमिकाओं में हैं। यह फिल्म वकील जगदीश त्यागी के जीवन के आसपास घूमती है। इसकी कहानी साल 1999 के संजीव नंदा के

हिट-एंड-रन मामले और प्रियदर्शनी मट्टू मामले के एक संदर्भ से प्रेरित है।

साल 2015 में रिलीज फिल्म 'बजरंगी भाईजान' में अभिनेता सलमान खान ने भगवान हनुमान के एक भक्त बजरंगी की भूमिका निभाई है, जो छः साल की पाकिस्तानी मुस्लिम लड़की को उसके माता-पिता से मिलवाता है। बच्ची भारत में अलग होती है और बजरंगी उसे माता-पिता से मिलवाने पाकिस्तान की यात्रा करता है। इस फिल्म में दिया गया प्यार, करुणा और सहानुभूति का संदेश सभी के दिलों को छू गया।

'आर्टिकल 15' एक अपराध जाँच के माध्यम से फिल्म आर्टिकल 15 (2019) के बहाने निचली जाति की दुर्दशा और जाति व्यवस्था की बुराइयों को उजागर करती है। यह समस्या काल्पनिक नहीं है। यह हमारे समाज में व्याप्त है।

फिल्म डोर (2006) नारेबाजी किए बिना एक मजबूत नारीवादी बयान देती है। यह दर्शाती है कि आधुनिक भारत में आज भी विधवा महिलाओं के साथ कैसा सुलूक किया जाता है। साथ ही इस फिल्म में क्षमा की शक्ति का संदेश भी है।

फिल्म 'छपाक' (2020) मेघना गुलजार द्वारा निर्देशित और फॉक्स स्टार स्टूडियोज के सहयोग द्वारा निर्मित है। यह फिल्म लक्ष्मी अग्रवाल के जीवन पर आधारित है। लक्ष्मी एसिड अटैक सर्वाइवर है। यह फिल्म दीपिका पादुकोण और विक्रांत मैसी द्वारा अभिनीत है। यह फिल्म तेजाब पीड़ितों की व्यथा को बयाँ करती है।

अलग-अलग दौर की फिल्मों पर चर्चा के बाद यह स्पष्ट होता है कि हम फिल्मों से नए विचारों को सीखते हैं क्योंकि वे कुछ आभासी तकनीक को दिखाती हैं जो हमें उन्हें बनाने और नए विचार देने के लिए प्रेरित करती हैं। हम नवीनतम चलन को भी जानते हैं, या तो यह फैशन है या कुछ और है, सबसे पहले यह फिल्मों में देखा जाता है और फिर यह वायरल हो जाता है। कुछ फिल्में हमें बहुत प्रेरित करती हैं और कभी-कभी ये हमारे जीवन को भी बदल देती हैं और हमें नई आशा से भर देती हैं। कुछ फिल्में हमारे समाज में वर्जनाओं पर एक व्यंग्य के रूप में बनती हैं जो हमें अपनी मानसिकता बदलने और समाज में बदलाव लाने में मदद करती हैं। फिल्मों को स्ट्रेस बस्टर यानी तनाव को खत्म करने के रूप में भी जाना जाता है क्योंकि हम खुद को भूल जाते हैं और दूसरी कहानी में जीते हैं, जो कभी हमें हँसाती भी है और कभी हमें रुलाती भी है। कुछ लोगों को फिल्मों की लत लग जाती है और यह अच्छी बात नहीं है क्योंकि सब कुछ एक सीमा में होना चाहिए। किसी भी चीज की अधिकता स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। वे फिल्म में सब कुछ दिखाते हैं जैसे नशा, शराब, आदि; कभी-कभी युवाओं और छात्रों को इन चीजों से खतरा होता है और यह उनके जीवन को बुरी तरह प्रभावित करता है। इस चर्चा से यह भी स्पष्ट है कि फिल्में विभिन्न श्रेणियों की होती हैं और कुछ वयस्क फिल्में बच्चों को बुरी तरह प्रभावित करती हैं। इसलिए, बच्चों को सुरक्षित रखने के लिए माता-पिता को हमेशा उनपर नजर रखनी चाहिए।

सम्पर्क : रांची (झारखंड)
मो. 9955354365

डॉ. अहिल्या मिश्र

हिंदी साहित्य में महिला आत्मकथा लेखन

भारतीय संस्कृति में मानव निर्माण के साथ दो जातियों का निर्माण हुआ। स्त्री एवं पुरुष। पूर्व में स्त्री, पुरुष के समान अधिकार युक्त थी। काल के गर्भ से प्रणीत सत्य धीरे-धीरे स्त्री को कई सारे बंधनों में बाँधता चला गया। भारतीय स्त्री जो उच्चतम संस्कृति की वाहक थी उसे पदच्युत कर दिया गया। खैर लंबे समय के इतिहास के सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में क्षरण के कई अध्याय सन्निहित हैं। मैं इसके विस्तार में नहीं जाकर मध्यकाल एवं परिवर्तित काल में स्त्री के स्थान में हुए निरंतर बदलाव एवं मानवी से इसके वस्तु या धन के रूप में परिवर्तित स्वरूप की ओर अपनी सोच को मोड़ती हूँ तो पाती हूँ कि एक-एक सीढ़ियाँ उतरते हुए स्त्री अपनी पूर्व स्थापित सत्ता खोने लगी। इस बीच बाह्य आक्रमणों एवं बल प्रयोग ने अपनी मान्यताओं एवं बर्बरताओं के कारण हमारी सांस्कृतिक विरासत को चोट पहुँचाई। हम घूँघट, पर्दा, धर्म (स्त्री धर्म) के रूप में मानने एवं अपनाने हेतु बाध्य हुए। हम कोमलता, ममता, एवं शारीरिक क्षमता के आधार पर मूल्यांकित किए जाने लगे। इससे हमारा आत्मविश्वास कम हुआ और हमारा साहस टूटा। हमारा शौर्य क्षतिग्रस्त हुआ। हम गुलामी एवं पराधीनता के ग्रास बनने लगे। हमारा जीवन, हमारे भरण-पोषण के अधिकारी पुरुष के हाथों में पहुँचा और अपने लिए किसी तरह के निर्णय के अधिकारी नहीं रहे। मात्र कठपुतली बन कर रह गये।

मनुस्मृति के अनुसार भाई, पिता या पुत्र के संरक्षण में वयनुरूप जीने के लिए स्त्रियाँ सीमाबद्ध की गईं। स्वाभाविक है इस पोंगापंथी विचारधारा में स्त्री का स्वतंत्र अस्तित्व कहाँ विकसित हो पाता। कोई भी स्त्री अपनी आत्मकथा कैसे लिख पाती। यह सोच भी उसके अंदर नहीं पनप सकता थी। वैदिक काल के पश्चात् पौराणिक युग कथा कहानियों का युग रहा है। कई स्त्रियों की गाथाएँ रची गईं। साहस की कथा गाथा लिखी गई। पंचकन्या से लेकर दुर्गा स्वरूप की कहानी बनी लेकिन यह औरों के द्वारा लिखी गई। कोई स्त्री संरचना या आत्मलेखन की ओर शायद ही प्रवृत्त हुई हो। सर्वप्रथम आधुनिक युग के आरंभ में कहीं यह विचारधारा पनपती नजर आती है। स्त्रियाँ बहुत बाद में अपनी आत्मकथा लेखन में रुचि दिखाने का साहस कर पाई हैं। पुरुष आत्मकथा लेखन की भरमार के बीच स्त्री आत्मकथा लेखन का स्रोत कहीं दूर तक दिखाई नहीं देता है। बहुत खोज के बाद मुझे जानकी बजाज द्वारा लिखित 'मेरी जीवन यात्रा' (सन् 1956) के रूप में पहली स्त्री आत्मकथा के दर्शन हुए। वर्षों से कैद और सहिष्णुता पूर्वक जीवन जीने वाली स्त्रियाँ कलम पकड़ने के पश्चात् भी अपनी आत्मकथा लिखने से परहेज करती रहीं कि उनके मिजाज का निजत्व इस लेखन से सार्वजनिक हो जाएगा। इससे उन्हें पारिवारिक एवं सामाजिक क्षति उठानी पड़ेगी। धीरे-धीरे पुरानी मान्यताएँ टूटती गईं। नए सामाजिक मूल्यों एवं मान्यताओं का निर्माण

हुआ। इससे साहस सँजोकर स्त्रियों के द्वारा आत्मकथा लेखन आरंभ हुआ और असूर्यपश्या सात-सात अवगुणों से आबद्ध, चूल्हे-चौके के संग दुख-सुख का बंधन बाँधने वाली, पति की मृत्यु पर सती हो जाने वाली, भीरू स्त्री इस परिवर्तित मूल्य बोध के प्रति जागरूक हुई और आधुनिक काल में अपने जीवन के संघर्ष को चित्रित करने लगी। मान्यताओं के टूटने पर महिलाएँ अपने अधिकारों के प्रति सजग होने लगीं। समाज की रूढ़िवादी मान्यताओं, रीति-रिवाजों और परंपराओं के बंधन से निकलने के लिए छटपटाहट बढ़ी। इन्होंने कलम को हथियार बनाया। बहुत सारी स्त्रियाँ कई क्षेत्र में कलम चलाने लगीं।

अपने आत्मसंघर्ष को अपनी आत्मकथा में चित्रित करना भी आरंभ किया। मराठी, पंजाबी, बंगला आदि भारतीय भाषा में लिखित आत्मकथाओं से प्रभावित होकर हिंदी की लेखिकाएँ भी आत्मकथा लेखन में प्रवृत्त हुईं। इस प्रकार आत्मकथा लेखन में कौशल्या बैसंत्री 'दोहरा अभिशाप' (1999), मैत्रेई पुष्पा 'कंस्तूरी कुंडलि बसै' (2002) एवं 'गुड़िया भीतर गुड़िया' (2008), प्रभा खेतान 'अन्या से अनन्या' (2007), रमणिका गुप्ता 'हादसे' (2005), सुशीला राय 'एक अनपढ़ कहानी' (2005), अनीता राकेश 'सतरें और सतरें' (2002), मन्नू भंडारी 'एक कहानी यह भी' (200।), कृष्णा अग्निहोत्री 'लगता नहीं है दिल मेरा' (2010) एवं 'और.. और.. औरत' (2011), सुशीला टाकभौरे 'शिकंजे का दर्द' (2011), 'मेरी कलम मेरी कहानी' (2014), अमृता प्रीतम 'रसीदी टिकट', शिवानी कृत 'सुनहु तात यह गत मोरी', पद्मा सचदेव कृत 'बूँद बावरी', चंद्रकिरण सौनरेक्सा कृत 'पिंजरे की मैना', रमणिका गुप्ता कृत 'आपहुदरी', निर्मला जैन कृत 'जमाने से' आदि आत्मकथाओं के माध्यम से महिलाओं ने अपनी करुणा व्यथा मानसिक घुटन एवं संघर्ष आदि को व्यक्त किया है।

इसी कड़ी में डॉ. अहिल्या मिश्र कृत 'दरकती दीवारों से झाँकती जिंदगी' सन 2021 में प्रकाशित हुई है। उपरोक्त उल्लेखित सभी नाम की आत्मकथा लेखिकाओं ने आत्म संघर्ष को पाठकों के समक्ष रखा है तो दूसरी ओर अन्य महिलाओं की जो समाज में अत्याचारों को सहकर भी चुप रहती हैं, अस्मिता को जगाती हैं, अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करती हैं। मेरी स्वयं की आत्मकथा के साथ एक बात लीक से हटकर हुई है कि यह अपने में औपन्यासिक तत्व को समाहृत किए हुए है। इसमें आत्मकथा के प्रमुख तत्वों के साथ उपन्यास के सभी तत्व भी समाहृत हैं। लेखिका का बचपन, गाँव, सामाजिक जीवन, पारिवारिक परिवेश एवं संघर्ष से शक्ति प्राप्ति अंकित है। जीवन के सुख-दुख, विकास की दिशा में बढ़ते कदम पारंपरिक स्त्री संघर्ष, विरोध के स्वर, पिता-पुत्र-पति के साथ तारतम्य, उनका योगदान तथा बदलते परिवेश के साथ किए गए समझौतों का सत्य एवं तथ्यपरक चिंतन उकेरा गया है। वास्तव में आत्मकथा लेखन स्वयं के भीतर छिपे अदृश्य संसार को अपने संपूर्ण व्यक्तित्व के साथ उससे जुड़े समाज, सांस्कृतिक परिवेश सहित वस्तुनिष्ठ रूप से पूरी ईमानदारी के साथ पाठकों के समक्ष उद्घाटित करने की एक साहित्यिक विधा है।

भारतीय समाज पितृसत्तात्मक समाज एवं पुरुष वर्चस्ववादी रहा है। तदानुसार ही इसकी सामाजिक संहिताएँ निर्मित हैं। महिला कथाकारों के अनुसार पुरुष वर्ग को हमारे सभी धर्म ग्रंथों में अपने पूर्ण स्वतंत्रता एवं सुविधानुरूप जीवन व्यतीत करने की आजादी प्रदान की गई है, वहीं स्त्रियों को पुरुषों के आदेशानुसार उनके प्रति पूर्ण समर्पण कर परतंत्रता की भावना को आत्मसात करते हुए जीवन यापन का

निर्देश दिया गया है। इन नियमों के पालन हेतु स्त्रियों को बचपन से ही सहनशील होने की शिक्षा दी जाती है। इसके साथ ही उसे मानसिक रूप से पुरुषों द्वारा प्रत्येक शोषण को अपना भाग्य मानकर स्वीकारने तथा बिना शिकायत किए हुए जीने की सीख दी जाती है। यह तथ्य है जिसके कारण महिला सर्जनकारों में आत्मकथा लेखन में संकोच बना रहा। 20वीं सदी में तो कोई लेखन हुआ नहीं। स्वतंत्रता पश्चात् भारत में केवल राजनैतिक स्तर पर ही नहीं सामाजिक सांस्कृतिक स्तर पर भी विस्तृत रूप से बदलाव की आँधी चली। आधुनिक शिक्षायुक्त समाज का एक बड़ा वर्ग विशेष रूप से युवा वर्ग ने सदियों से प्रचलित सड़ी-गली मानसिकता के जर्जर नियम तथा रूढ़ियों के विरुद्ध अपनी लेखनी चलायी। इससे दबे-कुचले वर्ग को वाणी मिली तथा इसका साहित्य पर भी प्रभाव पड़ा। एक व्यापक स्तर पर महिला लेखिकाओं द्वारा सामाजिक वर्जनाओं को अनदेखा कर बिना किसी लाग लपेट के आपबीती को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने की पहल एक सामाजिक क्रांति के रूप में साहसिक पहल थी। इसके माध्यम से समाज, संस्कृति तथा धर्म के नाम पर किए जाने वाले अत्याचारों का पर्दाफाश तो हुआ ही साथ ही सुसंस्कृत कहे जाने वाले लोगों के चेहरे से मुखौटा भी उतरा। निम्न वर्ग में व्याप्त रिश्तों का दुरुपयोग तो अशिक्षा के कारण बाहर आ जाता था। किन्तु मध्यम वर्गीय तथा उच्च वर्गीय समाज अपने आप में सीमित रहने के कारण ढक-तोपकर आगे बढ़ जाता है। स्त्रियों ने पूर्ण साहस से सत्य को उद्घाटित किया।

21वीं शताब्दी के आरंभ में स्त्री विमर्श साहित्य के केंद्र में रहा तथा इसका प्रभाव साहित्य की एक विधा पर दृष्टिगत हुआ। विशेषत: आत्मकथा लेखन पर। साहित्य की प्रत्येक विधा के साथ इस गहन विमर्श ने स्त्रियों को स्वयं की पहचान करवाई। समाज में उनके होने एवं अपने अस्तित्व से परिचित करवाया। पूर्व में स्त्री केवल माँ, पत्नी, बेटी, भाभी, मौसी, चाची आदि संबोधनों से जानी जाती रही है। सिमोन द बोउआर की पुस्तक 'द सेकेंड सेक्स' का उल्लेख यहाँ उचित होगा कि 'औरत पैदा नहीं होती बना दी जाती है।' उसे दोयम दर्जे का माना जाता है। आधुनिक शिक्षा से पूरित आत्मनिर्भर स्त्रियों ने इन तथ्यों को गहनता पूर्वक समझा। अपनी आवाज बुलंद करने का साहस दिखाते हुए भोगे हुए यथार्थ का उसकी समूची पृष्ठभूमि एवं उत्तरदायी कारणों (सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं मनोवैज्ञानिक) को ईमानदारी तथा तटस्थता सहित पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया। मन्नू भंडारी, मैत्रेयी पुष्पा, प्रभा खेतान, प्रो. निर्मला जैन, शीला झुनझुनवाला, अजीत कौर, रमणिका गुप्ता, कृष्णा अग्निहोत्री, कौशल्या बैसंत्री, चंद्रकिरण सौनरेक्सा, डॉ. अहिल्या मिश्र आदि कुछ ऐसी लेखिका हैं जिनकी आत्मकथा में उपरोक्त तथ्यों के साथ-साथ नारी अस्मिता निज से वाद-विवाद, यौन शुचिता आदि प्रश्नों पर गहन विवेचन-विश्लेषण प्राप्त होता है।

विवेच्य लेखिकाओं की आत्मकथा में चित्रित नारी जीवन में पर्याप्त भिन्नता पाई गई है। स्वाभाविक है कि उनके जीवन का विभिन्न सांस्कृतिक, सामाजिक परिवेश से संबंध है। कुछ का जन्म ग्रामीण परिवेश में तो कुछ का जन्म कस्बों में तथा कुछ का महानगरों में हुआ। संबंधित परिवेश की विविधता एवं इससे संबंधित प्रभाव जीवन एवं लेखन में परिलक्षित होता है। साथ ही कुछ लेखिकाओं की आत्मकथा में पाश्चात्य संस्कृति एवं सभ्यता का भी ब्यौरा मिलता है। यह उनकी विदेश यात्राओं का प्रभाव है। निर्विवाद सत्य है कि सामाजिक आचार-विचार के साथ प्रत्येक देश, राज्य तथा क्षेत्र विशेष की अपनी एक विशिष्ट

संस्कृति होती है जो उसकी पहचान होती है एवं वही समाज उससे जुड़ी संस्कृति के साथ व्यक्ति के जीवन को प्रभावित तो करता ही है साथ ही उसकी मानसिकता को भी गहन रूप से प्रभावित करता है। सामाजिक तथ्यों के साथ उपरोक्त लेखिकाओं की आत्मकथा में एक तथ्य विशेष रूप से उभर कर सामने आया है- नारी शोषण। नारी अपनी बाल्यावस्था में हो, किशोरावस्था में हो, युवावस्था में हो, अधेड़ावास्था में हो या वृद्धावस्था में, पुरुष सत्तात्मक समाज हर स्थिति में उसके विविध आयामों में उसे शोषित करता रहता है। शारीरिक स्तर से लेकर मानसिक एवं भावनात्मक रूप से शोषण प्रमुख है।

उपरोक्त लेखिकाओं की आत्मकथाओं में नारियों के शोषण के दोनों रूप शारीरिक एवं मानसिक शोषण के साथ भावनात्मक शोषण का भी अति सूक्ष्मता पूर्वक चित्रण हुआ है। ऐसे शोषण का शारीरिक कोई लक्षण दिखाई नहीं देता है किंतु मन मस्तिष्क पर इसका गहन प्रभाव पड़ता है। मन्नू भंडारी की आत्मकथा 'एक कहानी ऐसी भी' इसका जीवंत एवं साक्षात् उदाहरण है। सुप्रसिद्ध लेखक स्व. राजेंद्र यादव से उनका प्रेम विवाह असफल सिद्ध हुआ। अपने पति से उन्हें जीवन पर्यंत बेवफाई, तिरस्कार तथा अवहेलना मिली। प्रेम विवाह एक खोखला विवाह संस्कार बन गया। प्रेम हवा-हवाई होकर मात्र विवाह शेष रह गया था। दाम्पत्य जीवन के आरम्भ में ही उन्हें 'समानांतर जीवन का सूत्र' सिखा दिया गया। यानी कि छत एक ही होगी परंतु दोनों के अधिकार के क्षेत्र अलग-अलग होंगे। मन्नू लिखती हैं- 'प्रथम रात्रि को राजेंद्र जब मेरे पास आए तो उनकी रगों में लहू नहीं अपने किए का अपराध बोध था... बिलकुल ठंडे और निरुत्साहित। और फिर यह ठंडापन हमारे सम्बंधों के बीच स्थायी बनकर जम गया।'

मन्नू जी पैंतीस वर्षों तक इस निर्जीव रिश्ते को ढोती रहीं। निरंतर तनाव ग्रस्त रहने के कारण उन्हें न्यूरोलॉजिया के दर्दनाक दौड़े पड़ने लगे। ऐसी स्थिति में भी राजेंद्र यादव ने उनकी दर्द और तकलीफ को अनदेखा कर अपने मित्र एवं उसकी पत्नी के साथ एक गोष्ठी में जहाँ मन्नू जी भी आमंत्रित थीं, जाने का कार्यक्रम बना लिया। उनकी असम्वेदनशीलता को उजागर करते हुए मन्नू जी लिखती हैं कि राजेंद्र जी उनसे कहने लगे 'मन्नू नहीं जा रही हैं तो क्या हुआ। मैं तो हूँ, देखिए तो क्या मौज करवाता हूँ.. और खूब मस्ती मारेंगे.. आप अपना कार्यक्रम बिलकुल कैंसिल नहीं करेंगी। मेरे छटपटाते मन पर मौज करेंगे, मस्ती मारेंगे जैसे शब्द खुदते चल रहे थे। और उससे उपजी तकलीफ आँसुओं में बहती चली जा रही थी। मन्नू जी प्रेरणा प्रोत्साहन के अभाव में कहानी लिखती हैं। वह कहानी छप जाती है। तब लेखिका मन्नू भंडारी को अपना एक अलग अस्तित्व नजर आता है। 'महाभोज' और 'आपका बंटी' के लेखक से अपना अलग अस्तित्व का कर्म कर पाईं। इसी तरह की मानसिक त्रासदी से अजित कौर को भी दो चार होना पड़ा। एक सुशिक्षित पति जो कि पेशे से डॉ. है, उसका व्यवहार उनके प्रति असम्वेदनशील रहा है। अपने चरित्रहीन पति और ससुराल वालों को प्रसन्न करने का हर संभव प्रयत्न किया। किन्तु उनके व्यवहार में कोई अंतर नहीं आ पाया।

पति का घर त्यागने के पश्चात् कृष्णा अग्निहोत्री को महाविद्यालय में नौकरी मिली। वहाँ की महिला प्राचार्या उनकी नियुक्ति का आदेश देखते ही बोलीं- 'तुम यहाँ क्यों आई? तुम्हें और कोई जगह नहीं मिली? इसी में अभी भी तुम्हारी भलाई है कि किसी और जगह चली जाओ।'

इसी तरह 'पिंजरे की मैना' में चंद्रकिरण सोनरैक्सा सास द्वारा एक अल्पायु बालिका वधू के शोषण

को उद्घाटित करती हुई कहती हैं कि घर में बहू के आते ही सास ने उससे सौतेलेपन का व्यवहार शुरू कर दिया। मिसरानी छुड़ा दी गई। पाँच-छः व्यक्तियों का खाना वह बारह-तेरह वर्ष की बालिका बना लेती पर जो गाँव से समय-असमय आने वाले मेहमान थे, उनके लिए सेरों आटे की रोटियाँ सेंकना उसके लिए कठिन हो जाता था। एक अन्य स्थान पर चंद्रकिरण लिखती हैं कि उनके रिश्ते की एक बाल विधवा का पुनर्विवाह कराया गया। किन्तु उसके प्रति व्यवहार अति द्वेषपूर्ण रहा। वह हरदम उसे नीचा दिखाने के बहाने ढूँढ़ती रहती। यहाँ तक कि बच्चों से उनकी जासूसी करवाती। उन्हें स्कूल तक जाने नहीं देती। इसी संबंध में बच्चा अपने पिता से कहता है कि बाबूजी दादी ने मुझे चौकीदार बना दिया है, मैं स्कूल का नागा कब तक करूँगा। नई माँ दूध में पानी तो नहीं मिला रही है। मलाई छिपा कर तो नहीं रखती।' यहाँ यह सच सिद्ध होता है कि केवल पुरुष ही कटघरे में खड़े नहीं किये गये हैं। कई स्त्रियाँ भी इस घेरे में आती हैं। आत्मकथा के विभिन्न प्रसंगों के बीच रिश्तों का विरोधी स्वरूप एवं स्त्री का स्त्री के प्रति द्वेष भी सामने आता है।

मैत्रेयी पुष्पा अपने कॉलेज के समय की एक घटना स्मरण करती हुई बताती हैं कि 'गरीब एवं गाँव से संबंधित होने के कारण कॉलेज में पढ़ने वाली अमीर घराने की लड़कियाँ उन्हें नीचा दिखाकर उनका आत्मविश्वास तोड़ने एवं दुख पहुँचाने के बहाने ढूँढ़ती थीं। एक दिन तो उन लोगों ने एक बेहद शर्मनाक घटना रच दी कि मैत्रेयी को अपने लड़की होने पर शर्म हुआ साथ ही रोना आया। वे रोती हुई उस कुर्सी के पास ठहर गईं जहाँ से ये दाग लगे थे। किसी क्रूर लड़की ने कुर्सी पर लाल रंग ही उड़ेल कर लड़की होने का मजाक उड़ाया था'- कस्तूरी कुंडल बसै- मैत्रेयी पुष्पा।

कस्तूरी मैत्रेयी जी की माँ का नाम है। वास्तव में 'कस्तूरी कुंडल बसै' आत्म कथा उन्हीं के संघर्षों का लेखा-जोखा है। कस्तूरी के पति का देहांत होने के बाद एक बाल विधवा द्वारा गोदी की बच्ची को पालना पहाड़ पर चढ़ने के समान था। समाज में पुरुषों की नजर से अपने को बचाते हुए तथा बच्ची की रक्षा करते हुए, उसे शिक्षित करते हुए आत्म निर्भर बनाने के लिए किए जानेवाले प्रयास एवं संघर्ष की एक लम्बी शृंखला है जो कभी न खत्म होने वाले रास्ते पर जाती है।

कस्तूरी ने छोटी उम्र में जो दुःख झेले, जीवन की कठिनतम परिस्थितियों ने उन्हें लड़ना सिखा दिया। उनका कथन है कि एक नारी तभी सम्मान प्राप्त करती है जब वह शिक्षित एवं आत्मनिर्भर हो। लेखिका का मानना है कि नारी का पढ़ा-लिखा होने के साथ-साथ गृहस्थ जीवन में संतुलन भी बनाना आना चाहिए। उसमें आत्म निर्भरता भी होना चाहिए जिसके आधार पर जीवन का निर्णय वह स्वयं ले सके। इनका मानना है कि पारिवारिक जीवन में जिम्मदारियों को निभाते हुए विकास करना ही जीवन की सफलता है। मनमानी करना नहीं।

मैत्रेयी जी ने अपने दूसरे उपन्यास 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में अपने संपूर्ण जीवन को खोलकर इसके सभी पन्नों पर फैला दिया है। अलीगढ़ की भंटी बहू से लेकर मिसेज शर्मा से होते हुए मैत्रेयी पुष्पा बनने तक की कहानी है यह आत्मकथा। विवाह के पच्चीस वर्ष बाद लेखिका की पहली कहानी 'आक्षेप' साप्ताहिक में छपी तो मिसेज शर्मा से पूर्व मैत्रेयी पुष्पा का नाम पुनः सूर्य की भाँति चमकने लगा। फिर शुरू हुआ लेखिका का लेखन संघर्ष एवं अस्तित्व की तलाश। मैत्रेयी जी ने आत्मकथा में स्पष्ट किया कि चाक,

अल्मा कबूतरी, अगन पक्षी, इदन्नमम जैसे उपन्यास क्यों लिखे। 'कही ईसुरी फाग' लिखने की आवश्यकता क्यों महसूस हुई। लेखिका के अनुसार 'विवाह स्त्री की सुरक्षा का गढ़, संरक्षण का किला, शांति के नाम पर निश्चिंतता की सन्नाटे भरी गुफा और गुलामी का आनंद।' लेखिका को पति सत्ता के किले में रहते हुए अपना लेखन कार्य छिपा कर करना पड़ता है। अस्तित्व की इस लड़ाई की खोज में पारिवारिक कलह के समक्ष अडिग, अपने स्वत्व की खोज में लेखिका मानती है कि स्त्रियों का जन्म एक ऐसे पौधे के रूप में होता है जिन्हें हिलाने-डुलाने और विकसित करने के लिए हवा जरूरी है। लेकिन हमारे माली बने लोग कहते हैं, बौनसाई रहा करते नहीं तो बढ़कर अपनी खूबसूरती खो देते हैं।' लेखिका के अनुरूप भारतीय समाज में गृहस्थों के संस्कार जन्म से लेकर मृत्यु व पिंडदान तक पुत्रों से बँधा होता है। तीन पुत्रियों की माँ बनने के साथ अपमान एवं सन्नाटा का हृदय विदारक वर्णन लेखिका ने किया है।

रमणिका गुप्ता की आत्मकथा कोयला खदानों, राजनीति तथा सड़क पर मजदूरी करने वाली स्त्रियों की दैहिक तथा मानसिक शोषण को उजागर करती है। निर्मला जैन की आत्मकथा पढ़े-लिखे लोगों की सामाजिक विडंबना को सबके सामने लाती है साथ ही शिक्षण संस्थानों में चल रहे शिक्षकों एवं प्रशासन के आपसी घात-प्रतिघात से पाठक को रूबरू करवाती है। एक उच्च शिक्षा प्राप्त स्वावलंबी स्त्री होने के उपरांत भी जीवन में गुटबाजी एवं घटिया राजनीति के कारण चारित्रिक लांछन का सामना करना पड़ता है। उनके चरित्रहरण का प्रयास किया जाता है। तब उन्हें तत्कालीन कुलपति से सहायता हेतु प्रार्थना करती करनी पड़ती है। उन्हीं के शब्दों में- 'भर्राई आवाज में इतना ही कह पाई, मुनीस भाई मेरी इज्जत बचाने के लिए आप क्या कर सकते हैं।' कहते हुए मेरी आँखें भर आईं।

मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा में स्त्रियों पर होने वाले यौन शोषण के कई उदाहरण मिलते हैं। बचपन में उसकी विधवा माता ग्राम सेविका की नौकरी के चलते उन्हें अपने पास न रखकर परिचित तथा संभ्रांत परिवारों में रखती हैं। उद्देश्य होता है कि वह वहाँ रहकर सुरक्षित रहेगी एवं शिक्षा प्राप्त कर सकेगी। किंतु उसका विश्वास तब खंडित होता है जब मैत्रेयी उन्हें अपनी आपबीती मर्मांतक शब्दों में लिखती है- 'माता जी, वह मुझे रात भर सोने नहीं देता...मैं यहाँ नहीं रहूँगी। गाँव भाग जाऊँगी। शहर के लोग कैसे हैं।' इसके पश्चात् मैत्रेयी की माताजी उसे किसी दूसरे घर में रखती हैं। वहाँ इस घर का वृद्ध व्यक्ति उससे बलात्कार का प्रयास करता है किंतु उसके विरोध में कहीं से कोई आवाज नहीं उठाई जाती है। वास्तव में ऐसे बहुत सारे लोग मनुष्य के रूप में छुपे हुए भेड़िए हैं जो दोमुहा जीवन जीते हैं। बाह्य रूप से यह सभ्य तथा आदर्शवादिता स्वर निकालते हैं किंतु वास्तविक रूप से रक्षक ही भक्षक बनते हैं। बाल्यावस्था से ही शारीरिक शोषण का शिकार हुई रमणिका गुप्ता लिखती हैं कि उनका दैहिक शोषण बाहर वालों ने नहीं अपितु घर में रहने वालों ने तथा काम करने वालों ने किया। अभिजात्य परिवार में पली-बढ़ी रमणिका जी के माता-पिता अति व्यस्त जीवन जीते थे। बच्चों को नौकरों एवं अभिभावकों के सहारे छोड़ दिया गया। एक विश्वसनीय आर्य समाजी मास्टर को अपनी बेटियों की शिक्षा के लिए पिता ने रखा किंतु वही रामणिका का शील हरण करने लगा। उन्हीं के शब्दों में देखें- 'पापा जी और बीबी जी का कमरा अलग था। उन्हें मास्टर जी पर इतना विश्वास था कि देर रात तक उसे मेरे कमरे में रहने पर एतराज नहीं करते थे। मास्टर सारी रात मेरे कच्चे शरीर से खिलवाड़ करता रहा। मैं इतनी भयभीत थी न बोल सकती थी, न रो

सकती थी। मैं वही करती गई जो मास्टर कहता गया। फिर यह रोज का किस्सा हो गया।' प्रभा खेतान अन्या से अनन्या में लिखती हैं कि वे यहाँ 9 वर्ष की आयु में अपने ही घर में स्वयं अपने भाई द्वारा यौन शोषण का शिकार हुईं। विडंबना यह है कि दुष्कर्म कर्ता को सजा मिलने की जगह उन्हें ही चुप रहने की नसीहत दी गई। देखें उनके शब्दों में- 'जब मैं 9 साल की थी तब घर में... मैं एकदम चुप हो गई... उस दिन दाई माँ ने भी तो यही कहा था 'काहू से न कहियो बिटिया, अपने पति से भी नहीं।' पर क्यों? उत्पीड़न के बावजूद औरत को खामोश रहने को कहा जाता है।

पुरुषों द्वारा नारी को मात्र भोग्या समझने या सामग्री समझने की मानसिकता सदियों से चली आ रही है। जन्म से ही उसे लड़के की तुलना में हेय समझा जाता है। उसकी अवहेलना की जाती है। बेटे के जन्म पर खुशी, बेटी के जन्म पर दुख मात्र अनपढ़ लोगों का ही पूर्वाग्रह नहीं समाज का उच्च शिक्षित वर्ग भी इसी संकीर्ण मानसिकता का शिकार पाया जाता है। केवल पुरुष ही भारी शोषण के दोषी नहीं स्त्रियाँ भी उत्तरदायी होती हैं। कौशल्या बैसन्त्री अपनी माँ का उदाहरण देते हुए कहती हैं कि उन्हें बेटे का बड़ा शौक था। हर प्रसूति के समय पुत्र की लालसा रहती थी। संतान लड़की पैदा होने पर माँ बहुत उदास हो जाती। वे कहती थीं कि 'जाओ उसे कूड़े में फेंक आओ।' प्रभा खेतान लिखती हैं कि 'अम्मा ने मुझे कभी गोद में लेकर चूमा नहीं। मैं चुपचाप घंटों उनके कमरे के दरवाजे पर खड़ी रहती। शायद अम्मा जी मुझे भीतर बुला लें। शायद अपनी रजाई में सुला लें। मगर नहीं। एक शाश्वत दूरी बनी रही हम दोनों के बीच।' कौशल्या बैसंत्री ने भी अपनी माँ की कठोरता का वर्णन किया है। वे बात-बात पर बैसंत्री को पीटती थीं। एक बार तो इतना पीटा की पाँव का अँगूठा घायल हो गया और अस्पताल ले जाना पड़ा।

यहाँ निर्मला जैन के लेखकीय क्षेत्र के एक अनुभव के माध्यम से पुरुष सम्पादकों की मानसिकता का उदाहरण प्रस्तुत है। हंस के सम्पादक राजेंद्र यादव अपने अहं तुष्टि के लिए जाने जाते हैं। उनकी ऐसी हरकतों पर मन्नू जी से गाहे-बगाहे उनकी कहा-सुनी तो होती ही रहती थी। उन्होंने अपनी इन हरकतों से कई लोगों से नाराजगी मोल ले ली थी। डॉ. नगेंद्र उनमें से एक थे। नतीजा यह हुआ कि डॉ. साहब भी उन्हें नाम से नहीं, अपशब्दों से नवाजा करते थे।

ऐसे ही एक प्रसंग में, मैंने हंस में कभी न लिखने की प्रतिज्ञा की थी। हुआ यह कि एक बार मैं और जैनेंद्र जी एक सेमिनार के लिए जम्मू विश्वविद्यालय में आमंत्रित किए गए। साथ में जैनेंद्र जी के साहबजादे प्रदीप जी भी थे। उस यात्रा के दौरान दो-तीन दिन लगातार उनका साथ बना रहा। उस बीच मेरे मन में उनके बारे में यह धारणा और पुष्ट हो गई कि उनके व्यक्तित्व की बनावट खासी जटिल है जिसे समग्रता में समझना आसान नहीं होता।

वापिस लौटकर मैंने उस अनुभव से प्रेरित होकर एक लेख लिखा जिसका शीर्षक था- 'सिरा कहाँ है?' राजेंद्र यादव बड़े उत्साह से उसे छापने के लिए तैयार हो गए। लेख छप गया। मैंने देखा, पर पढ़ने की जहमत नहीं उठाई। अंक मिलने के दो-तीन दिन बाद अचानक राजी सेठ का फोन आया। लेख उन्होंने खुद तो पढ़ ही लिया था, मुझसे बात करने के पहले अज्ञेय जी को भी पढ़वा दिया था। अज्ञेय जी की प्रतिक्रिया हुई थी : 'ये तो कोई बहुत अच्छा काम नहीं किया निर्मला ने!' कुछ ऐसा ही महसूस किया था राजी ने भी। अज्ञेय जी से पुष्टि हो गई तो हिम्मत करके मुझे फोन मिलाया। शुरुआत कुछ इधर-उधर की

बातों से करके जैसे वे साहस जुटाती रहीं और फिर धीरे से बोली : आपका लेख पढ़ा 'हंस' में..' एक क्षण की चुप्पी के बाद जोड़ा उन्होंने : 'वैसे आपने हिम्मत बहुत की।' मेरा चौंकना स्वाभाविक था। 'ऐसी हिम्मत वाली क्या बात है उसमें।' मुझे जैसा लगा मैंने लिख दिया।' बात आगे बढ़ी : ' फिर भी हर कोई तो इस तरह लिखने का साहस नहीं कर सकता। अज्ञेय जी भी ताज्जुब कर रहे थे।' इस बार मेरा माथा ठनका। मैंने बात वहीं रोककर कहा कि 'मैंने तो छपने के बाद पढ़ा ही नहीं है। एक बार पढ़के देखती हूँ, फिर तुमसे बात करूँगी।' संवाद वहीं ठप्प।

मैंने तुरंत हंस की 'प्रति' उठाई। लेख पढ़ते ही मेरे पाँव के तले की जमीन खिसक गई। राजेंद्र जी ने दो-तीन जगह कलम चला कर उसे खासा कटखना और आपत्तिजनक बना दिया था। मैंने तुरंत फोन मिलाकर जवाबतलबी की तो ठहाका लगाकर बोले : 'अरे आपने क्या लिखा था, गुडी-गुडी मजा तो अब आएगा जब लोग पढ़ेंगे। इतना अधिकार तो सम्पादक का होता ही है।' मैं फट पड़ी : छापने या न छापने का अधिकार होता है। लेखक की बिना सहमति के कलम चलाकर तरमीम करने का नहीं। और जहाँ तक मजा आने का सवाल है, वह तो आना शुरू हो गया है। मेरी भर्त्सना शुरू हो गई है।' और मैंने उन्हें राजी अज्ञेय का प्रसंग सुना दिया। उनपर कोई असर नहीं हुआ इसका। वे उसी तरह ठहाका लगाते रहे। उनका खयाल था कि पत्रकारिता में यह सब तो होता ही रहता है। इसमें इतना परेशान होने की कोई बात है ही नहीं।

संयोग से उन्हीं दिनों जैनेंद्र अस्वस्थ होकर अस्पताल पहुँच गए। मेरी अगली चिंता यह थी कि बीमारी की हालत में अगर किसी शुभचिंतक ने यह बात उन तक पहुँचा दी या स्वस्थ होने पर उन्होंने 'हंस पढ़ लिया तो वे कितने आहत होंगे! मैंने अगला फोन प्रदीप को मिलाकर उन्हें इस कांड से अवगत कराते हुए अनुरोध किया कि वे हंस की प्रति जैनेंद्र जी के हाथ न आने दें। मैंने राजी को भी इस स्थिति की जानकारी देकर अनुरोध किया कि वे अज्ञेय जी को भी इस स्थिति से अवगत करा दें। जाहिर है अज्ञेय जी ने अपने मितभाषी स्वभाव के अनुरूप इतना ही कहा : 'तो फिर इसमें निर्मला का क्या कसूर है? पर राजेंद्र यादव को ऐसा करना नहीं चाहिए था।'

बात इतने पर खत्म नहीं हुई। मैंने राजेंद्र जी को इस प्रसंग पर एक लम्बा पत्र लिखा, यह इसरार करते हुए कि वे इसे 'हंस' में छापें, अन्यथा मैं पूरे ब्यौरे के साथ किसी और पत्रिका में छपवा दूँगी। पत्र की एक प्रति मैंने प्रदीप के पास भेज दी।

पत्र मिलते ही राजेंद्र जी के होश-फाख्ता हो गए। वे स्वप्न में भी ऐसी पत्रिका की उम्मीद नहीं कर पा रहे थे। अपनी सम्पादकीय दादागिरी भुलाकर उन्होंने मुझसे मिलकर बात करने का आग्रह किया। घर आए। देर तक मुझे इस बात के लिए कायल करने की कोशिश करते रहे कि मैं उस पत्र को छापने का इसरार न करूँ। जब तर्क-युक्ति से काम नहीं चला तो अपनी आदत के अनुरूप उन्होंने ठहाका लगाते हुए फरमाया : 'अरे यार बस भी करो! अब हो गई गलती, तो क्या जान ही ले लोगी! लो पकड़ लिए तुम्हारे पैर। अब तो बख्श दो। मैं अपने ढंग से छाप दूँगा। गलती का सुधार करते हुए' और यह कहते हुए उन्होंने सचमुच हाथ बढ़ाकर मेरे पाँव पकड़ लिये। जाहिर है, इसके बाद कहने-सुनने लायक कुछ बचा ही नहीं। मैंने भरोसा किया, पर उन्होंने वायदे की औपचारिकता पूर्ति में जो दो पंक्तियाँ छापीं, उनका कोई अर्थ नहीं

था। बस नतीजा यह हुआ कि मैंने 'हंस' में लिखना छोड़ दिया। (आत्मकथा पुस्तक से यह अंश उद्धृत किया गया है)

उपेक्षा का यह चक्र ही नहीं रुकता। जीवन पर्यंत गतिशील रहता है। हाँ रूप बदलते रहते हैं। नारी के शोषण-दमन के विरुद्ध सबसे सशक्त शस्त्र शिक्षा को ही माना गया है। शिक्षा ही वह शस्त्र है जिसके माध्यम से नारी स्वावलंबी, अपने अधिकारों के प्रति सजग तथा शोषण के विरुद्ध आवाज उठा सकती है। विवेच्य आत्मकथाओं के अनुशीलन के पश्चात् चौंका देने वाले तत्वों का उद्घाटन होता है। यह सारे तथ्य वास्तव में गहन विश्लेषण की माँग करते हैं। इन पर विमर्श आवश्यक है। प्रभा खेतान ने 'अन्या से अनन्या तक' अपनी आत्मकथा में अपने जीवन सत्य का कठोर सामाजिक एवं पारंपरिक वर्जनाओं के भीतर पली-बढ़ी एक साधारण सी लड़की अपने बल पर एक सफल उद्योगपति तथा कलकत्ता चेंबर ऑफ कॉमर्स की प्रथम महिला अध्यक्ष बनती है। आर्थिक रूप से एक सफल एवं सशक्त स्त्री होते हुए भी वह भावनात्मक स्तर पर कमजोर साबित होती हैं। अपने जीवन के एकाकीपन को दूर करने हेतु डॉ. सर्राफ के साथ तथा उनके परिवार के साथ 25 वर्षों के रिश्तों के पश्चात् इस बेनाम रिश्ते से वे मात्र तिरस्कार बटोर पाती हैं। वे लिखती हैं कि 'मैं अकेली थी। इतनी अकेली कि मैं किसी का रोल मॉडल नहीं बन सकी। कोई लड़की मेरे जैसी नहीं होना चाहिए। मेरी तमाम सफलताएँ सामाजिक कसौटी पर पछार खाने लगती हैं। सारी उपलब्धियाँ अपनी चमक खो देतीं...। जहाँ तनाव अधिक था कभी न खुलनेवाली गाँठें थीं। डॉक्टर सर्राफ पर उनकी निर्भरता आत्ममानसिक रुग्णता बनने लगी। इसे वह सुरक्षा स्वरूप लेने लगी। डॉक्टर सर्राफ प्रेमी से अभिभावक बन गए। आय, व्यय, बचत आदि का लेखा-जोखा बच्चों की तरह लेने और रखने लगे। किंतु इनको शक की नजरों से देखते हुए इनपर निगरानी भी रखने लगे। इस प्रकार वह स्वावलंबी होकर भी परावलंबी बनी रही। कृष्णा अग्निहोत्री की आत्मकथा से भी यह स्पष्ट होता है कि एक अच्छे परिवार की सुशिक्षित तथा आत्मनिर्भर नारी परायों के साथ-साथ अपनों द्वारा भी छली जाती है। उनका अपना भाई उन्हें पैतृक अधिकार से वंचित करता है। अपने चरित्रहीन आई पी एस पति द्वारा अमानवीय व्यवहार का शिकार बनती है। उच्च शिक्षा ग्रहण कर अपने पैरों पर खड़ी होने के पश्चात् कार्यस्थल पर तिरस्कृत होना पड़ता है। पति से अलग रहने तथा जवान व सुंदर होने के कारण उन्हें स्वच्छंद प्रवृत्ति का माना जाता है और चारों ओर उपस्थित पुरुषों को लगता है कि वे सहज उपलब्ध होने वाली स्त्री है। 60 वर्ष की आयु में गोवा के रोहिताश्व चतुर्वेदी को अपना उपन्यास प्रकाशन हेतु देना था। उसने उनके सामने गोवा आकर अकेले में मिलने का प्रस्ताव रखा- 'मेरी पत्नी यहाँ नहीं रहती है। गोवा में मैं बहुत अकेला हूँ। इस उम्र में हम कुछ कर तो नहीं सकते पर साथ तो चाहिए।' यह उन्हीं का लेखन है। यानी स्त्री मात्र देह और दर्शनीय वस्तु भर है। पुरुष अकेली स्त्री को देखकर सभी सीमाएँ लाँघने को उद्धृत हो उठता है। इसे उजागर किया गया है।

पुरुषों द्वारा नारी को मात्र भोग्या या भोग की वस्तु समझे जाने के विषय में कृष्णा जी कहती हैं कि 'सेक्स के अतिरिक्त भी स्त्री के सामने कई चुनौतियाँ रहती हैं। उसमें भी वह भागीदारी चाहती है। इसकी पूर्ति एक योग्य भाई, पति, बेटा या मित्र कर सकता है।' विवेच्य आत्मकथा में नारियों के शारीरिक शोषण के अलावा मानसिक शोषण का भी सूक्ष्मता पूर्वक चित्रण हुआ है। ऐसे शोषण का शरीर पर कोई चिह्न

नहीं होता है या दिखाई देता है किंतु मन मस्तिष्क पर यह प्रभाव पड़ता है। मन्नू भंडारी की आत्मकथा 'एक कहानी ऐसी भी' इसका जीवंत उदाहरण है। राजेंद्र यादव से परिवार के विरोध के बावजूद भी प्रेम विवाह एवं इसकी असफलता के कारण पति की बेवफाई, तिरस्कार एवं अवहेलना की प्राप्ति होती है। प्रेम विवाह मात्र खोखला संस्कार सिद्ध होता है। इसमें प्रेम कहीं नहीं रहता।

अजीत कौर को भी मानसिक त्रासदी से गुजरना पड़ा है। एक सुशिक्षित डॉक्टर पति का व्यवहार उनके प्रति अति असंवेदनशील रहा है। अपने चरित्रहीन पति तथा ससुराल वालों को प्रसन्न रखने का उन्होंने हर संभव प्रयास किया। किंतु उनके प्रति उनके व्यवहार में कोई अंतर नहीं आता। एक बार वे बहुत बीमार हो जाती है। अपने पति से कहती है कि 'मुझे संतरे ला दो या संतरे के लिए पैसे ही दे दो। डॉक्टर ने जूस पीने को कहा है।' बीमारी में उनसे सहानुभूति जताने के बजाय उनके पति ने कहा 'जा अपने बाप के घर अगर संतरे चाहिए तो।'

'पिंजरे की मैना' में चंद्रकिरण सोन रेक्सा सास द्वारा एक अल्पायु बालिका वधू के शोषण को उद्घाटित करती हैं। ऊपर संदर्भित स्थिति में एक बालिका पर ढाए जानेवाले जुर्म एवं मानसिक त्रासद का विशद विवरण देती हैं। इसी में आगे के विवेचन को भी देखा जाना चाहिए। ऐसे कई पंक्तियों के बीच वे एक स्थान पर वह कहती हैं कि एक बाल विधवा का विवाह या पुनर्विवाह रचा गया किंतु उसकी सास का उसके प्रति बहुत ही दोषपूर्ण व्यवहार रहा। वह हर दम उसे नीचा दिखाने का बहाना ढूँढ़ती रहती। यहाँ तक कि बच्चों द्वारा उसकी जासूसी करवाती। उन्हें स्कूल तक नहीं जाने देती। एक बच्चा अपने पिता से कहता है कि 'बाबूजी दादी ने मुझे चौकीदार बना दिया है।' इन पंक्तियों को दुबारा रखने में मेरा मकसद है कि स्त्री विमर्शों के इस भाव के द्वारा स्त्रियों के प्रति उपेक्षापूर्ण व्यवहार का उल्लेख लगभग सभी आत्मकथाकारों ने किया है। पारिवारिक क्लेश की बात करें तो सर्वप्रथम सास-बहू, ननद-भाभी, देवरानी-जेठानी के रिश्तों पर उंगली उठती है। दांपत्य जीवन में दरारें औरत ही डालती है। वैसे भी ससुराल मायके के बीच आधिपत्य का दंश भी बहू को ही झेलना पड़ता है। ससुराल में मैके से जुड़ी स्त्री को कई बार सास एवं अन्य रिश्तेदारों के ताने झेलने या सुनने पड़ते हैं। स्त्री का अपना कोई व्यक्तित्व गिना ही नहीं जाता। यह भी कुछ आत्मकथाओं में पढ़ने को मिला। इससे उनके कोमल मन पर एक अतिरिक्त दबाव बनता है और वह बेचैन हो उठती है।

21वीं सदी के उत्तरार्ध के पश्चात् उत्तर एवं पूर्वकालिक समय में एक आत्मकथा आई है। जिस पर पिछले कुछ समय से चर्चा चल रही है। डॉक्टर अहिल्या मिश्र कृत 'दरकती दीवारों से झाँकती जिंदगी'। यह आत्मकथा अभिव्यक्ति की सादगी, जीवन के प्रतिफल में जीया गया अनुभवों का खारापन सार्वजनिकता और उत्तर देने की ताकत एवं साहस सार्थक अर्थों को प्रतिपादित करने की क्षमता भावों की संप्रेषनियता के साथ मानवीय मूल्यों को जीने की ललक सहित विभिन्न स्तरों पर संघर्ष, सामाजिक मान्यताओं को तोड़कर नई स्थापना की शक्ति से लबालब, जीवंत एवं जोश से भरी आज की स्त्री का चित्रण है। परिवार, समाज एवं रिश्तों में बलिदान देने के बजाय रिश्तों की नई परिभाषा गढ़ना ही इस उत्साही स्त्री की कहानी है। स्त्री शोषण, जमींदारी प्रथा, सीमाओं का बंधन तोड़ते हुए विकास के रास्ते पर बढ़ना यही लक्ष्य है उस स्त्री का। वर्ग भेद एवं इनके सामाजिक आचरण के साथ स्त्री शिक्षा को सर्वोच्च

मान्यता देने वाली स्त्री की कहानी जीती एक स्त्री है। इस आत्मकथा में पितृसत्तात्मक समाज से उलझती अहिल्या संघर्षरत है। स्त्री स्वाभिमान हेतु संघर्ष के चरम भी दिखाई देता है। आत्मनिर्भरता का पाठ ही साहस एवं सफलता की कुंजी है। पति के साथ अनजान प्रदेश की यात्रा का साहस अदम्य है। पुनः साहित्यिक क्षेत्र में पुरुष वर्चस्व के बीच पहचान का संघर्ष एवं पुरुष साहित्यकारों की पिछलग्गू नहीं बनने पर उनके द्वारा दी गई संत्रास एवं दबाव को झेलने की क्षमता दिखाना आदि कई स्वरूप उभरकर सामने आए हैं। इस आत्मकथा के माध्यम से हम अहिल्या के मजबूत इरादे के साथ स्त्री उत्थान एवं दृढ़ता से सत्य कहने के साहस का संचार स्त्री के बीच फैलाते हुए पाते हैं। बहुत ही सकारात्मक भाव बनता दिखाई देता है। हाँ स्त्री का एक नया स्वरूप कहानी में दिखता है। भोजन बनाने की अक्षमता पुरुष सहयोग स्वसुर के रूप में तथा निडरता का व्यापक चित्रण मिलता है। एक वाक्य नारी के परिवर्तित मानसिकता का चित्रण करती है- 'खोल अपनी धोती ले अपनी साड़ी आज से तेरा-मेरा रिश्ता खत्म।' वह स्त्री इसके साथ ही मायका प्रस्थान कर जाती है। इस प्रकार शोषण के विरोधी स्वर एक स्तम्भ सा सामने खड़ा दिखाई पड़ता है। अभी इस आत्मकथा पर कई टिप्पणियाँ आ रही हैं। पाठक की रुचि बनी हुई है।

स्त्रियों द्वारा स्त्रियों के प्रति उपेक्षापूर्ण व्यवहार का उल्लेख प्रायः सभी आत्मकथाओं में उभर कर आया है। नारी जीवन का विविधा पूर्ण चित्रण करती विवेच्य लेखिकाओं की आत्मकथाओं में एक तथ्य समान रूप से दृष्टिगोचर होता है, वह है शोषण का प्रतिकार। देर अवश्य हुई किंतु अब आधुनिक समय की स्त्रियों ने यह दिखा दिया है कि वे अब शोषण नहीं सहेंगी। कौशल्या बैसंत्री ने 61 वर्ष की आयु में अपने पति को तलाक देकर जीना शुरू किया। कृष्णा अग्निहोत्री ने अपनी पुत्री सहित पति का घर त्याग दिया। अजीत कौर ने भी पति की अवहेलना के प्रतिउत्तर में अपनी दोनों बेटियों के साथ अलग जीवन जीने लगी। रमणिका गुप्ता अपनी शर्तों पर जीवन जीती रहीं। प्रभा खेतान विवाह संस्कार को खतरा बताते हुए अपने प्रेम को वरणकर जीवन जीती रहीं। निर्मला जैन भी राजनीति से उभर कर अपनी स्व पहचान बनाने में सक्षम रहीं। अहिल्या मिश्र अनजान स्थान पर अपने अस्मिता की स्थापना कर एक नई पहचान बना पाई हैं। उपरोक्त सभी आत्मकथाओं से गुजरते हुए यह स्पष्ट होता है कि पुरुष वर्चस्व की कैद में जकड़ी स्त्री अपने स्वत्व के लिए, अपने मान-सम्मान के लिए, अपने अंतर्मन के स्त्री को प्रबल, सबल करती है। एवं उनका आत्मविश्वास एवं साहस उसे आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है।

इस प्रकार हम पाते हैं कि 21वीं एवं 22 वीं सदी के आरंभिक दशकों में नारी आत्मकथाओं के बीच स्त्री के सफल एवं सशक्त रूप उभर कर एक नई स्थापना करने में सफल एवं सक्षम हुए हैं। ये सभी नारियाँ अपने अधिकारों के प्रति जागरूक एवं अपनी अस्मिता के लिए बड़ी चुनौती का सामना करने से नहीं हिचकिचाती हैं। सभी स्वतंत्रता, स्वावलम्बन आत्मनिर्भरता एवं नारी अस्मिता को शिक्षा के साथ अर्थायित करती हैं।

सम्पर्क : मो. 9849142803

डॉ. कुबेर कुमावत

हिंदीतर भाषियों का हिंदी प्रेम और प्रेम की हिंदी

जब मैं प्रेम की हिंदी इस विषय पर कुछ कहने या बताने का मन बना रहा हूँ तो मेरे मन में यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या कोई व्यक्ति किसी भाषा का अध्ययन और अध्यापन इसलिए करना चाहता है कि वह उस भाषा से मात्र प्रेम करता है? यह बात मैं अहिंदी भाषियों के हिंदी प्रेम के विषय में कर रहा हूँ। अच्छा, जब उन्हें हिंदी बोलना और लिखना आता ही है तो उन्हें अहिंदी भाषी कहना भी उचित नहीं है। उन्हें हम हिंदीतर भाषी लोग कह सकते हैं अर्थात् ऐसे लोग जिनकी हिंदी न तो मातृभाषा है और न ही स्थानीय या प्रांतीय भाषा। ऐसा केवल इस देश में हिंदी भाषा के विषय में देखने को मिलता है। इधर मैंने ऐसे अधिकांश लोगों को देखा है जो अपने आपको गर्व से हिंदी प्रेमी कहते हैं और इनमें हिंदी भाषा को लेकर आकर्षण या आत्मीयता असाधारण कोटि की है। उनमें हिंदी को लेकर राष्ट्रप्रेम और सेवा का भाव भी कूट-कूटकर भरा मिलता है। संभवत: ऐसे लोग आपको हिंदी भाषी प्रदेश में नहीं मिलेंगे। क्यों? यह सोचनेवाली बात है। ये सभी हिंदीतर भाषी हिंदी प्रेमी लोग वैसे हिंदी में कोई विशेष सृजनात्मक प्रतिभा से संपन्न नहीं हैं। संभवत: उन्हें हिंदी बोलने में ही अधिक आत्मीय सुख की अनुभूति होती हो। हिंदी की कुछ लोकप्रिय रचनाओं को पढ़कर और कविताओं-गीतों को कंटस्थ कर और गुनगुनाकर वे अपनी दुनिया में खोये रहते हैं। कुछ लोग इन रचनाओं से प्रभावित हो मामूली-सी तुकबंदियाँ करने में भी अभ्यस्त हो जाते हैं। हिंदी में कुछ आत्मकथ्यात्मक या विवेचनात्मक साधारण गद्य लिखने, पत्राचार करने की भूमिका में भी इन्हें देखा जा सकता हैं। विद्यालयों, महाविद्यालयों के हिंदी प्रेमी अध्यापकों को इस मामले में विशेष सक्रिय देखा जा सकता हैं। ये अध्यापक हिंदी के साहित्यकारों, उनकी कालजयी रचनाओं, हिंदी अध्यापन एवं लोगों से हिंदी में बातचीत आदि को लेकर हिंदीतर प्रदेशों में हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में यथाशक्ति विशेष योगदान देने में अब तक सहायक सिद्ध हुए हैं। इनकी इस कमजोर एवं टूटी-फूटी हिंदी को लेकर हिंदी भाषी हिंदी के विशेषज्ञ यह स्थापना कर सकते हैं कि हिंदीतर भाषी इन हिंदी प्रेमी लोगों को अच्छी या बेहतर हिंदी नहीं आती। पर क्या इस आधार पर इनके इस हिंदी प्रेम एवं हिंदी के प्रचार-प्रसार में दिए गए व्यक्तिगत योगदान को झुठलाया जा सकता है? इनमें से कुछ लोग केवल हिंदी शोधकार्य में भी संलग्न होते हैं। हिंदी के साहित्यकारों, उनकी रचनाओं तथा हिंदी प्रचार-प्रसार एवं प्रकाशन संस्थाओं के प्रति भी इनमें अद्भुत आकर्षण अनुभव किया जा सकता है। यह सब बातें हिंदीतर भाषी होने के कारण मेरे भीतर भी थीं और हैं। इस तरह हिंदीतर भाषी हिंदी प्रेमी या हिंदी सेवी लोगों की प्रातिनिधिक भूमिका में मैं अपने आपको रखकर यह सब कह रहा हूँ। यह हिंदी प्रेमी लोग अपने सामाजिक एवं शैक्षिक परिवेश में हिंदी बोलने की बड़ी जोखिम लेकर लोगों से हिंदी बोलने के आग्रह में प्रयत्नशील देखे जा सकते हैं। जोखिम इसलिए भी कि जहाँ वे अपने हिंदी प्रेम को लेकर उपेक्षा या तिरस्कार के शिकार होते हैं वहीं उनका प्रांतीय भाषाप्रेमी लोगों के द्वारा मजाक भी उड़ाया जाता है। पता नहीं हिंदी अध्यापकों को पंडित कहने का चलन कहाँ से शुरू हुआ? ऐसा तो कई बार मजाक में भी कहा जाता है। जैसे वे कोई

आधुनिक या प्रगतिशील विचारों के व्यक्ति न होकर पुराने, पिछड़े, पुरातनपंथी या परंपरावादी पोथी पढ़ने वाले लोग हों। हिंदीतर प्रदेशों के इन हिंदी प्रेमियों की अवस्था 'न घर का न घाट का' जैसी होती है। आप समझ रहे होंगे कि मैं क्या कहना चाह रहा हूँ। इनके इस हिंदी प्रेम को उन्नत प्रशिक्षणों एवं उत्तमोत्तम अवसरों के रूप में क्यों नहीं बदला जा सकता?

हिंदीतर भाषियों को हिंदी भाषा से प्रेम क्यों उत्पन हुआ? इसका उत्तर हिंदी भाषा की मधुरता, सरलता और उसके राष्ट्रीय संपर्क की भाषा होने की क्षमता में निहित है। अच्छा, वे हिंदी से प्रेम इसलिए भी नहीं करते कि हिंदी उन्हें सरलता से उत्तम रोजगार के अवसर प्रदान करती है? अहिंदी प्रदेशों के ये लोग हिंदी बोलने और लिखने के मामले में हिंदी प्रदेश के लोगों की तुलना में यद्यपि अधिक उन्नत नहीं कहे जा सकते हैं परंतु मधुर सत्य यह है कि इन्हीं के कन्धों पर सवार हुई हिंदी को राष्ट्रभाषा कहा जाता है। क्या यह एक मोटा अंतर्विरोध नहीं है? कहने का अभिप्राय यह है कि केवल हिंदी बोलनेवालों के बल पर हिंदी को राष्ट्रभाषा का स्थान प्राप्त हो जाना हिंदीतर भाषी, हिंदी समझने और बोलने वालों की एक बहुत बड़ी उपलब्धि तो कही जा सकती है। पर इसके आगे क्या? हिंदीतर भाषी हिंदी बोलने वालों को किसी ने हिंदी बोलने के लिए जबरदस्ती तो नहीं की न ही उन्हें किसी तरह के प्रलोभन दिए गए। अब यह जो इनका हिंदी प्रेम है, इसे कृत्रिम या नाटकीय प्रेम भी तो नहीं कहा जा सकता। क्या आप ऐसा कह सकते हैं कि भारत के लोग अंग्रेजी से या संस्कृत से प्रेम करते हैं?

भारत में यद्यपि संस्कृत का प्रचलन न के बराबर है और अंग्रेजी का प्रचलन काफी स्तरों पर होता है पर इसका अर्थ यह नहीं है कि लोग अंग्रेजी से प्रेम करते हैं और संस्कृत से घृणा। बावजूद इसके हिंदी के प्रति लोगों का प्रेम बढ़ा है और अंग्रेजी के प्रति सम्मान बढ़ा है। लेकिन यह सम्मान प्रेम पर हावी हो गया है या प्रेम से श्रेष्ठ हो गया है। अंग्रेजी भाषा के ज्ञान के बल पर लोगों को सरलता से ऊँची नौकरियाँ मिल जाती हैं इसलिए स्वाभाविक रूप से लोग अंग्रेजी पढ़ते हैं और वे सम्मानित दृष्टि से भी देखे जाते हैं। अंग्रेजी के प्रति यह सम्मानित दृष्टि समाज में इतनी व्यापक स्तर पर और गहराई तक फैली है कि बी.ए.अंग्रेजी में प्रवेश लेते ही छात्रों में एक विशेष प्रकार का श्रेष्ठताबोध उत्पन्न हो जाता है। विवाह करने के मामलों में तो लड़कियों का अंग्रेजी में बी.ए., एम.ए. होना अधिक प्रभावशाली मुद्दा बन जाता है। मेरा खुद का यह अनुभव रहा है कि हिंदी का प्राध्यापक होने के बावजूद भी विवाह के मामले में कुछ एम.ए. अंग्रेजी या विज्ञान में स्नातक लड़कियों के परिवारवालों ने मुझे कुछ हल्का रिश्ता समझा था। हिंदी में पढ़ने वालों को अपने सामाजिक-पारिवारिक परिवेश में भी कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इस तरह के कई मामलों में हिंदी प्रेमी अपनी व्यथा को प्रकट करने में भी हिचकते हैं। ठीक इसके विपरीत अंग्रेजी का दिखावटी माल आसानी से बाजार में अपनी स्थिति मजबूत कर लेता है।

यह सही है कि हिंदी में व्यापक स्तर पर रोजगार उपलब्ध नहीं हैं न ऊँचे वेतनोंवाली नौकरियाँ और फिर प्रतिष्ठा भी तो कोई चीज है न? ऐसी स्थिति में फिर भी कुछ लोग जो यदि हिंदी से प्यार करते हैं तो उनका यह हिंदी भाषा प्रेम आश्चर्यजनक है? कोई ऐसी चीज जो आपको न धन देती है और न प्रतिष्ठा तो क्या आप उससे प्रेम कर सकते हैं? लेकिन हिंदीतर प्रदेशों में ऐसे लोग आपको मिलेंगे। मुझे यह कहना है कि हिंदीतर प्रदेशों के इन हिंदी प्रेमी लोगों को अपनी प्रांतीय भाषा के होते हुए भी हिंदी पढ़ने और बोलने के प्रति आकर्षित करने वाली ऐसी कौन-सी चीज हिंदी में है? हिंदी के प्रति आकर्षित करने वाली यह शक्ति क्या उसके साहित्य में है? प्रकृति में है?

लिपि में है? या और किसी अन्य चीज में है। मैं यह हिंदी प्रेम की बात केवल हिंदीतर प्रदेश के बारे में कर रहा हूँ। हिंदी प्रदेश के बारे में नहीं। अपनी माँ से तो हर कोई प्रेम करता है। किसी दूसरे की माँ से कोई प्रेम क्यों करेगा? वह भी अपनी सगी माँ के होते हुए। लेकिन हिंदीतर प्रदेश के हिंदी प्रेमी लोगों की बात ही कुछ अलग है। परंतु दुर्भाग्य से यह प्रेम इन हिंदी प्रेमियों के निजी स्तर तक ही सीमित है। इसके आगे इसे ले जाने की कोई सक्षम पहल हुई हो ऐसा नजर नहीं आता। स्पष्ट ही यदि कहना हो तो मैं यह कहूँगा कि हिंदी भाषा को एक तो साहित्य की परिधि से बाहर निकलकर कुछ नयी भूमिका में आना होगा। दूसरी बात यह है कि उसे केवल संपर्क या बोलचाल के स्तर तक सीमित न होकर व्यापक राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा के माध्यम की भाषा के रूप में भी विकसित होना होगा या करना होगा। एक ऐसा राष्ट्रीय शिक्षा बोर्ड बनाना होगा जो हिंदी को बिना किसी भय या आशंका के शिक्षा के माध्यम की भाषा के रूप में एक सर्वमान्य स्वीकृति दिला सके।

दुर्भाग्य से अभी हिंदी वैसी नहीं बनी है जिसकी राष्ट्र को आवश्यकता है। जो हिंदी आज हम लिख, बोल और पढ़ रहे हैं वह हिंदी प्रदेश के प्रांतीय संस्कारों एवं साहित्य की छत्रछाया में विकसित है और उसकी प्रांतीय अस्मिता और उससे संबंधित शब्दावली और वाक्य-विन्यास से निर्मित प्रकृति उसे राष्ट्रीय बनने नहीं देती। प्रांतीय भाषाओं का अपनी-अपनी अस्मिता के लिए जागरूक होना भी स्वाभाविक है और फिर परिणामस्वरूप टकराव एवं संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है। प्रांतीय भाषा का यह असर वहाँ के हिंदी प्रेमियों के हिंदी बोलने पर स्पष्ट अनुभव होता है। वे हिंदी बोलते हैं और अपनी निजी भाषा या मातृभाषा की प्रकृति के अनुरूप बोलते हैं। मराठी, गुजराती, कन्नड़, तमिल, मलयालम, बांगला या पूर्वोत्तर के लोग हिंदी बोलते समय तुरंत पहचाने जा सकते हैं। ठीक वैसे ही जैसे हिंदी भाषी पहचान लिए जाते हैं। यह स्वाभाविक होने के साथ-साथ आवश्यक भी है। इधर कुछ हिंदीतर हिंदी प्रेमी अकारण हिंदी भाषियों की तरह हिंदी बोलने की नकल करते हैं जो कई बार हास्यास्पद बन जाती है। हिंदीतर भाषी हिंदी प्रेमियों का अपनी प्रांतीय भाषा की प्रकृति के अनुरूप हिंदी बोलने से यदि उनकी हिंदी बोलने की शुद्धता (हिंदी भाषियों की तरह) बाधित या प्रभावित हो जाती हैं तो इसमें आपत्तिजनक क्या हैं? संविधान के अनुच्छेद-351 में स्पष्ट कहा गया है कि आवश्यकता पड़ने पर हिंदी को प्रांतीय भाषाओं की प्रकृति में घुलमिल जाना है। हिंदीवाले इसे आपत्तिजनक मानते हैं।

हिंदी को राष्ट्र की सामासिक संस्कृति की वाहक भाषा रूप में जो विकसित करना है वह क्या है? हिंदी भाषी लोग हिंदी को अपनी तरह की क्यों बनाकर रखना चाहते हैं? ऐसी स्थिति में तो यह प्रतीत होगा कि वह हिंदीतर भाषियों पर थोपी जा रही है। इस तरह से हिंदी थोपने को क्या हिंदी भाषियों का हिंदी प्रेम कहा जा सकता है? बिलकुल नहीं। हिंदी को यह आग्रह नहीं रखना है कि मैं ऐसी ही हिंदी हूँ। ऐसी-वैसी नहीं। यानी प्रांतीय भाषाओं से अकड़ वाले संबंध रखने से हिंदी की राष्ट्रीय छवि को क्षति पहुँचेगी। प्रांतीय भाषाओं के जो लोग हिंदी से प्रेम करते हैं अर्थात् हिंदी सीखते हैं और बोलते हैं, उनकी इस निजी प्रकृति के अनुरूप ढली हिंदी को हिंदी भाषियों को स्वीकार करना होगा। वे हिंदी को लेकर लाभवाली दोहरी अस्पष्ट नीति पर चल नहीं सकते। जैसे की प्राय: अनुभव होता है। यह राष्ट्रीय एकता के संदर्भ में हिंदी को लेकर विशेष चिंता करनेवाली बात है। भला हिंदीतर भाषी प्रदेशों में शिक्षा का माध्यम और अन्य बातों के लिए हिंदी के विरोध के जो प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष कारण है इसकी समीक्षा कौन करेगा?और फिर इसके समाधान खोजने के भी तो प्रयास करने होंगे। सिर्फ कविता, कहानियाँ, उपन्यास आदि लिखकर या हिंदी साहित्य के विवेचनात्मक-

सूचनात्मक ज्ञान के बल पर महाविद्यालयों-विश्वविद्यालयों में नौकरियाँ प्राप्त करने से हिंदी की सेवा नहीं होगी। ऐसा यदि सौ साल तक भी चलता रहा तो भी हिंदी उसी स्थान पर रहेगी जहाँ पहले से थी।

देखिये, हिंदी प्रेम को लेकर जो कुछ मैं कर रहा हूँ उसे गंभीरता से लेना जरूरी है। मैं दावे के साथ कहता हूँ कि संविधान में हिंदी में राजकीय कामकाज में प्रयोग को लेकर जितने भी प्रावधान हैं, उनके कार्यान्वयन (इम्प्लीमेंटेशन) को लेकर नीति अस्पष्ट है। हिंदीतर भाषी राज्यों में हिंदी बोलने, लिखने और पढ़ानेवालों का जो एक बहुत बड़ा वर्ग है, वह हिंदी के प्रति कमाल का श्रद्धाभाव रखता है। परंतु वह यह समझ नहीं पाता कि अपने व्यावहारिक प्रयोग के स्तर पर हिंदी क्यों पिछड़ी हुई है? यद्यपि यह वर्ग हिंदी के संवैधानिक पक्ष से पर्याप्त अपरिचित नहीं है। इसकी जो हिंदी प्रेम की पहुँच है वह साहित्य तक ही सीमित है। हिंदी साहित्यकारों के प्रति कौतुहल से भरा यह वर्ग हिंदी की प्रचार एवं प्रसार की संस्थाएँ, हिंदी के अखिल भारतीय साहित्यिक संगठन, साहित्यिक परिषदों, साहित्यिक पत्रिकाओं और प्रकाशनों के प्रति विशेष रूप से प्रभावित एवं आकर्षित देखा जाता है। हिंदीतर प्रदेश में हिंदी के प्रति उनका यह उत्साह, प्रेम और आकर्षण उनकी एक अलग ही छवि बनाने में सहायक होता है और अपने कार्यस्थल पर उनकी अवहेलना एवं उपेक्षा का कारण बनता है।

केवल हिंदी दिवस के अवसर पर इन हिंदी प्रेमियों को कुछ सम्मानित दृष्टि से देखा जाता है। इन हिंदी प्रेमियों के लिए अखिल भारतीय स्तर पर विशेष उन्नति एवं प्रगति के कौन से अवसर एवं योजनाएँ कार्यान्वित हैं? इस बारे में हिंदी प्रदेश को सोचना होगा। इनका जो यह हिंदी प्रेम है, यह राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से क्या महत्त्वपूर्ण नहीं है? जब यह हिंदी से इतना प्रेम करते है तो हिंदी (हिंदी प्रदेश) का भी यह दायित्व बनता है कि इन्हें कुछ दे। अपने प्रदेश में रोजी-रोटी का एक छोटा-सा हिस्सा इन हिंदीतर हिंदी प्रेमियों को देने में क्या किसे आपत्ति हो सकती है? राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी में रोजगार की संभावनाएँ एवं अवसरों में वृद्धि कर उसमें उचित प्रतिनिधित्व हिंदीतर प्रदेशों के हिंदी विशेषज्ञों को भी मिलना चाहिए। परिणामस्वरूप हिंदीतर प्रदेश में बहुसंख्या में लोग हिंदी पढेंगे। आज हिंदी भाषा में प्राप्त विशेषज्ञता को लेकर कोई उत्तम भविष्य लोगों को नजर नहीं आता। उच्च स्तर पर हिंदी पढ़ने के लिए आनेवाले छात्रों से यदि आप पूछेंगे कि वे क्यों हिंदी में बी। ए. एम.ए. करने आ रहे हैं तो इसका कोई संतोषजनक और उम्दा जवाब उनके पास नहीं है। जब हम उन्हें वास्तविक रूप से हिंदी में पढ़ने के लाभों से अवगत करायेंगे कि जो वास्तव में है तो हिंदीतर प्रान्तों में हिंदी को लेकर विश्वसनीयता का वातावरण बनेगा जो नि:संदेह राष्ट्रीय एकता के विकास में भी सहायक होगा। हिंदी को राष्ट्रीय स्तर पर केवल 'प्रेम की हिंदी' ही नहीं बल्कि उत्तमोत्तम रोजगार प्रदान करनेवाली हिंदी के रूप में विकसित होना होगा जो केवल साहित्यिक लेखन और अध्यापन तक सीमित नहीं है। हिंदी यदि केवल साहित्यकारों, अध्यापकों, विद्वानों की भाषा बनकर रहेगी तो उसको कोई नहीं बचा सकेगा। हिंदीतर प्रदेशों में हिंदी से प्रेम करनेवाले एक दिन तड़प-तड़पकर खत्म हो जायेंगे। हिंदी को सर्वप्रथम देश की सामासिक संस्कृति की वाहक भाषा के रूप में सर्वमान्य बनाते हुए शिक्षा के माध्यम की भाषा के रूप में भी विकसित करने के प्रयास करने होंगे। इस काम में अखिल भारतीय स्तर पर जनता का सहयोग प्राप्त करना होगा तथा इस कार्य में हिंदी की कुछ अकादमिक संस्थाओं और अकादमिकों के हस्तक्षेपों से भी बचना होगा।

सम्पर्क : अमलनेर, जिला-जलगाँव (महाराष्ट्र)
मो. 9823660903

डॉ. राम वल्लभ आचार्य

मुक्ति का महायज्ञ

मुक्ति का महायज्ञ स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये किये गये संघर्ष का काव्यात्मक इतिवृत्त है जिसकी रचना मैंने स्वतंत्रता की स्वर्णजयन्ती के अवसर पर सन 1997 में आकाशवाणी से आधे घंटे की अवधि में संगीत रूपक के रूप में प्रसारण हेतु की थी। आकाशवाणी भोपाल में श्री सरवत हुसैन तथा श्री इन्द्रकुमार गुप्ता के संगीत निर्देशन में जिसे ध्वन्यांकित किया जाकर मध्यप्रदेश स्थित सभी केन्द्रों द्वारा 15 अगस्त 1998 को प्रसारित किया गया। साथ ही इसे मधुकली वृन्द के कलाकारों द्वारा श्री ओम प्रकाश चौरसिया के संगीत निर्देशन में वृन्द गायन के रूप में रवीन्द्र भवन भोपाल के मंच पर प्रस्तुत किया गया। बाद में इसकी ऑडियो सी.डी. जारी की गई तथा मनोज नायर के कोरियोग्राफी निर्देशन के माध्यम से देश के अनेक मंचों पर प्रस्तुत किया गया तथा दूरदर्शन द्वारा प्रसारित किया गया। प्रस्तुत है इसका मूल आलेख –

पहला वाचक स्वर–
कल सुबह की बात है मैं जा रहा था,
घूमता फिरता हुआ जब राजपथ पर।
रुक गया सहसा किसी की टेर सुनकर
कान में मेरे पड़े कातर विवश स्वर।

देखता था हर तरफ विस्मित नजर से
किंतु पड़ता था नहीं कोई दिखाई।
और जब चलता पुनः अपनी डगर पर
कान में फिर शब्द पड़ते थे सुनाई।

दूसरा वाचक स्वर –
ओ पथिक राजपथ के रुको तो जरा
किस डगर पर चरण तुम बढ़ाने लगे।
हम अँधेरों से लड़ते रहे उम्र भर
तुम उजालों की अर्थी सजाने लगे।

प्राण देकर किया था वरण मृत्यु का
ताकि तुम मुक्ति वधु का वरण कर सको।
खून दे अपना उपवन सँवारा था यह
ताकि समृद्धि पथ पर चरण धर सको।

पर कहाँ खो गये स्वप्न के वे सुमन
बढ़ गई बेल अन्याय अतिचार की।
द्वेष के गीत गाते भ्रमर अब यहाँ
ढूँढ़ता हूँ सुरभि मैं यहाँ प्यार की।

जब पराधीनता का घटाटोप था
मुक्ति की हम मशालें जलाते रहे।
क्रांति के दीप में प्राण बाती जला
तेल अपने लहू को बनाते रहे।

आजादी की शमा के बने हम शलभ
देश पर प्राण अपने लुटाते रहे।
आजादी की दुल्हन के दीवाने बने
गीत हम क्रांति के गुनगुनाते रहे।

गीत (समवेत स्वर)-
आजादी की शमा के हम परवाने हैं।
देश पे मरने वाले हम दीवाने हैं॥

सबसे सुंदर भारत वतन हमारा है।
हमको अपना देश प्राण से प्यारा है।
लबों पे अपने इसके पाक तराने हैं॥
आजादी की शमा के हम परवाने हैं॥

पोंछेंगे सिर से टीका बदनामी का।
मिटायेंगे दामन से दाग गुलामी का।
ठान लिया जो हमने, करके माने हैं॥
आजादी की शमा के हम परवाने हैं॥

तोड़ेंगे हम फिरंगियों के जाल को।
उलट के रख देंगे अंग्रेजी चाल को।
आजादी की दुल्हन के दीवाने हैं॥
आजादी की शमा के हम परवाने हैं॥

दूसरा वाचक स्वर-
लो सुनो यह कथा मुक्ति के यज्ञ की
जिसमें प्राणों की समिधा जलाई गई।
मुक्ति का यह समर तब ही पूरा हुआ
जब धरा यह लहू से नहाई गई।

गायक स्वर-
अट्ठारह सौ सत्तावन में
बनी योजना न्यारी थी।
कमल और रोटी प्रतीक थे
हुई क्रांति की तैयारी थी।
मंगल पांडे ने अंग्रेजी
अफसर को गोली मारी।
सुलग गई इस तरह देश में
स्वतंत्रता की चिंगारी।
तात्या टोपे, नाना साहब,
तुलाराम, लक्ष्मी बाई।
राजा कुँवर सिंह ने की
इस प्रथम क्रांति की अगुवाई।
बेगम हजरत महल,
बहादुर शाह जफर, टीपू सुल्तान।
अहमद शाह मौलवी, हैदर अली
हुए इस पर कुर्बान।
हो न सकी यह क्रान्ति सफल
फिर अंग्रेजों का आया राज।
दमन चक्र प्रारम्भ हो गया
पीड़ित होने लगा समाज।
अंग्रेजों के अत्याचारों का क्रम

बढ़ता जाता था।
भारतीय जनता के अंतर में
आक्रोश जगाता था।
जलियाँ वाले बाग़ में जब
डायर ने नर संहार किया।
बाँध सब्र का टूटा
जनता ने उसका प्रतिकार किया।
जनता की आवाज़ उठाने
कांग्रेस ने यत्न किया।
गाँधी जी ने असहयोग औ'
आंदोलन का मंत्र दिया।
जला विदेशी की होली
अपनाई खादी जन-जन ने।
गाते गीत स्वदेशी के
कूदी जनता आंदोलन में।

गीत (समवेत)-
विदेशी अब छोड़ो पहन चलो खादी।
चलाये चलो चरखा मिलेगी आजादी॥

सत्य अहिंसा का मन्त्र सिखाया।
सविनय अवज्ञा का मार्ग दिखाया।
स्वदेशी अपनाओ फिरा दी मुनादी॥
चलाये चलो चरखा मिलेगी आजादी॥

गाँधी जी के पथ पे चलेंगे।
सत्याग्रह आंदोलन करेंगे।
हारेंगे नहीं हिम्मत, हमारे नेता गाँधी॥
चलाये चलो चरखा मिलेगी आजादी॥

लाठी गोली हँस के सहेंगे।
अंग्रेजों की जेलें भरेंगे।
करेंगे आजादी की दुल्हन से शादी॥
चलाये चलो चरखा मिलेगी आजादी॥

गायक स्वर-
एक ओर बापू को सत्य
अहिंसा का ही संबल था।
किन्तु दूसरे देशभक्त वीरों को
विप्लव का बल था।
वन्दे मातरम् पत्र से
श्री अरविन्द ने किया क्रान्ति का नाद।
वारीन्द्र घोष, भूपेन्द्र नाथ ने
भी कर दी प्रारम्भ जिहाद।
दामोदर चाफेकर, सावरकर बंधु,
लाला हनुमंत।
रास बिहारी बोस, ढींगड़ा मदन लाल,
फड़के बलवन्त।
श्यामकृष्ण वर्मा, गणेश पिंगले,
अमीरचंद, अर्जुन लाल।
राजा महेन्द्र प्रताप, केसरी सिंह,
परमानन्द औ' हरदयाल।
ठाकुर राव, प्रतापसिंह
और बरकत उल्ला भोपाली।
स्वतंत्रता के यज्ञ में इनने भी
अपनी समिधा डाली।
खुदीराम, करतार और
ऊधमसिंह ने बलिदान दिये।
राजगुरु सुखदेव भगतसिंह ने
फाँसी पर प्राण दिये।
मन्मथनाथ, यशपाल,
शचीन्द्र सान्याल क्रांति सैनानी थे।
चन्द्रशेखर आजाद सरीखे
देशभक्त बलिदानी थे।
रोशनसिंह, अशफाक उल्ला,
राजेन्द्र लाहिड़ी और बिस्मिल।
झूल गये फाँसी के फंदे पर
हँसते-हँसते खुशदिल।

सिर पर बाँधे कफन
हथेली पर ले अपनी जान चले।
महाक्रान्ति के सैनानी
गाते विप्लव के गान चले।

गीत (समवेत)-
हम निकल पड़े हैं राहों में
आजादी का अरमान लिये।
सर्वस्व चढ़ाने माता को
हाथों में अपनी जान लिये॥

जिसने भारत माँ को लूटा
लूटा इसके बाशिन्दों को।
लूटेंगे जान लुटेरों की
छोड़ेंगे नहीं दरिन्दों को॥

ले शौर्य शिवाजी का मन में
राणा प्रताप की आन लिये।
सर्वस्व चढ़ाने माता को,
हाथों में अपनी जान लिये॥

सौगंध है मंगल पांडे की
सौगंध है रानी झाँसी की।
सौगंध हमें है राजगुरु
सुखदेव, भगत की फाँसी की।।
हर एक निशान मिटा देंगे
अंग्रेजों का, हम ठान लिये॥
सर्वस्व चढ़ाने माता को
हाथों में अपनी जान लिये॥

है कसम हमें जलियांवाले
उन बाँके वीर जवानों की।
कायर डायर के कुनबे से
कीमत लेंगे उन जानों की।
निकले हैं लाल किले पर हम
फहराने विजय निशान लिये॥
सर्वस्व चढ़ाने माता को
हाथों में अपनी जान लिये॥

गायक स्वर-
कहा तिलक ने-स्वतंत्रता है
जन्मसिद्ध मेरा अधिकार।
लेकर इसे रहूँगा चाहे
हों कितने ही अत्याचार।
लाला लाजपतराय,
राजगोपालाचारी, वल्लभ भाई।
मोतीलाल, जवाहर नेहरू,
राजेन्द्रप्रसाद औ' विट्ठल भाई।
मदनमोहन मालवीय,
सरोजिनी नायडू खान अब्दुल गफ्फार।
मौलाना आजाद सरीखे
थे कांग्रेसी सिपह सालार।
फिर कांग्रेस ने सविनय अवज्ञा
आंदोलन प्रारम्भ किया।
दांडी यात्रा कर बापू ने
नमक कानून को तोड़ दिया।
लाठी गोली मिली हजारों
महिलाओं मजदूरों को।
किन्तु मौत भी डिगा न पाई
भारत के उन शूरों को।
बंद कर दिये गये सींखचों में
जेलों की लाखों जन।
आखिर पारित हुआ देश में
भारत शासन अधिनियम।
कांग्रेस को मिली देश में
भारी विजय चुनावों में।

दिये न हक अंग्रेजों ने
उलझाया सिर्फ छलावों में।
तब अंग्रेजों भारत छोड़ो
गाँधी ने उद्घोष किया।
कांग्रेस ने व्यक्त देश के
जन-जन का आक्रोश किया।
राष्ट्र भक्ति का ज्वार उभरकर
गाँवों शहरों में आया।
सरकारी भवनों पर गया
तिरंगा झंडा फहराया।
इसे दबाने को अंग्रेजों ने
बर्बरता अपनाई।
घायल हुए हजारों
मौत हजारों लोगों को आई।
करो या मरो का नारा दे
बापू ने ललकारा था।
भारत की आजादी का
अंतिम संघर्ष हमारा था।

गीत (समवेत) -
ऐ फिरंगियों भारत छोड़ो
बापू की हुंकार है।
करो या मरो का प्रण लेकर
देश खड़ा तैयार है॥

बहुत गुलामी सही तुम्हारी
अब न गुलामी सहना है।
आजादी की जंग आखिरी है
यह इतना कहना है।
चोरी और सीनाजोरी की
फितरत अब बेकार है॥
करो या मरो का प्रण लेकर
देश खड़ा तैयार है॥

देश आज आजाद कराने
निकल पड़े दीवाने हैं।
आजादी की दीपशिखा के
ये पागल परवाने हैं।
अब न दबेगा उमड़ पड़ा जो
अंतरमन में ज्वार है॥
करो या मरो का प्रण लेकर
देश खड़ा तैयार है॥

अब न चलेगा राज तुम्हारा
भारत भूमि हमारी है।
जाओ अपने वतन लौटकर
इसमें खैर तुम्हारी है।
जनता के हाथों में सौंपो
जनता का अधिकार है॥
करो या मरो का प्रण लेकर
देश खड़ा तैयार है॥

गायक स्वर -
इधर अहिंसक सत्याग्रह था
उधर विप्लवी नारे थे।
किन्तु विदेशी भारतीय
कुछ रीति नवीन विचारे थे।
रास बिहारी बोस ने बुलवाया
नेताजी को जापान।
आजाद हिन्द फौज बनवायी
और सौंप दी उन्हें कमान।
'मुझे खून दो, मैं तुमको आजादी दूँगा'
कर आह्वान।
नेताजी सुभाष ने फूँके
आजाद हिन्द फौज में प्राण।
भारत माँ की खातिर
अपने प्राण निछावर करने को।

विकल हो रहे थे सैनिक सब
आजादी पर मरने को।
'दिल्ली चलो' जवानों को
नेताजी ने ललकारा था।
वीरों का आह्वान किया
देकर जय हिन्द का नारा था।

गीत (समवेत) -
बढ़े चलो जवान तुम
बढ़े चलो जवान तुम॥
तुम्हीं वतन की जान हो,
हो आन बान शान तुम॥

बढ़ो कि तुम गुलामी के
खिलाफ जंग छेड़ दो।
बढ़ो कि देश से
फिरंगियों को तुम खदेड़ दो।
दो जिंदगी का दान तुम॥
बढ़े चलो जवान तुम॥

बढ़ो कि माँ की हथकड़ी
औ' बेड़ियों को खोल दो।
बढ़ो कि आजादी के वास्ते
लहू का मोल दो।

हो मुक्ति का विहान तुम॥
बढ़े चलो जवान तुम॥

बढ़ो कि गुलामी के
हर निशान को उखाड़ दो।
बढ़ो कि लाल किले पर
तिरंगा आज गाड़ दो।
हो विजय का निशान तुम॥
बढ़े चलो जवान तुम॥

गायक स्वर -
कूच किया सेना ने
लाल किले पर परचम फहराने।
राँची में विद्रोह कर दिया?
जल और वायु सेना ने।
समझ लिया अंग्रेजों ने
अब राज न उनका चलना है।
आखिर कहना पड़ा कि
भारत को आजादी मिलना है।
भस्म हो गया महाक्रान्ति ज्वाला में
अंग्रेजी शासन।
आया मुक्ति विहान, पा लिया
भारत ने स्वराज्य का धन।
पन्द्रह अगस्त सन सैंतालिस को
आखिर भारत हुआ स्वतंत्र।
भारत की जनता को सौंपा
अंग्रेजों ने शासन तन्त्र।
लाल किले पर लगा फहरने
अमर तिरंगा विजय निशान।
सुना यही उद्घोष विश्व ने
अब स्वतन्त्र है हिन्दुस्तान।

वाचक स्वर -
सूर्य स्वाधीनता का उदित हो गया
हमने गणतंत्र घोषित किया देश को।
अपने श्रम सीकरों से सँवारा इसे
ताकि महका सकें अपने परिवेश को।

हमने उन्नति के पथ पर बढ़ाये क़दम
ज्ञान विज्ञान उद्योग में हम बढ़े।
केतु फहराया अंतरिक्ष में देश का
रत्न माँ भारती के मुकुट में जड़े।

पर बदलते समय ने बदलकर इसे
सहसा भटका दिया नीति की राह से।
सारे सिद्धान्त बलि चढ़ गये स्वार्थ की
त्याग ने हार मानी प्रबल चाह से।

विश्व बंधुत्व का मंत्र जग को दिया
और घर में दीवारें उठाते रहे।
नींव जनतंत्र की रख के क्या हो गया
तंत्र में रम गये जन भुलाते रहे।

दिन गुजरते हुए गुजरी आधी सदी
वक्त है-हम कहाँ हैं, ये चिंतन करें।
मुक्ति का सूर्य अब अस्त होवे नहीं
आओ मिलकर सभी आज यह प्रण करें॥

सम्पर्क : भोपाल (म.प्र.)
मो. 9826824874

दिनेश प्रभात

शब्द-शब्द में राम

गीत-गीत में, छंद-छंद में, शब्द-शब्द में राम
तुम भी गा लो, हम भी गा लें, पूरे चारों धाम

खूब सहज हैं, खूब सरल हैं
एक चाँद की तरह धवल हैं
मर्यादा का बसा हुआ है, पूरा-पूरा ग्राम
तुम भी गा लो, हम भी गा लें, पूरे चारों धाम

राज मिले, वनवास मिले...खुश
नीर मिले या प्यास मिले खुश
आदर्शों का पालन करना, केवल उनका काम
तुम भी गा लो, हम भी गा लें, पूरे चारों धाम

एक कुटी हैं, एक महल हैं
दल-दल में भी एक कमल हैं
सूर्य दिवस में, चाँद रात में, गति उनकी अविराम
तुम भी गा लो, हम भी गा लें, पूरे चारों धाम

उनसे दूर निषाद कहाँ है
उनके पास विषाद कहाँ है
शबरी उनके इंतज़ार में, रोज सुबह से शाम
तुम भी गा लो, हम भी गा लें, पूरे चारों धाम

खेत-खेत की दूर व्यथा है
बूँद-बूँद में राम-कथा है
जिसने 'राम' कहा है दिल से, पाँवों में परिणाम
तुम भी गा लो, हम भी गा लें, पूरे चारों धाम

केवट और...अहिल्या उनकी
खत्म घड़ी दु:ख के पाहुन की
और कहीं करना होगा अब, शापों को विश्राम
तुम भी गा लो, हम भी गा लें, पूरे चारों धाम

निशाचरों के... वेश कई हैं
दु:ख थोड़े हैं, क्लेश कई हैं
साथ तुम्हारे अगर राम हैं, छोटे हैं संग्राम
तुम भी गा लो, हम भी गा लें, पूरे चारों धाम

घर में 'सरयू',...घर में 'गंगा'
राम कृपा तो, सब कुछ चंगा
रोज लीजिए बस मर्यादा, पुरुषोत्तम का नाम
तुम भी गा लो, हम भी गा लें, पूरे चारों धाम।

सम्पर्क : भोपाल (म.प्र.)
मो. 9926340108

राजेश भंडारी 'बाबू'

हर घर तिरंगा

एक तपस्वी के सामने महामिलावट की दीवार थी,
चोरों, मक्कारों और घोटालेबाजों से तकरार थी।
तरह-तरह के फरेबी और षड्यन्त्रों का हमला था,
दुकानदारी बंद होने और पाकिस्तान का बदला था।
टोंटीचोर, घूसखोर, टेक्सचोर, और संत्री हावी थे,
अलगाववादी, जातिवादी लोग प्रधानमंत्री भावी थे।
चारों दिशाओं ने लोकतंत्र का अबकी रखा मान है,
एक स्वर में पूरे देश ने गाया वन्दे मातरम् गान है।
जातिवाद, वंशवाद और आतंकवाद पर तमाचा है,
लोगों ने खरी कसौटी पर देशभक्तों को जाँचा है।
लोकतंत्र के इस हवन से सोना बन कर निकला है,
तपस्वी जननायक लोकनायक बन कर निकला है।
थर्रा दिया है धरती को थर्रा दिया आसमान है,
पूरे विश्व में भारतीयों को निश्चित मिलना मान है।
आँखों में वो जोश जूनून हौसलों में फौलाद है,
अब लग रहा है जैसे मेरी भारत माँ आजाद है।
फौलादी हौसलों के आगे अमरीका मजबूर है,
विश्वगुरु बनने को भारत अब नहीं दिल्ली दूर है।
घर घर तिरंगा, हर-घर तिरंगा शान से लहराएगा,
अलगाववादियों की छाती पर साँप लोट जाएगा।
तिरंगे के सम्मान में सारा देश भरेगा जब हुंकार,
दहल जायेंगे दुश्मनों के दिल जो बैठे सीमा पार।
जो गद्दार बैठे हैं हमारी सीमाओं के भी अंदर,
छुप न सकेंगे और अब हो बहुरुपिए बनकर।
सुरक्षा एजेंसियाँ खोज लाएँगी उनको पाताल से,
कर न सकेंगे अब वो गुमराह किसी भी चाल से,
सारे लगाएँगे तिरंगा और नहीं अब लेंगे पंगा
हर घर तिरंगा भाई जी अब तो घर-घर तिरंगा।

सम्पर्क : मो. 9009502734

डॉ. वेद प्रकाश पाण्डे

आजादी का सफर

आजादी का सफर कठिन थी डगर
गाँव-नगर
साथ चले
हो तत्पर
एक-एक कर
आठ पहर

काला पानी
सजा पाने को
क्रांति वीर,
थे, तुले
वंदे मातरम् कहते
फाँसी के फंदे पर
वे, झूले
स्वतंत्रता संग्राम
का था, गगनभेदी स्वर

आज
जो, पिंगली वेंकैया का बनाया
तिरंगा, लहराया है
गोरों सी शान, चुर-चुन कर
गरम, नरम दल के बल पर
स्वतंत्रता ने भारत में
घर-घर अपना पाँव फैलाया है।
फिरंगियों से लड़कर, महासमर,
कमर कसकर, देशप्रेम का अन्त।
में भाव भरकर

भारत माँ

आओ, मिलकर
आदर से लें
भारत माँ का नाम
जिनकी खातिर गोरों से
किया गया संग्राम
लहू, पसीने से सींचा
वीरों ने फुलवारी को
और सजाया कश्मीर संग
केसर की क्यारी को
मातृ-भूमि का चप्पा-चप्पा
लगता तीरथ धाम
लौह पुरुष ने हमें सिखाया
संग-संग मिलकर रहना
आजादी ने राह दिखाई
कभी जंग से मत डरना
नदी, पहाड़ हर शांत सरोवर
भारत माँ के ललित ललाम
आओ मिलकर, आदर से लें,
भारत माँ का नाम।

भले, याद हो कि न याद हो

दुर्दिन में सब, जन, साथ थे
भले, याद हो कि न याद हो

बलिदानियों की बारात थी
न कोई जात थी, न कोई पाँत थी
क्या वक्त था, क्या बात थी
बस मौत ही सौगात थी
मन में एक संकल्प था, मेरा वतन आजाद हो

भले, याद हो कि न याद हो।

गाँधी, तिलक, लाल, पाल
उधम, भगत, करतार, बिस्मिल
अशफाक संग, आजाद सीधी, टोलियाँ
फाँसी के फंदे झूल कर बोली थीं,
भारत माँ की जय, जय, बोलियाँ
कर रही थी, हवा, दिशा-दिश
मेरे औलाद सब फौलाद हों।
भले याद हो कि न याद हो।

मन में भरा तूफान था
स्वतंत्रता, ईमान था
देश धर्म महान था
इंसान सब इंसान था
बस एक ही अरमान था
भले याद हो कि न याद हो।

प्रभात फेरियों का दौर था
लक्ष्य न कोई और था
दुर्गा भाभी का ठिकाना
क्रांतिकारियों का ठौर था
कोई भेद था न विमर्श था
देश के संग प्रीत का उन्माद था, संवाद था
भले, याद हो कि न याद हो।

माखन, प्रदीप, नवीन श्यामल
मैथिली, दिनकर, सभी का राष्ट्रीय स्वर नाद था
स्वाधीनता संग्राम में जीत का अनुवाद था
साथ, सूरज-चाँद था, इंकलाब जिंदाबाद था
क्रांति का एक राग था, आगाज था
वंदेमारतम् वंदेमातरम् गगन गुंजित नभ था
भले याद हो कि न याद हो।

भारत गीत

जग से न्यारा
देश हमारा
महिमा मंडित हो
सदा प्रशंसित हो।
प्रीति धरा की पावन थाती
जग को बाँट-बाँट सुख पाती
ऐसी परम्परा का सपना
नहीं, सशंकित हो-
रचनाओं से जुड़ा यंत्र हो
श्रम ही मेरा साध्य मंत्र हो
दिशा-दिशा अनुराग राग से
केवल गुंजित हो-
हर मन में बस स्नेह भाव हो
कहीं नहीं कोई दुराव हो।
शुभ मुकुट से माँ का मस्तक
सदा अलंकृत हो।
भारत भूमि वीरों सी धरती
पौरुष का अभिनंदन करती
कर्म भूमि, यह धर्म भूमि
प्रति पल अभिनंदित हो।
वेदों, उपनिषदों की वाणी
भाव बिखेरे है कल्याणी
सदा हमारे मातृ-भूमि की
गरिमा संचित हो।
जिस माटी का कण-कण पावन
सब कुछ लगता है मन भावन
गौतम, गाँधी टैगोर तिलक की
याद अखंडित हो।

सम्पर्क : वाराणसी (उ.प्र.)
मो. 9506790015

अर्पणा 'अंजन'

अपना प्रेम

सूरज न तो डूबता है
न निकलता है
बस धरा बदलती है करवट
और रखती है अक्षुण्ण
अपना प्रेम।

लिये नयनों का गीलापन,
ताकती रहती है
नीलाभ आकाश को
एकटक, अपलक...।

माँगती है दुआ
कभी खतम न हो
समंदर का नीलापन
उसी से तो नीला है गगन।

तुम्हीं ने कहा था न,
हैं जब तक नीले
आकाश और सागर
सजती रहेगी धरा
और बचा रहेगा धरा पर
प्रेम...
रची जाती रहेगी कविता...।

सम्पर्क : बिलासपुर (छ.ग.)

विक्रम सिंह

चीटर

उस वक्त बाजार बंद थे, सड़कें सुनसान थीं। आसमान नीला था। पेड़ हरे थे। ऐसा मौसम दिल्ली जैसे महानगर में कभी किसी ने नहीं देखा था। खैर, ऐसे वक्त मुझे मोबाइल, टी.वी से इश्क हो गया। फेसबुक पर वक्त ज्यादा ही कट रहा था और भला कटे भी क्यों न? कमबख्त इश्क जो हो गया था। ठहरिए मोबाइल में ही दूसरा इश्क हो गया। इस तरह मुझे दो इश्क हो गए। एक लड़की से दूसरा मोबाइल से। समझ नहीं आया इश्क मोबाइल से हुआ था या मोबाइल वाली लड़की से। हाँ, शुरुआत बस औपचारिक बातचीत से हुई थी। हाय, हैलो, कैसी हो इत्यादि। धीरे-धीरे वो भी खुलने लग गई और मैं भी। खुलने का अर्थ बस इतना भर है कि विचारों का खुलना। उसकी दार्शनिक, प्यार भरी बातें, मुझे अपनी तरफ खींचती चली जा रही थीं। हाँ, फ्रेंड रिक्वेस्ट उसने ही मुझे भेजी थी। मैंने फ्रेंड रिक्वेस्ट स्वीकार करने से पहले उसकी प्रोफाइल देखी। फोटो उसकी भारतीय लड़की के जैसी थी। हाँ, उसके बाल और आँखें विदेशी महिला जैसी थीं। भूरे बाल, नीली आँखें। उसने नीली जींस और व्हाइट टी शर्ट पहन रखी थी। फोटो में देख कर अंदाजा लगाया जा सकता था कि वह करीब पाँच फुट सात इंच ऊँची होगी। उम्र करीब चालीस के आस-पास की होगी। फ्रेंड रिक्वेस्ट स्वीकार करते ही उसने मुझे मैसेज भेजा था।

'हैलो गुड मॉर्निंग, डियर।'

डियर शब्द से संबोधित करने पर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। अमूमन भारतीय नारी डियर तो अपने पति और अपने प्रेमी के अलावा किसी को कहने की हिम्मत न करे।

'हैलो गुड मॉर्निंग।'

मैंने भी जवाब दिया।

फिर उसका दूसरा मैसेज आया।

'आप कैसे हो, डियर।'

'मैं ठीक हूँ। आप कैसी हैं।'

'मैं ठीक हूँ मित्र। अपने कार्य में व्यस्त हूँ।'

फिर तुरंत उसने एक लंबा पत्र अंग्रेजी में भेज दिया। उसके तो सारे पत्र ही अंग्रेजी में ही थे।

'मेरे संदेश की प्रतिक्रिया के लिए धन्यवाद। मेरा नाम जेसिका छोटू दुबे है। मैं आधी भारतीय हूँ, क्योंकि मेरी माँ दिल्ली से थीं और मेरे पिता इंग्लैंड से। मैंने फेसबुक पर आपकी प्रोफाइल देखी और आपको अपना दोस्त बनाने के लिए एक संदेश भेजने का फैसला किया, क्योंकि मैं भारत में किसी को नहीं जानती। मैं अपने जीवन के अधिकांश समय लंदन में रही हूँ... मैं अभी अगले महीने भारत की यात्रा

का प्लान कर रही हूँ... मैं भारत पहली बार आ रही हूँ... मुझे ऐसा लगता है कि मैं अपनी मातृभूमि आकर बहुत खुश हूँगी...।'

मुझे इतनी अंग्रेजी आती थी सो मैंने ट्रांसलेटर डाउनलोड नहीं लिया। हाँ, कहीं फँसता था तो ट्रांसलेटर का सहारा लेकर पत्र का उत्तर दे देता था।

'मैं दिल्ली में रहता हूँ। दिल्ली बहुत ही खूबसूरत जगह है। यहाँ कई सैलानी घूमने आते हैं। मैं ऑटोमोबाइल कंपनी में मशीन ऑपरेटर हूँ।'

'आप मुझे अपना व्हाट्सएप नंबर भेजें, हम व्हाट्सएप पर और बात करते हैं।'

मैंने अपना व्हाट्सएप नंबर तुरंत भेज दिया। तुरंत उसका जवाब भी आ गया।

'मैंने आपको व्हाट्सएप पर मैसेज भेजा है, ठीक है।' उसने अंत में 'ठीक है' इन दो वाक्यों में बहुत दवाब बनाया था।

मैंने चेक किया। उसका मैसेज आ चुका था। मैंने नंबर को बड़े गौर से देखा। नंबर विदेश का ही था। अब मुझे पूरा यकीन हो चुका था कि मैं किसी विदेशी लड़की से बात कर रहा हूँ। नहीं तो मैं अब तक विश्वास नहीं कर पा रहा था।

मुझे न जाने क्यों उसे देखने की इच्छा जाहिर हुई।

मैंने तुरंत उसे पूछा, 'क्या हम वीडियो कॉल पर बात करें।'

उसने तुरंत जवाब दिया, 'माई वीडियो नॉट वर्किंग'

मैंने भी तुरंत जवाब दिया, 'ओके।'

उसका तुरंत दूसरा जवाब आया।

'आई एम बिजी नाउ एट वर्क। आई विल मैसेज यू व्हेन फ्री'

मैंने फिर लिख कर भेजा।

'ठीक है। मैं आपके मैसेज का इंतजार करूँगा।'

फिर रात हुई और फिर सुबह। इस बीच मेरा कई बार उससे बात करने का मन हुआ पर वो मुझे ऑनलाइन नहीं मिली। मगर सुबह जब उठा तो मुझे उसका मैसेज मिला।

'मैं चाहती हूँ कि आप मुझे बेहतर तरीके से जानें... मैंने शादी नहीं की... मैं लंदन में रहती हूँ... मैं वर्तमान में ब्रिटिश पेट्रोलियम के न एक अपतटीय में नर्स के रूप में काम करती हूँ। मेरे कहने का मतलब है कि मैं एक नर्स हूँ, लेकिन मैं 32 साल की हूँ। मैंने अपनी माँ को खो दिया था, जब मैं दस साल की थी। मैंने छः महीने की छुट्टी ले ली है। अगले महीने भारत की यात्रा करने की योजना बना रही हूँ। यह मेरी पहली यात्रा होगी और मैं बहुत सारी मस्ती करना चाहती हूँ। मैं चाहती हूँ कि आप अगले संदेश में अपने बारे में विस्तार से बताएँ और मैं आपको अपने बारे में और बताऊँगी, ताकि हम एक-दूसरे को बेहतर तरीके से समझ सकें। आपसे मुझे पूरी उम्मीद है।'

मैंने भी तुरंत मैसेज किया।

'आपने मुझे अपने बारे इतना कुछ बताकर यह साबित किया है कि आप दिल की साफ नेक इंसान हैं। अमूमन लोग इतनी जल्दी इतना प्यार किसी को नहीं करते। मैं आपका इंतजार करूँगा।'

इसके बाद उसका कोई मैसेज नहीं आया।

मैसेज करने के बाद मैं बार-बार व्हाट्सएप पर उसके उत्तर का इंतजार करता रहा। रात सोते समय मैं आखिरी बार व्हाट्सएप चेक कर सो गया। फिर रात सोते समय मैंने मैसेज किया, 'आपका कोई मैसेज अभी तक नहीं आया। क्या आप बहुत व्यस्त चल रही हैं?'

अगले दिन सुबह व्हाट्सएप चेक किया तो मैंने उसका मैसेज पाया। मैसेज करीब रात तीन बजे आया था।

'प्रिय! शायद मेरी नौकरी के कारण, कोई भी पुरुष हमेशा दूर रहने वाली महिला के साथ नहीं रहना चाहेगा, शायद इसलिए कि जब मैं छोटी थी तो पुरुषों के साथ मेरा अनुभव अच्छा नहीं था। मैं और आगे बढ़ सकती थी... मैं आपको कहानियों से बोर नहीं करूँगी। मैं बीपी में एक नर्स के रूप में काम करती हूँ और मैं ज्यादातर समय अपतटीय काम करती हूँ। अपतटीय से मेरा मतलब एक तेल रिंग से है। मैं उस चिकित्सा विभाग का हिस्सा हूँ, जो अपतटीय रहते हुए सभी श्रमिकों के चिकित्सा मुद्दों को देखता है। यह काफी कठिन काम है, लेकिन काम जितना कठिन है, मुझे लगता है कि वेतन उतना बड़ा होगा... आप किस तरह का काम करते हैं? क्या आप अब किसी को देख रहे हैं? मैं कबूल करूँगी कि मैं बहुत धार्मिक स्त्री नहीं हूँ, क्योंकि मैं नियमित रूप से प्रार्थना में शामिल नहीं होती हूँ। मैं ग्रेटर लंदन में केसिंगटन स्क्वायर में रहती हूँ। कृपया बेझिझक मुझसे कुछ भी पूछें और मैं निश्चित रूप से आपको उत्तर दूँगी। आपको जल्द ही पढ़ने की उम्मीद है।'

'मैं एक कम्पनी में सी.एन.सी ऑपरेटर हूँ। बहुत थकाऊ और बोरिंग काम है। पूरे आठ घंटे मशीन के सामने मशीन बनकर खड़ा रहता हूँ। पर मेरी मजबूरी है कि मैं यह सब करता हूँ। अच्छी नौकरी की तलाश में हूँ। मैं यह भी जानता हूँ कि ऐसे उबाऊ काम करने वाले व्यक्ति से कोई दोस्ती नहीं करेगा। हाँ, फिलहाल आराम फरमा रहा हूँ और लॉकडाऊन के खुलने का इंतजार कर रहा हूँ। मैं इस बात से सहमत नहीं हूँ कि काम जितना कठिन होगा, पैसे उतने ज्यादा मिलेंगे। किसी मजदूर को कभी ज्यादा पैसे नहीं मिलते और मजदूर का समय और मेहनत सबसे ज्यादा लगता है। खैर, मेहनत का फल मीठा होता है। हाँ, कुछ पुरुषों में ऐसी बात होती है। उसे स्त्री की जरूरत हर दिन होती है। इसका तात्पर्य सिर्फ शारीरिक संबंध से नहीं है। घर की कई जरूरतों में स्त्री का होना बहुत जरुरी होता है और आपको पता है कि भारत में स्त्री को घर की लक्ष्मी मानते हैं। आपके मैसेज बहुत लेट आते हैं। मुझे आपके जवाब का बेसब्री से इंतजार रहता है।'

'लगता है, आप अच्छा समय बिता रहे हैं। मैं फेसबुक पर नई हूँ, लेकिन मेरी उम्मीद बहुत ज्यादा है। तुम एक अच्छे और सभ्य आदमी की तरह लग रहे हो और मैं इसे थोड़ा और आगे ले जाना पसंद करूँगी। यह भारत की मेरी पहली यात्रा है और मैं इसे लेकर बहुत उत्साहित हूँ। मैं अभी तक भारत में किसी को नहीं जानती हूँ और इसके परिणामस्वरूप मैं कहीं भी रह सकती हूँ, क्योंकि भारत शांत और सुरक्षित है। हालाँकि मैं वहाँ आने पर बहुत यात्रा और भ्रमण करूँगी। जैसा कि आप पहले से ही जानते हैं कि मैं अविवाहित हूँ और शादी नहीं की। मैं वास्तव में शादी नहीं करने के लिए कोई विशेष कारण नहीं दे सकती।'

'आप भारत कब आ रही हैं? अब आपसे मिलने का बहुत मन कर रहा है और आपके साथ बैठ कर बहुत सारी बात करने का भी। भारत बहुत बड़ा देश है। यहाँ घूमने की इतनी जगह हैं। मुझे लगता है आप किसी सच्चे जीवन साथी का इंतजार कर रही हैं। ईश्वर से प्रार्थना करूँगा। आप को जल्द सच्चा जीवन साथी मिले।'

इस मैसेज के बाद काफी लंबे समय तक उसका मैसेज नहीं आया। यहाँ लंबे समय का मतलब सिर्फ तीन दिन ही है। जब आप किसी के प्रेम में हों और एक दिन भी बात किए बिना न रहें तो समझ लीजिए आपके लिए वो लंबा समय जैसा ही लगेगा। एक-एक दिन पहाड़ जैसा लगेगा। लेकिन ठीक चौथे रोज सुबह-सुबह मुझे उसका मैसेज प्राप्त हुआ।

'मेरी जानेमन, आज तुम कैसे हो? मुझे खेद है कि मैं आपके संपर्क में नहीं हूँ, कृपया मुझे क्षमा करें। मैं कुछ दिनों से बहुत व्यस्त हो गयी हूँ। जैसा कि मैंने आपसे पहले कहा था कि मैं अपनी बुकिंग करने में व्यस्त हूँ और मैं 25 अगस्त को उड़ान भरूँगी। मैं उस समय को लेकर बहुत खुश हूँ, जो हम एक साथ बिताने जा रहे हैं। मैं आज खरीदारी के लिए भी गयी थी। जैसा कि मैंने पहले आपको बताया था कि मुझे अपनी यात्रा के लिए जो कुछ भी चाहिए, वह सब कुछ खरीदना होगा। हालाँकि यह आसान नहीं था, क्योंकि मुझे आश्चर्य है कि मैं कैसे सब कुछ पैक करने जा रही हूँ। मैंने आपके लिए भी बहुत सी चीजें खरीदी हैं। मैं रविवार को रवाना होने से पहले आपको कोरियर के माध्यम से वो सब भेजूँगी, इसलिए कृपया मुझे अपना पूरा नाम, मोबाइल नंबर और पता भेजें, जहाँ आप पैकेज रिसीव करना चाहते हैं।'

'ओह, मैं कितना खुश हूँ, क्या कहूँ! मैं इतना खुश कभी नहीं हुआ था। न जाने क्यों लव मैं घबरा भी रहा हूँ। ठीक वैसे ही जैसे प्यार की पहली मुलाकात में लोग घबराते, शरमाते हैं। क्या तुम भी ऐसा महसूस कर रही हो? और मुझे किसी चीज की जरूरत नहीं है। बस तुम आ रही हो, इससे बड़ी खुशी की कोई बात नहीं।'

अब मेरी आदत हो गई थी कि मैं अगले दिन सुबह ही उसका मैसेज चेक करता था।

'कृपया आप न नहीं कह सकते, क्योंकि यह मेरा पहला अनुरोध है और मैं जोर देकर कहती हूँ... मैं आज ऑनलाइन नहीं हो सकती। अगर कोई ऐसी चीज है जो आप चाहते हैं तो मुझे आपके लिए वो चीज उपहार में जोड़नी चाहिए। बस मुझे अपने अगले मैसेज में मुझे सूचित करें।

'चुंबन लो और गले लगाओ।'

'तुम्हारे गालों पर मेरा जोरदार चुंबन। मुझे बस एक बात का डर है। यहाँ कोरोना फैला हुआ है। इस वजह से यहाँ घूमना-फिरना बहुत मुश्किल है। विदेश से आने के बाद आपको भी 14 दिनों के लिए क्वारंटाइन रहना होगा। दिल्ली में होटल मिलना भी मुश्किल होगा। लेकिन हम दोनों साथ रहने की कोशिश करेंगे। वैसे मैं एक पता भेज रहा हूँ।' फिर मैंने अपना किराए का घर का एड्रेस भेज दिया।

'आज आप दिन कैसे मना रहे हैं, मैंने पैकेज भेजा है और मैंने बहुत कुछ सोचा भी है। जब आप उन सभी वस्तुओं के बीच सबसे कीमती उपहार का पता लगाएँगे तो आप चिल्लाएँगे। उसमें दो सामान हैं, लेकिन दोनों को एक पैकेज के रूप में एक साथ पैक किया गया है। जब आपको पैकेज मिलता है, तो मैं चाहती हूँ कि आप उन्हें अलग कर दें। सफेद धारियों के साथ सामान के अंदर, मैंने 200, 000 पाउंड,

इलेक्ट्रॉनिक शब्दकोश, एक मॉडल एचपी लैपटॉप, सोने की कलाई घड़ी, डिजाइनर इत्र के 8 पैक, एप्पल आईफोन 11 फूल, मेरे फोटो की तस्वीरें, 2 मैनचेस्टर अन सॉक्स क्लब का योग रखा। दूसरे सामान में, मैंने अपना सामान भी रख दिया है। जब मैं आऊँ तो मेरा सामान कम हो, इसलिए अभी भेज दिया है।'

इतने सारे गिफ्ट, पैसे का पढ़ कर मुझे लग रहा था कि अब मेरी गरीबी दूर हो जायेगी। सदा के लिए सी.एन.सी. ऑपरेटर के जॉब से छुटकारा मिल जायेगा। मैं कोई स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ। क्या सच में ऐसा कुछ होगा। मैं इस सच को स्वीकार नहीं कर पा रहा था सो मैंने सच को पुख्ता करने के लिए उसे लिखा 'लव, क्या तुम मुझे कोरियर की पर्ची और पैकेट की फोटो भेज सकती हो, ताकि मुझे सामान लेने में आसानी रहे।'

'आप मेरे लिए एक अद्भुत व्यक्ति साबित हुए हैं। 200, 000 मेरे आने से पहले कार खरीदने और पंजीकरण करने में आपकी मदद करने के लिए है। मैं आने से पहले आपको कार के लिए कागजी कार्रवाई करने में सक्षम मानती हूँ, तो मैं सफेद धारियों वाले सामान के अंदर अपने पासपोर्ट और अंतरराष्ट्रीय ड्राइवर लाइसेंस की एक फोटोकॉपी भी भेज रही हूँ। पैसे का कोई पता न लगा सके इसलिए सामान के अंदर अच्छी तरह छिपा कर रखा है। मुझे इसे इस तरह से करना था ताकि यह सुरक्षित रहे। जैसे ही आप कूरियर सेवाओं से पैकेज प्राप्त करते हैं, कृपया मुझे बताएँ। मैं पहले से ही अपतटीय में हूँ। मुझे बहुत अफसोस है कि मैं अपने प्यार को कल मेरे पास जो विवरण था, वह नहीं भेज सकी। चिंता न करें, ध्यान रखें। जैसे ही मैं अपने कंप्यूटर पर जाऊँगी, मैं भेज दूँगी।'

अगले दिन ही मुझे सामान का बैग और कोरियर पर्ची की फोटो भेज दी।

'यहाँ कूरियर की पर्ची प्रिय।'

मैंने कोरियर की पर्ची को ध्यान से पढ़ा था। मेरा पूरा एड्रेस, और लंदन का एड्रेस भी लिखा था। काला सा, बड़ा सा बैग था। जो किसी सफेद दीवार के पास रख कर फोटो खींची हुई थी। बैग के ऊपर भी कोरियर की पर्ची चिपकी हुई थी।

अगले दिन फिर सुबह उसका मैसेज प्राप्त हुआ, 'तुम्हें तीन दिन बाद ही बैग मिल जायेगा।'

सच में मुझे तीन दिन बाद ही एक कॉल आया।

'अश्वनी कुमार बोल रहे हैं।'

'जी मैं अश्वनी बोल रहा हूँ।'

'जी, आपका एक कोरियर लंदन से आया है। क्या यह कोरियर आप ही का है।'

'जी मेरा ही है।'

'क्या आप इस कोरियर को लेना चाहते हैं?'

'जी हाँ, लेना चाहता हूँ।'

' 35000 रुपये डिपॉजिट करने पर यह कोरियर आपको पहुँचा दिया जाएगा।'

'जी, वो क्यूँ।'

'भाई साहब, विदेश से आए कोरियर सरकारी टैक्स जमा करने के बाद ही मिलते हैं।'

यह सुनते ही मुझे पसीना आना शुरू हो गया। इतनी बड़ी रकम मेरे पास थी ही नहीं।

'क्या आप अभी पैसे डिपॉजिट कर रहे हैं? नहीं तो यह एक दिन बाद वापस चला जायेगा।'

'मैं आपको बताता हूँ।'

मैं सोच में पड़ गया। सच कहूँ तो मेरे अकाउंट में 35000 रुपये थे ही नहीं। और अगर होते तो शायद में इन पैसों को अब तक दे देता। अमूमन जैसे लड़के प्यार के लिए कुछ भी कर देते हैं, मैंने ऐसा कुछ नहीं किया। मुझे पहली बार उसी शाम लव का फोन आ गया। उसने मुझे पहली बार फोन किया था। मैं फोन उठाने के पहले सोच रहा था कि वो अंग्रेजी में बात करेगी। मैं पहले ही बता दूँगा कि मेरी अंग्रेजी कमजोर है। फोन कर उसने मुझे अंग्रेजी में कहा, 'क्या तुम्हें उपहार मिल गया है।' मैं उसकी आवाज को पहली बार सुन रहा था। बहुत ही प्यारी, सुरीली, मीठी आवाज थी।

मैंने उत्तर दिया, 'मेरे पास 35000 रुपये नहीं है।'

'कोई नहीं, तुम किसी से लेकर दे दो। बैग में बहुत पैसे हैं। इसे पाते ही तुम्हारी सारी तकलीफ दूर हो जाएगी।'

'एक काम करो, तुम अभी मेरे अकाउंट में पैसे ट्रांसफर कर दो। मैं जाकर गिफ्ट ले लूँगा।'

'ओह डियर, अभी में अपतटीय (ऑफशोर) में हूँ। जब मैं मैदानी इलाके में जाऊँगी तो तुम्हें पैसे ट्रांसफर कर दूँगी। अभी तो तुम वहीं किसी से पैसे लेकर उपहार ले लो। उसमें बहुत पैसे हैं।'

मैं किसी भी तरह उसकी बात को मान नहीं रहा था। वो हर तरह से मुझे समझाने की कोशिश कर रही थी। धीरे-धीरे वो गंभीर होने लगी। उसकी प्यारी, मीठी, सुरीली आवाज, कड़वी, भारी हो गई... 'तुम मुझे चीटर समझ रहे हो।'

'नहीं... नहीं तुम मुझे गलत समझ रही हो। मेरे मन में कोई ऐसी बात नहीं है।'

'तुम मुझे चीटर समझ रहे हो। तुम मुझे चीट कर रहे हो। तुम प्यार के लायक नहीं, मैं उपहार वापस मँगा रही हूँ।'

इतना कह उसने तुरंत फोन काट दिया। उस दिन के बाद उसका फोन कभी नहीं लगा। यहाँ तक कि वो एफ.बी. मैसेंजर से भी गायब हो गई थी। हाँ, हो सकता है वो नया प्यार ढूँढ़ रही हो, जिससे 35000 रुपये मिल सकें। जो उसे चीट न करे। अगर आपको ऐसा कोई मैसेज आए तो बताइएगा।

सम्पर्क : हरिद्वार (उत्तराखंड)
मो. 9012275039

सुनीता पाठक

सूनी वसीयत

'ब्रह्म विला' में आज बरसों बाद पड़ोसी और रिश्तेदार इकट्ठा हुए हैं। लोगों का आना-जाना लगा हुआ है। आज इस घर के स्वामी, मधुप जी का तेरहवीं संस्कार है। रिश्तेदारों की इतनी गहमा-गहमी, दस वर्ष पूर्व गृहस्वामिनी गंगा की मृत्यु के समय ही दिखाई दी थी।

मधुप जी का छोटा बेटा रमन, फ्लोरिडा से चार दिन पूर्व ही यहाँ पहुँचा है। अन्तिम संस्कार के समय बड़े बेटे रीतेश ने सिंगापुर से आकर पिता को मुखाग्नि दी थी। साथ ही, पिता के जाने से सूनी हो गई 'ब्रह्म विला' कोठी को बेचने के लिये स्थानीय अखबारों में विज्ञापन भी। इस कोठी पर लोगों की निगाह तो पहले से ही थी। दलालों और इच्छुक खरीदारों की कतार लग गई थी। लेकिन इतनी जल्दी सौदा संभव न था और भाई की रजामन्दी भी जरूरी थी इसलिये इस विषय को तेरहवीं तक टाल रीतेश सिंगापुर वापस लौट गया। लोग दोनों बेटों की व्यावसायिकता को देखकर दंग थे।

इस ब्रह्म विला ने परिवार के बनने से उजड़ने तक का सफर देखा है। डॉ. मधुप शर्मा, महाविद्यालय के प्राचार्य पद से सेवानिवृत्त होकर अपनी पत्नी गंगा देवी के साथ बड़े चैन से जीवन-यापन कर रहे थे। अनुशासन प्रिय मधुप जी ने दोनों होनहार बेटों को उच्च शिक्षा दिलवाकर योग्य तो बना दिया लेकिन पिता के रूप में वे बच्चों से जुड़ न सके। बच्चे अपनी बात खुलकर माँ से ही कह पाते थे। बेटों के नौकरी पर विदेश जाते समय गंगा देवी की आँखों में बेटों से बिछोह के आँसू थे तो मधुप जी की आँखों में अप्रवासी भारतीय के पिता होने का गर्व था।

बच्चों के विदेश चले जाने से मधुप जी और गंगा देवी अकेले रह गये। गंगा ने बेटों की खुशी को अपनी खुशी मानकर, भजन-पूजन और पति की सेवा तक अपनी दिनचर्या सीमित कर ली। रीतेश और रमन माँ को नियमित फोन करते रहते पर मधुप जी, पिता की आत्मीयता को कहीं गहरे दबाकर सीधी, सपाट और सीमित औपचारिक बातें ही बच्चों से करते थे। सब कुछ ठीक ही चल रहा था कि अचानक एक दिन गंगा देवी को हार्ट अटैक आया और किसी को भी सेवा का मौका दिये बिना गंगा भगवान को प्यारी हो गईं। उम्र के इस पड़ाव पर पत्नी विछोह से मधुप जी बिल्कुल टूट गये। रीतेश और रमन माँ की त्रयोदशी संस्कार में शामिल होने आए थे और पिता को ढाढस बँधाने का प्रयास करते रहे। दोनों ने पिताजी से अपने साथ चलने की औपचारिक गुजारिश भी की मगर मधुप जी पत्नी की यादों के साथ इस कोठी में ही रहना चाहते थे इसलिये पासपोर्ट वीसा आदि के लिए प्रयास नहीं किये गये।

अल्पभाषी मधुप जी और महत्त्वाकांक्षी बेटों के बीच अहम की एक दीवार आ गई थी। बेटे पिता से दुलार की और पिता बेटों से सम्मान की कमी महसूस करते रहे। पत्नी के निधन से मधुप जी और बेटों को

जोड़े रखने वाली आखिरी कड़ी भी टूट गई थी। रीतेश सिंगापुर और रमन फ्लोरिडा वापस लौट गये। अल्पभाषी पिता से फोन पर भी ज्यादा बात न हो पाती इसलिए बस दीवाली और न्यू ईयर विश की औपचारिकता भर उनके बीच रह गई। दोनों बेटों ने अपनी इच्छानुसार अप्रवासी भारतीय लड़कियों से विवाह भी कर लिया। पिता को फोन पर बताया तो उन्होंने भी सदा सुखी रहने का आशीर्वाद फोन पर ही दे डाला। हाँ दोनों भाई दूर देशों में रहते हुये भी एक-दूसरे से जुड़े थे। दोनों एक-दूसरे के विवाह में शामिल भी हुए।

मधुप जी जीवन की साँझ में इस एकाकीपन से कुछ निराश हो चले से थे। जिन्दगी भर किताबों से दोस्ती रखने वाले अंतर्मुखी मधुप जी अब इंसानी रिश्तों को समझने के लिये कोठी से बाहर निकल पार्क और मन्दिर में परिवारों की हँसी-ठिठोली को हसरत भरी निगाह से देखते। जिस पारिवारिक जुड़ाव को वे जिन्दगी भर फिजूल समझते रहे अब उन्हें इसकी अहमियत समझ आ रही थी।

युवा बच्चे पके फल के समान होते हैं जिन्हें पेड़ से टूटकर नए वृक्ष के रूप में पल्लवित होना ही है, लेकिन, मधुप जी और बच्चों के बीच दिलों के साथ देशों की दूरी भी हावी हो गई थी। गलतफहमी और पुरुष दंभ ने इस दूरी के बीच एक गहरी खाई भी बना दी थी।

गंगा देवी के जीवनकाल में ही घर के कामकाज हेतु मालती को नौकरी पर रखा गया था। उनकी मौत के बाद मधुप जी की निर्भरता अपनी सेविका मालती के ऊपर बढ़ती गई। सच कहें तो कठोर व्यवहार के तले कोमल हृदय की भावनाओं को गंगा देवी के बाद अधेड़ मालती ही समझ सकी थी। मधुप जी इस विशाल ब्रह्म विला में अकेलेपन से घबराने लगे थे लेकिन, वृद्धावस्था में किसी नए नौकर पर आसानी से भरोसा नहीं किया जा सकता था इसलिये मालती से ही उन्होंने ब्रह्म विला में आकर रहने की गुजारिश की। मालती भी बेटा-बहू के दुर्व्यवहार से परेशान थी इसलिए घर छोड़कर अपने लाड़ले पोते नन्दन के साथ ब्रह्म विला में रहने आ गई थी। नन्दन मेधावी था इसलिए मधुप जी ने नन्दन की पढ़ाई और अन्य खर्चों की जिम्मेदारी स्वयं ले ली।

मालती ने अब मधुप जी के भोजन, घर की साफ-सफाई, बिलों का भुगतान, समय से दवाइयाँ देने आदि की व्यवस्था एक कुशल गृहिणी की तरह सँभाल ली थी। संकीर्ण मानसिकता वाले पास-पड़ोसी तो ये फिकरे कसने लगे थे कि विधवा मालती ने विधुर मधुप जी की पत्नी का स्थान ले लिया है। रिटायरमेंट के बाद उनके मित्रों की संख्या भी सिमट कर नगण्य ही रह गई थी।

उस दिन हाई ब्लडप्रेशर के मरीज मधुप जी, रूटीन चेक-अप के लिये नर्सिंगहोम पहुँचे तो बेटे रमन के दोस्त डॉ. अभय ने उन्हें पहचान लिया और आदर सहित अपने चेम्बर में बिठाया। रमन और अभय स्कूल में साथ पढ़े थे। सौम्य और गम्भीर अभय मधुप अंकल से बहुत प्रभावित था और उनके प्रोत्साहन से ही अभय ने डॉक्टर बनने का निर्णय लिया था। डॉक्टर होने के नाते अब उसने मधुप अंकल के स्वास्थ्य की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली थी। मधुप जी से फोन नम्बर लेकर अभय ने जब रमन से फोन पर बात की तो वह बरसों बाद अपने दोस्त की आवाज सुनकर अचंभित रह गया। पापा के स्वास्थ्य की देख-भाल उसके दोस्त डॉ. अभय के हाथों में है, यह जानकर उसे बहुत सन्तोष मिला।

सब कुछ सामान्य चल रहा था कि एक रात मधुप जी को दौरा पड़ा और वे पक्षाघात के शिकार हो गये। मालती तो उनकी हालत देखकर घबरा गई। उसके पोते नन्दन ने डॉ. अभय को फोन कर बुला

लिया। स्थिति की गम्भीरता को देखते हुये मधुप जी को एम्बुलेंस से तत्काल नर्सिंग होम ले जाया गया।

सीटी स्कैन से पता चला कि पक्षाघात बहुत गम्भीर था। उनका दाँया हाथ-पैर संज्ञाशून्य, चेहरा विकृत हो गया था और बोलने से भी लाचार हो गये थे। मधुप जी आई.सी.यू. में असहाय लेटे थे। उनका कोई अपना वहाँ न था। डॉ. अभय ने उनकी गम्भीर स्थिति की खबर रमन को दे दी थी। शुरू में तो रमन ने पिता के पास आने का उपक्रम किया फिर किसी आवश्यक काम का बहाना कर रीतेश को पिता के पास पहुँचने को कहा पर वह भी अपने बच्चे के बीमार होने का बहाना बनाकर टाल गया। दोनों अति व्यस्त बेटे फोन पर शुरुआत में दिन में दो बार अपने पिता के हाल-चाल लेते रहे। डॉ. अभय के जिम्मेदारी पूर्ण रवैये से उन्हें विश्वास था कि सब ठीक हो जाएगा। बस अपनी जिम्मेदारी निभाने में दोनों को कोई रुचि न थी। हालाँकि, रमन ने अभय से इंटरनेट से पिता की मेडिकल रिपोर्ट्स मँगाकर अपने देश के एक्सपर्ट्स से परामर्श जरूर लिया जिनके अनुसार सीवियर ब्रेन हेमरेज के कारण उनका पूरी तरह स्वस्थ होना मुश्किल था।

दु:खी मालती तो बस आई.सी.यू के बाहर बैठी मधुप जी के स्वस्थ होने की दुआ करती रही। मधुप जी की तबियत में कोई सुधार न हुआ और वे गहरे कोमा में चले गए। अभय ने रमन और रीतेश को वस्तुस्थिति से अवगत कराया पर उन्होंने पिता के इलाज में कोई कसर न छोड़ने के लिए कहकर कर्तव्य की इतिश्री कर ली। रीतेश और रमन हकीकत से वाकिफ थे। वे आपस में फोन पर टाइम टेबल बनाने में लग गये ताकि, पिता के अन्तिम समय में पहुँच सकें और उनके गुजर जाने की स्थिति में अंतिम संस्कार, त्रयोदशी इत्यादि निपटाकर जल्द से जल्द काम पर लौट सकें। यह तय हुआ कि खबर पाकर रीतेश सिंगापुर से रवाना हो जायेगा क्योंकि, सिंगापुर से अर्जेन्ट फ्लाइट मिलना आसान होगा और खुद का बिजनिस होने से उसे छुट्टी आदि लेने का झंझट भी न होगा। मोबाइल और लैपटॉप के जरिये अपना कारोबार भी रीतेश बे-रोकटोक जारी रख सकेगा।

होनी ने अपना काम किया और रीतेश के आने के पहले ही मधुप जी की साँसों की डोर टूट गई। बड़े पुत्र के हाथों उनको मुखाग्नि मिली और बेटे को भी एक महत्त्वपूर्ण पारिवारिक दायित्व पूरा करने का पुण्य मिला। खबर मिलते ही रमन ने भी फ्लाइट पकड़ी और घर पर आ गया। त्रयोदशी तक, पिताजी के बैंक खाते ट्रांसफर कराने, कोठी के कीमती सामान को बेचने और कोठी को ऊँची कीमत पर बेचने की तैयारी कर ली गई। शहर के तमाम बड़े बिजनेसमैन इस आलीशान भवन को मुँहमाँगी कीमत पर खरीदने के इच्छुक थे। आखिर ब्रह्म विला का सौदा पाँच करोड़ में तय हुआ। चल-अचल सम्पत्ति के नॉमिनी को हस्तान्तरण की पेचीदगियों से बचने के लिए पावर आफ अटॉर्नी के जरिए कोठी को बेचने की तैयारी कर ली गई। दोनों भाई सम्पत्ति के साथ उनकी यादों को भी बेच डालना चाहते थे। माँ के जाने से परिवार की एक कड़ी टूटी थी और पिता के आँखें मूँदते ही मातृभूमि से जुड़े रहने की आखिरी कड़ी भी टूट गई।

मधुप जी की मृत्यु से मालती भी बेहद दुखी थी। उसको देने के लिए, बरसों से बसी गृहस्थी का अनुपयोगी समझा जाने वाला सामान उसे थमाकर अन्य कीमती सामान पास पड़ोसी और रिश्तेदारों को बेच दिया गया। मालती ने गुहार की थी, 'मैंने बाबू जी की जी जान से सेवा की। उनके लिये मैंने अपना घर-बार छोड़ा और सबकी बुराई मोल ली। अब तो मेरे लिये बेटे के दरवाजे भी बन्द हो गये हैं। आप, नये मालिक से कह कर पीछे एक कोठरी में मुझे जिन्दगी के बचे दिन गुजारने की इजाजत दिलवा देना।

'तुमने पिता जी की सेवा की थी तो इस कोठी के ऐशोआराम भी भोगे' वरना पड़ी होतीं बिन बिजली, बिन पानी की कुठरिया में और फिर पिता जी ने तुम्हारे और नन्दन के लिए क्या कुछ नहीं किया? साफ-साफ क्यों नहीं कहतीं कि तुम्हें यहाँ के सुखों की लत लग गई है। ये लो कुछ रुपये और यहाँ से दफा हो जाओ।' रमन ने बेरुखी से दो टूक फैसला सुना दिया।

निराश होकर मालती, अगली सुबह अपने पोते के साथ हाथ ठेले पर अपना और सौगात में मिला सामान बेटे की झोपड़ी तक पहुँचाने में व्यस्त हो गई। कोठी के खरीदार को चाबियाँ सौंपी जानी थीं। वो भी आ चुके थे। रमन को आज ही सब काम निपटाकर दिल्ली से फ्लोरिडा के लिये फ्लाइट पकड़नी थी। तभी डॉ. अभय के साथ एक फाइल लिये वकील साहब कोठी में आ पहुँचे।

'रमन, ये मधुप अंकल के वकील मनोहर गुप्ता हैं...अंकल की वसीयत पढ़ने आये हैं।' अभय ने बिना किसी भूमिका के अपनी बात कही। 'पिता जी की वसीयत! पिता जी ने पहले तो इसका कभी जिक्र नहीं किया।' रमन ने आश्चर्य से कहा।

'सुप्त रिश्तों से अंकल ये जिक्र कैसे और कब करते और फिर वसीयत तो मरने के बाद ही खोली जाती है।' अभय ने जवाब दिया।

'तो ठीक है वकील साहब, पढ़िये पिता जी की वसीयत' रमन ने कंधे उचकाते हुए लापरवाही से कहा। वकील साहब ने वसीयत खोली और पढ़ना शुरू किया।

'मैं मधुप शर्मा, सेवानिवृत्त प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, पूरे होशो हवास में आज दिनांक 01-01-2015 को अपनी चल-अचल सम्पत्ति के मेरे मरणोपरान्त बँटवारे के सन्दर्भ में अपने अन्तिम निर्णय को वसीयत के रूप में लिख रहा हूँ।

सर्वप्रथम, मेरी खुद की कमाई से बनाये हुए 'ब्रह्म विला' का मालिकाना हक मेरी मृत्यु के पश्चात् मेरी सेविका मालती को दिया जाए जिसने मेरी जीवन पर्यंत सेवा की है। मेरे मरने के बाद भी उसके सिर पर छत कायम रहे यह मेरी इच्छा है।

ये सुनकर रमन और रीतेश सकते में आ गये। नन्दन और मालती भी अवाक हो गए। उनकी आँखें, मालिक के अहसान से नम हो गईं। अभय के इशारे पर वकील साहब ने आगे पढ़ना शुरू किया- 'मेरे दोनों बेटे, व्यस्तता के कारण मुझे कोई सहारा देंगे इसमें सन्देह है। मैं चल सम्पत्ति के रूप में मेरे पास मौजूद 50 लाख रुपये अभय को सौंप चुका हूँ। भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर मेरे इलाज का खर्च इस राशि में से किया जाएगा और मृत्यु के बाद, बची धनराशि के ब्याज से गरीब लोगों का इलाज करने का अधिकार उसे होगा।

'मुझे जीवन का कोई मोह नहीं है। मोह होता है उन्हें जिनकी जिन्दगी की अपनों को जरूरत होती है। मेरे बेटे मेरे अन्तिम संस्कार के लिये भारत आते हैं तो ये मेरी खुशकिस्मती होगी। अगर ये चाहें तो अपने आने-जाने का खर्च अभय से ले सकते हैं। मुझे अपने बेटों का कोई अहसान नहीं चाहिए। मैं खुद को अभय और मालती के हाथों में सौंप कर निश्चित हूँ।'

पूरी वसीयत सुनने के बाद ब्रह्म विला का खरीददार उठकर चला गया। उतावले रमन ने वकील साहब के हाथों से वसीयत छीन ली परंतु उस पर पिताजी के हस्ताक्षर देखकर यकीन करना पड़ा। गवाह के रूप में वसीयत पर अभय के हस्ताक्षर देखकर खिसियाया हुआ रमन अभय पर भड़क उठा 'वाह

अभय! तुमने भी क्या खूब दोस्ती निभाई। तुम इस वसीयत के बारे में जानते थे फिर भी कोठी के सौदे तक क्यों नहीं बताया?और हम ही क्या? न जाने कितने भारतीय बच्चे विदेश में अपना भविष्य बना रहे हैं। तो क्या सभी माँ-बाप अपने बच्चों से ऐसा बैर पाल लेते हैं? तुमने भी उन्हें समझाने की जगह लगता है आग में घी डालने का ही काम किया है।'

नहीं रमन तुम अंकल को और मुझे गलत समझ रहे जबकि गलती तुम भाईयों की है। जितने जोश से तुम लोग आज इस कोठी को बेच कर वापस जाना चाह रहे थे उतने उत्साह से कभी अंकल को साथ ले जाने की जिद की होती तो अंकल को वह एकाकीपन तो न झेलना पड़ता। यूँ बुढ़ापे को अकेले काटने की मजबूरी तो न होती... अंकल दूरदर्शी थे इसलिए उन्होंने अपने और उनकी सेवा करने वाले हर शख्स के अहसान का बदला चुकाने की व्यवस्था कर दी। तुम्हें उनकी मौत पर अन्तिम संस्कार के लिए आना भी भारी पड़ेगा इसलिए तुम्हारे आने-जाने का खर्च देने का निर्णय भी उनके टूटे हुए दिल की व्यथा बयान करता है।

रहा सवाल पहले न बताने का तो, वह इसलिए क्योंकि मैं देखना चाहता था कि अंकल ने अपने बेटों को कितना सही पहचाना था। उन्हें पता था कि तुम दोनों कुछ ऐसा ही व्यवहार करोगे, तुम लोग तो आत्मनिर्भर हो। मालती के नाम यह कोठी कर उन्होंने एक नेक संदेश दिया है कि मालती का बेटा और पोता लालच में ही सही मालती की ताउम्र सेवा तो करेंगे।

मैंने अंकल की आँखों में कभी न खत्म होने वाला इंतजार का सूनापन देखा है। उनकी सूनी आँखों में बहाना मौत के इंतजार का था लेकिन मैं जानता था कि वे तुम्हारे आने का और मनुहार कर ले जाने का इंतजार कर रहे थे और यही कारण है कि अंकल की वसीयत बेटों के लिये सूनी वसीयत ही रही। रमन तुम्हारी फ्लाइट का समय हो रहा है। चलो घर चलते हैं तुम्हें टिकिट के रुपये भी तो देने हैं।' अभय ने धीरे से रमन के कन्धे पर हाथ रख कर कहा।

'नहीं अभय मुझे देर हो रही है। वे रुपये भी तुम गरीबों के इलाज में लगा देना।' कहते हुये रमन अपना सामान समेटने लगा। रीतेश भी आँखों में आँसू भरे जाने की तैयारी करने लगा।

लगेज के साथ जब वे बाहर आये तो मालती ने विनीत स्वर में कहा 'ये कोठी आज भी आप दोनों भाईयों की है। मैं तो बस इसे बाबू जी का मन्दिर मानकर बुहारती और पूजती रहूँगी... बस एक विनती है आपसे कि बाबू जी के प्रथम श्राद्ध पर आप दोनों भाई, बहू और बच्चों के साथ जरूर आइयेगा। बाबू जी की आत्मा को शान्ति मिलेगी।' मालती का स्वर रुँध गया था इसलिए आगे और कुछ न बोल सकी।

'हाँ जरूर' कहकर भरी आँखों और सूनी वसीयत को सीने से लगाये हुये रमन और रीतेश ब्रह्म विला से बाहर निकल गये।

श्राद्ध पर आने का संकल्प उन्होंने वसीयत के निर्देशों से परे अपनी सच्ची आत्मा से पिता की आत्मा के करीब पहुँचाने के लिए लिया था। किसी कोठी या पैसे के लालच में नहीं बल्कि पिता जी को सच्ची श्रद्धांजलि देने के लिए लिया था।

सम्पर्क : ग्वालियर (म.प्र.)
मो. 9425775207

दिनेश विजयवर्गीय

नयी जिन्दगी

नरेश और नमिता कॉलेज शिक्षा से ही एक-दूसरे को पसंद करते थे। दोनों ने ही अंग्रेजी में एम.ए. किया था। पढ़ने में मेहनती व लगनशील रहने से, जब जॉब के लिये प्रयास किया तो उनका सिलेक्शन भी उनकी रुचि अनुसार हो गया। एक ही शहर में नरेश बैंक में बाबू बन गया और नमिता आकाशवाणी में उद्घोषिका बन गई। जॉब के बाद विवाह बंधन में बँध गये।

अभी एक वर्ष ही गुजरा कि बेटी नेहा घर में आ गई। अब नमिता को आकाशवाणी कार्यक्रमों के लिये समय कम मिलने लगा। तीन वर्ष बाद नरेश का ट्रान्सफर भवानी मण्डी हो गया। ऐसे में नमिता को भी आकाशवाणी छोड़ नरेश के साथ जाना पड़ा। नमिता साहित्य के प्रति रुचि रुझान रखने वाली थी। लिखने-पढ़ने का शौक था। घर पर भी उसका समय बेटी नेहा के साथ निकलता। जब भी समय मिलता वह लेखन कार्य में लगी रहती। उसकी कहानी, कविता विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगीं। अपने लेखन कार्य से शहर में उसकी पहचान बनने लगी। नेहा भी स्कूल पढ़ने जाने लगी थी। अब उनके दिन अच्छे से गुजर रहे थे।

छः वर्ष गुजरे कि कोरोना की आँधी ने लोगों को अपनी गिरफ्त में लेना शुरू कर दिया। इस अदृश्य वायरस के प्रकोप से लोगों का इलाज कराते हुए भी जाने जानी लगीं। ऐसे में एक दिन नमिता भी कोरोना से प्रभावित हो गई। इलाज भी कराया, लेकिन वह बच नहीं सकी।

नरेश के जीवन में तो जैसे घुप्प अँधेरा छा गया। वर्षों की पसंद नमिता से विवाह कर वह अपने को सौभाग्यशाली समझ रहा था। यह नियति ने क्या कर डाला। इस सूक्ष्य वायरस ने उसे, उससे छीन लिया। अब उसका मन यहाँ से उछट गया। नेहा अपनी मम्मी की याद कर जब-तब आँसू बहाती रहती। वह उदास रहने लगी।

उसने अपनी उजड़ी गृहस्थी की व्यवस्था को जमाने के लिये एक काम वाली बाई को रखा जो झाड़ू-पौंछा और सुबह-शाम खाना बनाती। नेहा का ध्यान भी रखती।

करती दो वर्ष बीते कि नरेश का प्रोमोशन अजमेर हो गया। वह बैंक अधिकारी बन गया था। कुछ दिन तो वह अपने मित्र के यहाँ रहा। जहाँ नेहा भी मित्र के बच्चों के साथ पढ़ती-खेलती। फिर नरेश ने नेहा को ऐसे स्कूल में भर्ती करा दिया, जहाँ हॉस्टल सुविधा थी। वह तीसरी कक्षा में थी। उसी के साथ कक्षा की एक और लड़की रोशनी रहती थी। नेहा का मन भी उसके साथ लगने लगा था।

नरेश हर छुट्टी के दिन नेहा से मिलने जाता और उसके लिये कई उपहार लेकर जाता। वह खुश था कि नेहा अब हॉस्टल लाइफ से एडजस्ट होने लगी थी।

इधर नरेश भी अपने साथियों के साथ मकान की तलाश करने लगा। ऐसे ही एक दिन बैंक कर्मी ज्योत्सना ने उससे कहा-'सर! मेरी एक सहेली के मकान में ऊपर दो रूम किचन वाला पोर्शन खाली है। आप कहें तो मैं बात करूँ? नीचे पोर्शन में सहेली सोनल जो एक सरकारी स्कूल में सेकेण्ड ग्रेड अंग्रेजी की टीचर है, तथा उसकी माँ रहती हैं। पिता कोरोना की पहली लहर में चल बसे।

रविवार को सुबह ज्योत्सना के साथ वह मकान देख आये। मकान नरेश के लिये पर्याप्त व खुला, हवादार था। वह उसी दिन उसमें शिफ्ट हो गया। शाम को सबने सोनल के यहाँ ही चाय पी। सोनल ने नरेश की आँखों में झाँक कर, ऐसे देखा जैसे वह उसमें अपना भविष्य तलाश रही हो। नरेश सुबह नाश्ता लेकर बैंक जाता और लंच के लिये बाहर से टिफिन मँगवाता। रात को भी घर के लिये ऐसे ही टिफिन की व्यवस्था की हुई थी। कुछ समय ऐसे ही चलता रहा।

एक शनिवार को ज्योत्सना और नरेश चेम्बर में बातचीत कर रहे थे। ज्योत्सना ने मौका देख उससे उसकी पत्नी के बारे में पूछा तो उसने दुख के साथ कहा- 'पिछले समय जो कोरोना की लहर आई थी, उसमें पत्नी संक्रमित हो गई। इलाज कराया, पर बच नहीं सकी। आठ वर्ष की बिटिया है, जो यहाँ के ही एक स्कूल में तीसरी क्लास में पढ़ती है। और वह वहीं हॉस्टल में रहती है।'

'सर! आपकी जिंदगी ऐसी वीरान तो नहीं रहना चाहिये। आपकी जीवन बगिया फिर से हरी-भरी और रंग-बिरंगे फूलों वाली होना चाहिये।' ज्योत्सना ने फिर से शादी के लिए उसके मन की बात जानना चाहा।

'कह तो आप ठीक कह रही हैं-ज्योत्सना! अभी इस बारे में कुछ सोचा नहीं।'

'इन्टरकास्ट लड़की चलेगी क्या?' ज्योत्सना ने नरेश से ऐसे पूछा जैसे उसके पास कोई प्रस्ताव आया हुआ हो। 'वैसे सर आप अग्रवाल हैं, तो क्या वैष्णव धर्म वाली लड़की ही होना चाहिये?' तब तक उनके लिये चाय आ गई तो वे चाय पीने लगे। 'कोई ठीक लगेगी तो देखते हैं।' नरेश ने मन की बात खोलते हुए कहा।

'सर आप विधुर हैं। संतानविहीन विधवा चल सकती है क्या?' ज्योत्सना ने उसके मन की सोच को जानने हेतु कहा।

'आप तो इस तरह बात कर रही हैं, जैसे सब कुछ थाली में ही परोसा हुआ हो।'

'मेरी एक जैन सहेली है जो टीचर है और उम्र भी लगभग तीस वर्ष है। आप की उम्र भी पैंतीस के आस-पास होगी?'

'ठीक है, फोटो बताना, फिर विचार करता हूँ।' नरेश ने अपनी ओर से संकेत दिया।

'अच्छा मैं भी पहले उससे भी पूछ लेती हूँ। उसे आपके बारे में सब कुछ बता कर बात करूँगी।'

जिस मकान में नरेश रहने लगा था, उसी मकान मालकिन की बेटी सोनल से ज्योत्सना ने एक दिन बाहर पार्क में घूमने के दौरान पुनर्विवाह के बारे में उसके विचार जाने।

सोनल सोच कर भी कुछ जवाब नहीं दे पा रही थी। उसकी चुप्पी को तोड़ते हुए ज्योत्सना ने कहा- 'देख सोनल जीवन लंबा है। जीवन साथी तो होना ही चाहिये। मैं कहती हूँ, तू शादी के लिये मन बना। तेरे लायक मैंने कमाऊ लड़का देख लिया है। और आज वह प्रतिष्ठित पद पर है।'

'अच्छा तुझे मेरी बहुत चिंता है।' 'सच तू मेरी सच्ची फ्रेण्ड जो है। मेरी सलाह है कि तू इस पर गंभीरता से विचार करना। दो-तीन दिन सोचकर और अपनी माँ से बातचीत कर निर्णय करना। यदि तू कहेगी तो मैं तेरी माँ से भी बात कर लूँगी। लेकिन यह मेरा मात्र सुझाव है। निर्णय तो तुम्हारा ही रहेगा?'

तीन दिन निकल गये। ज्योत्सना सोचने लगी, हो सकता हो उसका मन तैयार न हो। चौथे दिन रात को सोनल ने फोन कर अपनी सहमति दे दी। 'ठीक है सोनल अब मैं तुझे बताती हूँ कि वह लड़का है कौन? तुझे सुनकर आश्चर्य होगा।'

'सच, ऐसा कहाँ से तलाश लिया? अच्छा कल शाम को छः बजे मैं तेरे साथ चाय पीने आ रही हूँ। वहीं बताऊँगी लड़का है कौन। वहीं तुझसे बातें भी हो जायेंगी।'

'शाम के सात बजने को थे। सोनल भी ज्योत्सना की प्रतीक्षा में बैठी थी।' आते ही ज्योत्सना ने कहा-'आज कल काम अधिक होने से लेट हो गई। बैंक अधिकारी नरेश अग्रवाल तो अभी तक भी बैठे हैं। उन्हें तो अभी तीस-चालीस मिनट और लग जाएँगे।'

'अच्छा अब बता वह लड़का कौन है?'

'देख अब तेरा मन कितनी उत्सुकता से पूछ रहा है। होने वाले संभावित जीवन साथी के बारे में।' उसने हँसते हुए कहा।

'अच्छा तो बताती हूँ। हाँ एक बात और है, जैसे तुझे पता नहीं वह कौन हैं, वैसे ही उसे भी तेरे बारे में कुछ भी पता नहीं। देख लड़का है तो पैंतीस साल का विधुर, लेकिन है स्मार्ट। उसके एक आठ साल की छोटी बच्ची है जो यहीं एक स्कूल हॉस्टल में रहकर पढ़ाई कर रही है। लड़का हजारों रुपये पाने वाला अधिकारी है। बोल क्या विचार है तेरा?'

बीच में ही उसकी माँ बोल पड़ी-'लड़का अग्रवाल परिवार का अच्छा वेतन पाने वाला संस्कारित व्यक्ति है, मिल रहा है तो सहज ही स्वीकार करना चाहिये। शायद तेरी किस्मत को मंगलकारी बनाने के लिये, ज्योत्सना ऐसा रिश्ता बता रही है।'

लड़के के बारे में अप्रत्यक्ष रूप से बहुत कुछ बताने के बाद आखिर सोनल और उसकी माँ की उत्सुकता को देख ज्योत्सना ने बता दिया नरेश के बारे में। अपने ही किरायेदार के रूप में रहने वाले बैंक अधिकारी नरेश अग्रवाल का नाम सुन वे चकित रह गये।

सोनल की माँ बोली- 'वह तैयार है सोनल से विवाह करने को?' उसने सोनल की ओर देखते हुए ज्योत्सना से जानना चाहा।

तभी बैंक से नरेश भी आ गया। ज्योत्सना ने नरेश से कहा- 'सर! यही ठहरें। साथ चाय पिएँगे। हम बहुत देर से इन्तजार कर रहे हैं।'

'अरे वाह! आज इंतजार किस बात के लिये? नरेश ने उत्सुक हो पूछा?' सोनल की माँ किचन में चाय बनाने चली गईं। ज्योत्सना ने सोनल की ओर इशारा करते हुए कहा- 'सर जी, यही है मेरी फ्रेण्ड सोनल जिसके लिये मैं आपसे कह रही थी।' पहली बार नरेश और सोनल ने एक-दूसरे के जीवन साथी बन जाने का सोच लेकर आपस में प्यार भरी नजरों से देखा। दोनों के चेहरे पर मुस्कान आ गई। ज्योत्सना को लगा जैसे दोनों ने आँखों ही आँखों से अपनी रजामंदी दे दी।

चाय लेकर सोनल की माँ भी आ गईं। उसने भी नरेश को अब बदली हुई परिस्थिति के अनुसार देखा। उसे भी दिल से वह पसंद था। यों तो वे दोनों रोज ही नरेश को देखते, मिलते थे। पर वह रूप अलग था। सोनल और नरेश दोनों ने अपनी सहमति विवाह हेतु दे दी। ज्योत्सना ने ईश्वर को धन्यवाद दिया कि उसका प्रयास एक अच्छे कार्य के लिये सफल रहा और फिर एक दिन सोनल व नरेश का एक सादे समारोह में विवाह सम्पन्न हो गया।

नरेश ओर सोनल की जिदंगी फिर सावन भादौं सी हरी-भरी हो गई। वे कार से रविवार को नेहा से मिलने हॉस्टल पहुँचे। वे उसके लिये उपहार व कई प्रकार की टॉफियाँ लेकर गये थे।

नरेश ने नेहा को बाहर विजिटिंग रूम में बुलाया। नेहा ने आज पहली बार अपने पापा के साथ महिला को देखा तो सकते में आ गई। सोनल ने भी नेहा को बड़े लाड़ प्यार से पुकारा- 'नेहा बिटिया आओ मेरे पास। वह अजनबी महिला को इतना प्यार से बोलती देख उसकी ओर बढ़ी और घूर कर देखती रही। तभी नरेश ने उससे कहा-'नेहा बिटिया अब यही तुम्हारी नयी माँ हैं। हम कुछ दिनों में तुम्हें घर पर ले जाएँगे। वहाँ तुम्हें नानी भी मिलेंगी। सब साथ रहेंगे।'

'मैं नहीं जाऊँगी। नयी माँ मुझे बात-बात पर गुस्सा करेंगी, पीटेंगी। और आप भी गुस्सा होते रहेंगे। मैं यहाँ अपनी रूममेट श्वेता के साथ अच्छी हूँ। हम एक-दूसरे से बहुत खुश हैं।'

'नहीं बिटिया ये तुमने इतना सब कैसे सोच लिया? नयी माँ तुम पर क्यों गुस्सा करेंगी और सजा क्यों देंगी?' नरेश ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा। फिर सोनल ने भी भरोसा जताते हुए कहा- 'नेहा बिटिया मैं तुमसे बहुत प्यार करूँगी। तुम्हें अच्छे से रखूँगी। अब तुम हमारे साथ ही रहोगी।'

'नही पापा, मैं तो यहीं रहकर पढ़ लूँगी।' नेहा ने अपनी जिद दोहराई।

'हम तुम्हें पक्का भरोसा दिलाते हैं, तुम्हें सच में बहुत प्यार से रखेंगे। अच्छा एक बात बताओ तुमसे किसने कह दिया कि दूसरी माँ तुम पर गुस्सा होती रहेगी व पीटेगी?' नरेश ने उससे जानना चाहा।

मेरी रूम पार्टनर श्वेता ने कहा था। उसे उसकी दूसरी माँ डाटतीं और कभी गुस्सा हो पीटती हैं। उसके पापा भी उसे यहाँ हॉस्टल में छोड़ गये।'

'नहीं बिटिया, हर मम्मी-पापा एक सा व्यवहार नहीं करते। हम पक्का कहते हैं, कि हमारी प्यारी बिटिया सदा राजकुमारी की तरह रहेगी।'

'ठीक हैं, पापा-मम्मी मैं चलूँगी आपके साथ।' वह दौड़कर सोनल के पास आ गई। सोनल ने उसे गोद में उठा कर प्यार किया।

'हम कार्यवाही कर दो दिन बाद तुम्हें लेने आते हैं। अब हम साथ रहेंगे। तुम्हारे लिये स्कूल बस की सुविधा कर देंगे। उसी से स्कूल जाना-आना। और हाँ एक बात तो बताना भूल ही गया तुम्हारी माँ स्कूल टीचर हैं। तुम्हारी पढ़ाई भी अच्छे से होती रहेगी। क्लास में तुम टॉप करती रहोगी।'

दो दिन बाद नरेश व सोनल कार से नेहा को लेने आ गये। सारी कार्यवाही पूरी कर वे फिर से साथ रहकर नयी जिंदगी शुरू करेंगे। नेहा अपनी रूम पार्टनर श्वेता से मिलकर आँसू बहाती रही। उसने भी खुशी से विदा किया।' सच में तुम्हारे मम्मी-पापा अच्छे हैं। तुमसे कितना प्यार करते हैं। कार में बैठ नेहा अपने मम्मी-पापा के साथ चल दी। नेहा और श्वेता एक-दूसरे को दूर तक देखती रहीं।

डॉ. वन्दना मिश्र

गंतव्य

यह ट्रेन क्यों रुक गयी...उफ! कितनी गरमी है?

'आगे कुछ बवाल हो गया है' बचो!' सँभलो!..छिप जाओ लोग बे-हताशा दोड़े आ रहे हैं।'

झुक जाओ...पत्थर ओफ..हे भगवान!

अभी बैठे ही थे कि किरण..ने आकाश से कहा-अब क्या होगा बच्चों को छोड़कर आए हैं, अच्छा ही रहा। 'देखो! आकाश मुझे कुछ हो जाए तो निकी और बिकी का ध्यान रखना वह बोर्नविटा का ही दूध पीता है। आम बहुत पसंद हैं। उसे क्या करूँ? तभी एक सन्नाता पत्थर सिर के बगल से निकल गया। सन्न, पूरे कंपार्टमेंट में काँच बिखर गये। बैग को कसकर काँख में दबा लिया। जोर से चिल्लाई किरण 'आ...का...श'

आकाश एक बूढ़ी अम्मा को गोद में उठाए, किरण को सौंपते हुए बोले 'इन माताजी के साथ जो सज्जन थे वे भाग निकले हैं। इसी हाल में छोड़कर इन्हें बेहोशी आ गयी सँभालना मैं देखता हूँ।'

पीछे के डिब्बे आग से धधकने लगे। किरण उतरो माताजी को गोद में उठा आकाश आगे की बोगी की ओर बढ़ने लगा। किरण चिल्लाई सामान, भाड़ में जाए सामान।

तुम उतरो भीड़ बड़ी धक्का-मुक्की में पर्स दबाए सूटकेस दूर फिक गया हाथ फिसला। किरण बोगी से नीचे गिर गयी। आकाश, आकाश, आकाश। आवाज भीड़ में गुम गयी। उपद्रवियों ने सारा सामान आग के हवाले कर दिया। लोग मरते-भागते प्राण बचाने की जुगत में अँधेरे से पड़े सूने रेलवे के क्वार्टर्स में कोई पुल के पाइपों में जहाँ बच सके। बचने में उलझ गये मरे अधमरे घायल।

सरकार की चेतना जागी जब तक हताहत लोगों को कुछ समाज सेवी जिन्हें इंसान कहा जा सकता है, अस्पताल पहुँचा चुके तो कुछ गवाह कौन बने? ईश्वर भरोसे छोड़ भाग निकले।

माजरा समझते देर न लगी। आखिर हुआ क्या, किस बात का आक्रोश है? टी वी पर समाचार चल रहे हैं। उग्र भीड़ दंगा आगजनी कर भय का संचार करती। ट्रेन आग के हवाले धू-धू करती ट्रेन नरेश ..चिल्लाया 'यह तो हावड़ा एक्सप्रेस है भैया-भाभी इसी से गये हैं। काकी के यहाँ शादी में कमला..देख तो सही।'

मुँह पर दुपट्टे को ढाँप दहाड़ पर आह आकाश भैया, किरण भाभी हे भगवान! नरेश कुछ करो।

टिकट देख वाट्सएप करे थे क्या सीट नंबर? थाने में ट्रेक पर निकी बिकी को देखना। कमला उन्हें कुछ मत बताना दौड़ पड़ा। थाने की ओर समाचार चल रहे हैं।

अग्निपथ सेना की अग्निपथ स्कीम के तहत 21 साल से सेना में भर्ती किया जाना। योजना के तहत अब रोज शुरू हुआ। जगह-जगह प्रदर्शन किए गए। इस विरोध में हिंसा और तोड़फोड़ हुई। 13-14 राज्यों में बवाल मचा और बवाल का मूल कारण अग्निपथ का विरोध है जबकि 4 साल पूरा करने वाले अग्नि वीरों को उम्र की सीमा में 3 साल की छूट मिलेगी। अग्निपथ के पहले बैच को 5 साल की छूट मिलेगी। 4 साल तक। 19 तारीख के बाद लगभग 1100000 की राशि और घर घर में प्रशिक्षण लेकिन इसके बाद में प्रदर्शन किए गए इस प्रदर्शन में धन और जन की क्षति हुई ट्रेन-ट्रक में आग लगाई गई। आगजनी में कई लोग घायल हुए मारे गए। विशेष रूप से जो घर छोड़कर बाहर निकले थे, सफर कर रहे थे उनका क्या। 3-4 दिन तक बिहार में प्रदर्शन होता रहा। असम में प्रदर्शन हुआ। जहानाबाद में ट्रक और बस में आग लगाई गई। पुलिस पर पत्थरबाजी की। 12 जिलों में इंटरनेट बंद कर दिए गए और भारत बंद का ऐलान भी हुआ। इन सबके बीच वह अपने परिवार के साथ ट्रेन में सफ़र कर रहा था।

चलिए कुछ करिए साहब मेरा भाई भावज सहित पूरी ट्रेन बमुश्किल से रिजर्वेशन मिला था।

सिलीगुड़ी पश्चिमी बंगाल में आगजनी, बिहार झुलस रहा है। जंतर-मंतर पर प्रदर्शन वबाल।

कितनी गरमी है इस धूप में पुलिस इंस्पेक्टर थोड़ा चिल्लया, झुँझलाया। ऊपर से आदेश आने का इंतजार करने लगा कि एक पुलिस कर्मी दौड़ा आया। सर फरमान है। चलिए दंगेबाज आग लगाकर भाग गये लोग तड़प रहे हैं।

किरण की तंद्रा टूटी। बिकी-निकी आकाश बैग, सूटकेस, शादी, काकी। बिकी उठ पापा को बुला। नहीं वहाँ नहीं। घर में ही रुको आकाश।

एक नवयुवक दौड़ा आया। सहारा देते हुए बोला- 'चलिए मैं छोड़ता हूँ, यहाँ दंगे हुए हैं। कोई नहीं बचा या तो भाग लिए हैं या मारे गये हैं। घायलों को अस्पताल पहुँचा दिया गया। आप, आपका नाम किस बोगी में थीं। मैं देखता हूँ जब तक चलिये मेरे साथ।'

'आकाश कहाँ है आकाश, मेरा पति।'

यहाँ से सभी को हटाया जा रहा है। सुरक्षित स्थान पर हो सकता है, वो वहीं हों। आप चलिए दूर फिर चीखने-चिल्लाने की आवाज ने ध्यान मोड़ा। पास में एक बच्चा पड़ा था। उत्साही युवक ने बच्चे को गोद उठा किरण का हाथ घसीटते हुए कहा-अभि भागिए यहाँ से, वे किसी को नहीं छोड़ेंगे।

'आखिर हुआ क्या, किस बात का दंगा है।' किरण चीखते हुए बोली।

अनावश्यक की राजनीति है बहन।

अच्छी भली स्कीम है। चार साल की नौकरी। 21 वर्ष के युवकों को वह भी 12वीं पास को सेना में फिर एक मुश्त राशि अरे! 25 साल के लड़के के हाथ में एक साथ 11 लाख रुपये भी मिल जाएँगे। कर लो। फिर धंधा पानी नहीं। लोग चाहते हैं जिंदगी भर का ठेका लो।'

अकर्मण्य कहीं के।

किरण ने कहा 'सही है...' चलते नहीं बन रहा मेरा सामान।

सामान युवक बोला- अभी चलो सामान तो मिल जाएगा। अगर बचा होगा वरना।

वरना क्या?

इस झुलसती ट्रेन में सामान कैसे बचेगा।

गुवाहाटी से निकल कर गाड़ी बढ़ ही थी कि लोग कैसे सरकारी संपत्ति को नुकसान पहुँचाते हैं। थोड़ा भी दिल नहीं दहलता, कचोट नहीं होती। कितनी मुश्किल से एक-एक सामान की पूर्ति होती है। बची-खुची कसर बाढ़ ने पूरी कर दी। असम के 32 जिलों में बाढ़ 19 जून 2022 राहत शिविरों में डेढ़ लाख लोग। पूर्वोत्तर भारत बाढ़ की चपेट में। साथ ही यह बवाल।

लोग मर रहे हैं। लगता है प्रकृति ने भी दानवों से समझौता कर मानव विनाश लीला रच ली हो और मानव को तड़पता देख खुश हो रही है।

राहत शिविर आहत कर रहे हैं। भरी गरमी है पर, ठंड जकड़ रही है।

युवक चिल्लाया किरण बहिन पहचानो आकाश को! इस भीड़ में पहचानना तो दूर देखना भी कठिन है। आवाज भीड़ में खो रही है। सोचने लगी किरण यह युवक कोई देवदूत है जो लोगों की सहायता किए जा रहा है। काश! दुनिया में ऐसे लोग हो जाएँ।

आकाश तो नहीं दिखा सो जो भी बूढ़ी सी माई दिखती किरण उसी की ओर भागने लगती। ...किन्तु तुरंत निराशा आकर दोनों हाथों से जकड़ लेती। युवक दूसरे लोगों की भी व्यवस्था कर रहा था। किरण से पूछा मैं आपको दीदी बोलूँगा। अब आप बताइए फोन नम्बर है कोई।

फोन नंबर!

'अरे! मेरा मोबाइल कहाँ गया? आकाश का नंबर, किसी का मोबाइल नंबर याद ही नहीं आ रहा।' अब क्या होगा?

दीदी मैं जा रहा हूँ ढूँढ़ता हूँ। आप यहाँ से कहीं जाना नहीं। यह मेरा मोबाइल है। आकाश मिल जाए तो बता देना, मैं आप लोगों के खाने-कपड़े की व्यवस्था देखता हूँ।

युवक पुलिस की गाड़ी से गुवाहाटी के पास गुमटियों से सामान लेकर निकाल ही रहा था कि एक पत्थर के पीछे कुछ झुलसी सी आकृतियाँ दिखीं। स्त्री-पुरुष, माँ-बेटा पता नहीं आकाश और माताजी तो नहीं। पर पहचानें कैसे। सैकड़ों लाशें, सामान ..बोगियों मे अधजला, पूरा जला पड़ा है। हाय-री नियति मन है कि मानता ही नहीं। पेट काट-काट कर पैसा जोड़ो, सामान खरीदो और इन हादसों। हादसों नहीं मानव निर्मित प्रायोजित हादसों में हँसती-खेलती-चहकती जिंदगियाँ स्वाहा हो गयीं। जो बचीं वे भी जिंदा लाश!

युवक सोचते बढ़ा जा रहा था कि एक पुलिस कर्मी भोंपू से अनाउंस करता आ रहा था। सिया जिनके साथ गिरधारी थे। आसनसोल से बैठे जहाँ भी हैं। पीपल के पेड़ के नीचे संपर्क करें। श्याम, जयभान युवक दौड़ा-दौड़ा आया। बोला-भाई अनाउंस कर दो। माइक लेते हुए खुद ही बोलने लगा। आकाश जहाँ भी हो, किरण दीदी इंतजार कर रही हैं। गुवाहाटी से बैठे हैं। भोपाल

जाने वाले थे कृपया संपर्क करें। आवाज भीड़ में खोती नजर आ रही थी। फिर आवाज दी आकाश संपर्क करें किरण इंतजार कर रही है। उनकी हालत अब बिल्कुल ठीक है। सभी को गाड़ियों, बसों की व्यवस्था की जा रही है।

अनाउंस मेंट होते रहे..

करीब एक घंटे बाद में एक व्यक्ति जो आकाश ही था। आया और एनाउंसर से पूछने लगा। किरण कहाँ है? अभी-अभी..आप अनाउंसमेंट कर रहे थे। जी मैं नहीं मेरी लिस्ट तो यह है। दूर खड़े युवक को इशारा देते हुए बोला- 'उनसे पूछ लीजिये' आकाश बढ़ा जा रहा था। युवक भी किरण की ओर। आकाश ने आवाज लगाई रुको! मैं आकाश हवा उल्टी चल रही थी आकाश की आवाज नहीं पहुँच सकी। आकाश जिन माताजी को अब तक बचाता आया था फिर लौट पड़ा। माँ को लेकर आते हैं। फासला कम रह गया था किरण ने दूर से ही पहचान लिया, आकाश।

युवक पलटा आकाश पलटा। दोनों दौड़ पड़े युवक आकाश की ओर, आकाश किरण की ओर किरण। दोनों ने आपस में भींच लिया और गंगा-यमुना की धार आँखों से बह चली जिसमें बह गया बिछोह, अवसाद, पीड़ा, घुटन, भय और तमस। किरण अपने बालों से रबर निकाल कर युवक के हाथ पर राखी सी बाँधती बोली तुम्हारे जैसे भाई हों तो देश की हर बहिन सुरक्षित है। आकाश ने गले लगाते हुए कहा- चलो माताजी को भी गंतव्य तक पहुँचाएँ।

सम्पर्क : भोपाल (म.प्र.)

प्रदीप कुमार सिंह

'गूगल गाँव' की कुरूपता के तीन पात

'ढाक के तीन पात' उपन्यास की कथा यूँ तो 'गूगल गाँव' की है, जो न तो पूरा गाँव है न ही कस्बा। उपन्यासकार के शब्दों में कहें तो, 'तमाम संस्कृतियों, परंपराओं, आधुनिकताओं और दकियानूसी मान्यताओं का मिला-जुला काकटेल था गूगल गाँव। सब कुछ अधकचरा-सा। जिसमें गाँव का गँवारपन भी था और शहर का कुछ-कुछ शहरातीपन भी।' यही कथा का मूल केंद्र है जिस वजह से लेखक की दृष्टि ग्राम-जीवन की संश्लिष्ट अभिव्यक्ति पर ही मुख्यत: केन्द्रित है। पर कुछ ग्रामीण पात्रों के माध्यम से कथा के तार 'सरकारी दफ्तरों', 'बाबूओं', 'अफसरों', 'गाँव में शिक्षा के वर्तमान स्वरूप', 'शौचालय' एवं 'धर्म के नाम पर सामान्य जनता को छलने वाले बाबाओं' आदि अनेक समस्यायों तक गए हैं। साथ ही कुछ अंश शहरी जीवन का भी इसमें संबद्ध हो गया है।

उपन्यास का प्रथम सक्रिय पात्र 'लपकासिंह' है जिसके अंदर मनसा, वाचा और कर्मणा का थ्री इन वन कॉबिनेशन मौजूद है। और मन में पत्रकार होने की जीवंत अभिलाषा, जिसके वशीभूत हो वह इस सूचना क्रांति के युग में 'गूगल गाँव' के विकास से जुड़ी सूचना को जुटाने का सबसे उम्दा हथियार (आर.टी.आई) को मानता है, 'मात्र दस रुपए के निवेश पर सूचनाओं का पहाड़ खड़ा कर लेना उनके लिए अलादीन के चिराग से कम न था।' इसीलिए वह पत्रकार होने के साथ-साथ (आर.टी.आई) एकटीविस्ट भी है। उपन्यास में मुख्य पात्रों के साथ-साथ कई छोटे-छोटे पात्र और उनसे जुड़े संदर्भ मौजूद हैं जिससे कथानक में कहीं-कहीं बिखराव की स्थिति का भ्रम उत्पन्न होने लगता है। कुछ प्रसंगों को अगर छोड़ दिया जाए, तो कहा जा सकता है कि औपन्यासिक कथा के इस विराट समुद्र में (पत्रकार) लपकासिंह, (गूगल गाँव की रौनक) गुलबियाबाई, वैद्य जी, (बाबा आजम वाले) दनादन बाबा और (एंजिलिना जोंस की तरह दिखने वाली) कमिश्नर साहिबा की कथा से ही उपन्यास का ताना-बाना आगे बढ़ता है और 'गूगल गाँव' के सभी पक्ष एक-एक कर पाठक वर्ग के समक्ष खुलते जाते हैं। वर्तमान में ग्राम-जीवन जिन विसंगतियों, विडंबनाओं और विपन्नताओं का शिकार है, उसके कई करुण और मार्मिक चित्र 'गूगल गाँव' के अंचल को उभारते-सँवारते चलते हैं। जिससे व्यंग्यकार के ग्राम-बोध का वास्तविक अनुमान लगाया जा सकता है।

पुस्तक : ढाक के तीन पात
लेखक : श्री मलय जैन

'गूगल गाँव' का शब्द-चित्र प्रस्तुत करते हुए वे लिखते हैं, 'गूगल गाँव वैसा ही था जैसे आम तौर पर गाँव होते हैं, गाँव के ठीक पहले सड़क के दोनों ओर लहलहाते या सूखे खेत किसी भी समय गाँव की सीमा पर पहुँचिए, आपके स्वागत को आतुर शौचरत कतारें बेतरतीबी से बने कच्चे और कुछ पक्के मकान, मकानों के बीचों बीच गलियाँ और उन पर बहती नालियाँ, इन्हीं गलियों में घूमते कुत्ते, नालियों में गालियाँ खाकर उन्मुक्त स्नान करते सुअर और सुअरियाँ गाँव से दो-दो कोस दूर पानी भरने जातीं गोरियाँ, टीवी चैनलों से कमाए सपनों की गठरी छाती से बाँधकर कुँए में कूदने को तैयार नवविवाहित बहुरियाँ शादी की उमर बीते अरसा हो जाने पर भी वधुओं की खोज में भटकते अधेड़, कानों में प्यार की पुंगी फँसाकर सेलफोन पर किस्मत फोड़ते नौनिहाल छोकरे, बरामदों और ओटलों पर बीमार पड़े खाँसते-खँखारते डोकरे। निठल्ले पड़े समय से कटते पुरुष। सब कुछ आम देहात की तरह।' उक्त प्रसंग में 'गूगल गाँव' के संपूर्ण भूगोल का अंकन व्यंग्यकार ने हमारे सामने कर दिया है, जिसमें अभावग्रस्त होने की वजह से 'गणेसी' जैसे कई लोग हैं जो दो वक्त की रोटी के जुगाड़ या अपनी अगली पीढ़ी के बेहतर भविष्य के लिए शहर की ओर प्रवास करने को मजबूर हैं।

उपन्यास ने अपने फलक में 'गूगल गाँव' की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक सभी नैतिक-अनैतिक संबंधों के यथार्थ को बड़ी ही बारीकी से गढ़ा है जो उपन्यास का उपजीव्य बन गया है। गरीबी यहाँ ग्रामीणों के लिए वरदान बनी बैठी है। अंधविश्वासों एवं रूढ़ियों की जड़ें यहाँ बहुत गहरी हैं। शोषण एवं सरकारी तंत्र के दबावों की यहाँ प्रदीर्घ परंपरा है। अन्य भारतीय गाँवों की तरह यहाँ भी शिक्षा की वास्तविक सुविधाएँ कोसों दूर हैं क्योंकि, 'शिक्षा राह चलती कुतिया से उन्नत नस्ल के भीमकाय हाथी में तब्दील हो गयी है जो जिसे चाहे, अपने पैरों तले रौंद सकता है। ऐसा हाथी जिस पर चढ़ना जितना मुश्किल है उतना ही खर्चीला भी।' यहाँ व्यंग्यकार का कथन अधिक विश्वसनीय जान पड़ता है। उक्त कथन के हवाले से अगर कहा जाए तो वर्तमान में 'शिक्षा का आटा गीला' करने वाली कहावत यहाँ चरितार्थ होती है, जो 'गूगल गाँव' जैसे अन्य सभी भारतीय गाँवों या शहरों की वर्तमान शिक्षा पद्धति परएक साथ कई सवाल खड़े करती है।

उपन्यास के आंचलिक परिवेश में स्थित 'गूगलगाँव' आजादी के बाद आए अनेक प्रभावों एवं परिवर्तनों को अपने में समेटे हुए है। जिसमें आजादी के बाद आए राजनीतिक परिवर्तन को भी देखा जा सकता है, 'प्रजातंत्र ने देश को मुख्तलिफ दल दिए थे और दलों ने गमछे। शेष हिन्दुस्तानी गाँवों की तरह गूगल गाँव में भी गले-गले में गमछा था। कोई पीला तो कोई नीला, कोई तिरंगा तो कोई बहुरंगा। हर गमछे के रंग को देखकर दूर से यह अंदाज लगाया जा सकता था कि अमुक के शरीर में कौन से राजनीतिक दल के कीटाणु प्रविष्ट हैं। कौन किसकी संतान है, यह जानना जरा मुश्किल था, परंतु किसका राजनीतिक बाप कौन है, यह गमछे के रूप और रंग के आधार पर आसानी से जाना जा सकता था। इन रंग-बिरंगे गमछों के बीच कुछ ऐसे भी गमछे थे जिनका रंग सफेद था। इससे पता चलता था कि फिलहाल इनका राजनीतिक पिता कोई नहीं है तथा इन्हें अपनी मर्जी एवं शर्तों पर यह तय करने की पूरी स्वतंत्रता है कि वे किसे अपना बाप चुनें और किसे नहीं... ऐसे सफेद गमछे वाले राजनीतिक शब्दावली के लिहाज से निर्दलीय कहे जाते थे और इनमें से कुछ गिरगिट को भी जीभ

चिढ़ाते हुए जब चाहते थे, अपनी जुबान और गमछे का रंग बदल लेते थे।' देश के अन्य भागों की तरह यहाँ भी राजनीति और राजनेता के चरित्र को समझा जा सकता है। जिसका शिकार हो आजादी के इतने वर्षों बाद भी 'गूगल गाँव' जैसे अनगिनत गाँव आज भी अपने वैकासिक हक एवं अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे हैं। जिसकी व्यापक प्रस्तुति कमिश्नर साहिबा के चरित्र में देखने को मिलती है, 'आप लोगों को पता है आपने क्या किया है? यू हैव चीटेड द गवर्नमेंट, फ्रॉड किया है, आप लोगों ने सरकार और जनता के साथ। सरकार कितनी मेहनत से योजनाएँ बनाती है ताकि आम जनता को बेसिक सुविधाएँ मिल सकें। ये बेचारे दबे-कुचले लोग आगे बढ़ सकें और आप लोग उसका यह हाल करते हैं। सरकार कितना भी पैसा खर्च करे, आप लोगों के कारण सब ढाक के तीन पात हो जाता है।' और आम लोगों को मिलने वाली सुविधाएँ फाइलों तक ही सिमट कर रह जाती हैं तथा सरकार द्वारा बनाई जाने वाली योजनाएँ पूर्ण रूप से सफल नहीं हो पाती हैं।

उपन्यास ग्राम-जीवन का एक विराट फलक लेकर आगे बढ़ता है जिसमें पात्र आते-जाते रहते हैं। यहाँ अधिकतर पात्र निम्न मध्यवर्ग के हैं। उच्चवर्गीय पात्र इने-गिने ही हैं। बाँकेलाल, गोटीराम, गोबरधन, गड्डे भईया, वैद्य मटुकनाथ, चट्टान सिंह, तूफान सिंह, शेर सिंह, अनोखी बाबू, लालबाई, तड़कनाथ, भड़कनाथ, लाला राम, कन्छेदी (हरिजन), लपटन, रलियाबई आदि। कमिश्नर साहिबा इस उपन्यास की सर्वाधिक जुझारू, संघर्षी एवं प्रेरक पात्र हैं जो गाँव के वास्तविकत स्वरूप एवं वातावरण से हमें रूबरू कराती हैं, 'कमिश्नर साहिबा गुस्से से बोलीं देखिए, ये हाल है गाँवों का। यहाँ लोग अच्छी गाड़ियों में घूम सकते हैं, जमीन-जायदाद खरीद सकते हैं मगर घर में शौचालय नहीं बनवा सकते। बहू-बेटियों की इज्जत के लिए कत्लेआम कर सकते हैं, लेकिन इस तरह उन्हें खुले में भेजते शर्म से मरते नहीं।' उपन्यास में यही ऐसी पात्र है जो 'गूगल गाँव' की तर्ज पर अपने को आधुनिकता से जोड़ने वाले गाँव की जाँच-पड़ताल कर उसकी पोल खोलती नजर आती है, जिसमें 'गूगल गाँव' में व्याप्त नाफरमानी एवं भ्रष्टाचार के सारे अध्याय एक-एक कर हमारे सामने खुलने लगते हैं। जैसे- गाँवों में शौचालय, हैंडपंप, फर्जी कुँए, स्कूलों के हालात, सड़कें, मकान, बिजली आदि।

'गूगल गाँव' में कमिश्नर साहिबा एक ईनामदार पात्र के रूप में आती हैं, इसीलिए अपने चरित्र के अंत तक उसमें ग्रामीणों के प्रति करुणा और संवेदना व्याप्त रहती है। लपका सिंह को उपन्यास का दूसरा महत्त्वपूर्ण पात्र माना जा सकता है इसीलिए नहीं कि उसने कोई उल्लेखनीय कार्य किया है। वरन् इसलिए कि वह गाँव के अन्य चरित्रों बीडीओ साहब, बीईओ साहब, तहसीलदार साहब, कलेक्टर साहब के चारित्रिक विकास एवं उनकी गुण्डई एवं गैर जिम्मेदारीपूर्ण आचरण को उभारने में अपना योगदान देता है। इसके बाद के चरित्रों के विकास में अप्रत्यक्ष रूप से अध्यापक पराशर जी अपनी भूमिका का निर्वाह करते नजर आते हैं, जो मुख्य रूप से पृष्ठ संख्या 133 से कमिश्नर साहिबा की विदाई के साथ प्रारंभ होता है। यहाँ स्थिति अपने प्रारंभिक रूप को धारण कर लेती है। पर कहीं न कहीं कमिश्नर साहिबा की कार्य कुशलता का प्रभाव उपन्यास में उनकी विदाई के बाद भी बना रहता है, 'वैद्य जी को जब ज्ञात हुआ कि नए प्रिंसिपल की तैनाती के द्वारा पराशर जी पर गाज गिरा दी गई है तो वह सोच में पड़ गए कि कमिश्नर साहिबा की गजब कार्य शैली न जाने उनकी कितनी आँखें हैं

जो सब कुछ देख लेती हैं। उनके पता नहीं कितने हाथ हैं जो न जाने कितनी तलवारें थामे हैं। इन तलवारों से गाँव में मौजूद रहने और गाँव से जाने के बाद भी मार-काट मचा रही हैं। पहले सरपंच पति को चार सौ बीसी में हवालात की हवा खिलवाई, फिर बीडीओ साहब, सब इंजीनियर और पंचायत सचिव को निलंबित कर निपटा दिया, गड्ढे भईया की ठेकेदारी निरस्त कर जाँच बिठा दी। अब पराशर जी का प्रभार भी छिन गया। उन्हें एक पल भय हो आया कि मैडम की नजर उनके दरवाजे पर भी न पड़ गई हो। ऐसा न हो कहीं उनका भी नंबर आ जाए और शहर से कोई मेडिकल सुपरिटेंडेंट उनके झोले में हाथ डालकर डिग्रियों की असलियत टटोलने लग जाए।'

यहीं से वैद्य जी और गुलबियाबाई की अवैध प्रेम कहानी का प्रारंभ होता है जिसके समानांतर हिन्दुस्तान के शेष स्कूलों की तरह 'गूगल गाँव' के स्कूल, जिसमें पाराशर जैसे कर्तव्यच्युत शिक्षक व्याप्त हैं। उसमें मिलने वाली शिक्षा के साथ-साथ 'मिड-डे मील' योजना के अंतर्गत ग्रामीण-बच्चों को मिलने वाले भोजन की भी पोल खुल जाती है, 'छिपकली की शहादत कतई व्यर्थ नहीं गई। भोजन की घंटी बजते ही बच्चों में रसोई की ओर दौड़ने की होड़ मच गई। कॉपी, किताबें और बस्ते यहाँ-वहाँ फेंककर बच्चे रसोई की ओर ताबड़तोड़ दौड़ पड़े। थालियों, कटोरियों की आवाजों से स्कूल गूँजने लगा। धक्का-मुक्की के बीच शुद्ध, सात्विक और पौष्टिक माना जाने वाला भोजन परोसा जाने लगा। दाल, सब्जी, रोटी और दलिया। यही तो वह आकर्षण था जो देश के हजारों बच्चों को स्कूल की ओर खींच रहा था।' यहाँ व्यंग्यकार द्वारा किया गया वर्णन अपनी कसौटी पर बिलकुल खरा उतरता है। उपन्यास में कथाकार ने अंचल विशेष की संश्लिष्ट प्रस्तुति के लिए हर संभव कोशिश की है, जैसे वह 'गूगल गाँव' की प्रत्येक धड़कन को पहचानते हों। इस क्रम में एक अन्य उदाहरण कलेजी महाराज का देख सकते हैं, 'कलेजी महाराज एक हाथ में मोबाइल थामे मंत्र पढ़ रहे हैं और दूसरे हाथ में जलती हुई अगरबत्तियाँ पकड़े हैं जिन्हें हर थोड़ी देर में वह जोर से घुमा रहे हैं और बीच-बीच में उतनी ही तेजी से फूँक मारकर धुँआ भी उड़ाते जा रहे हैं।'

उक्त कथन में व्यंग्यकार ने ग्रामीण-अंचल में व्याप्त के अंधविश्वास, पिछड़ेपन एवं 21वीं सदी में प्रवेश कर चुके गाँवों से अपनी निकटता होने का आधुनिक परिचय दिया है। परंतु ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है कि आधुनिकता के आने से गाँवों में कुछ साकारात्मक परिवर्तन नहीं हुए हैं, 'शौचालय के बनते ही लपका सिंह ने पाया कि वह स्वर्ग में आ गए हैं और शौचालय ने उनकी जिंदगी ही बदल दी है। उनकी इकलौती पत्नी जो रात-दिन शौचालय की माँग को लेकर फाँसी का फंदा गले में डाले रहती थी, अब सुखपूर्वक उनके साथ रहकर पत्नी धर्म का निर्वहन करने लगी। गिले-शिकवे सब एक शौचालय ने दूर कर दिए। केवल लपका सिंह ही नहीं, उनकी देखा-देखी गाँव के ऐसे कई दंपतियों का वैवाहिक जीवन सुखमय हो गया। गाँव के कई अधेड़ एक अदद शौचालय के बन जाने से रंडुए ही रहकर बूढ़े होने से बच गए। नई-नवेली वधुएँ खुदकुशी के दूसरे कारण खोजने लगीं तब लोगों की समझ में आया कि शौचालय की क्या अहमियत है और अपनी बहू-बेटियों से अब तक उन्होंने कितना महत्त्वपूर्ण मौलिक अधिकार छीन रखा था।'

भाषिक स्तर पर व्यंग्यकार ने उपन्यास में कहीं भी लोकगीतों विशेषकर 'ननदी-भउजाइयाँ',

'सहरूआ', 'लोरिक-संवज', 'विरह' आदि का उपयोग नहीं किया है। हाँ एक-दो जगह काव्यात्मक शैली के कुछ नवीन प्रयोग करने की कोशिश जरूर की है जिसे वैद्य जी और उनकी पत्नी कामिनी देवी के बीच व्याप्त कुंठाग्रस्त प्रसंग के माध्यम से व्यंग्यकार ने गढ़ने का प्रयास कुछ इस प्रकार किया है-

'तुम्हारी तुम जानो पिया,/
तुम जाओ इसी वक्त भाड़ में,
हमारा तो मस्त है जिया/
अपनी ही दहाड़ में।'

पत्नी कामिनी देवी की 'सॉरी फार इन्कन्वीनिएंस' का बोर्ड लगाकर लिए जाने वाले खर्राटा गाड़ी से वैद्य जी अपने जीवन को निस्सार, नीरस, बेरंगा और बेढंगा प्रतीत होने से बचाने के लिए। साथ ही अपनी प्राणप्रिया गुलबियाबाई के दर्शन हेतु अपनी पत्नी कामिनी देवी जिसे वह 'कमीनी देवी' का प्रतिरूप मानते थे। सोता छोड़ यह कहकर गुलबिया बाई के घर की ओर रवाना हो जाते हैं-

'तुम्हारी तुम जानो प्रिया/
मरो तुम इसी दहाड़ में
हम तो चले डूबने/
गुलाबी हुस्न की बाढ़ में।'

इसी प्रकार का एक अन्य उदाहरण भोलाराम द्वारा ट्रक के पीछे लिखी एक शायरी-

'पलटकर देख जालिम/
तन्हा हैं हम,
लग जा गले,/
देखें तुझमें कितना है दम।'

द्वारा अपनी विरहणी पत्नी गुलबिया बाई की एकाएक आई याद के प्रसंग स्वरूप देखा जा सकता है। जिसमें वह मानो चीख-चीख कर गुहार लगा रही हो 'कब आओगे कब आओगे, जिस्म से जान जुदा होगी क्या तब आओगे। देर न हो जाए कहीं देर न हो जाए।'

उपन्यास में भाषा का स्तर थोड़ा कमजोर नजर आता है क्योंकि ग्राम-अंचल के जीवन और परिवेश को मूर्तिमान करने के लिए भाषा के ज्ञान की जैसी सूक्ष्मता और शब्दों के अर्थ-छवियों की जानकारी लेखक को होनी चाहिए वह उपन्यास में थोड़ी उपेक्षित-सी लगती है। परंतु कहीं-कहीं भाषा के अच्छे व्यंग्यात्मक प्रयोग देखने को जरूर मिलते हैं-

'सत्तर किलोमीटर दूर, जिला मुख्यालय से एक चमचमाती जवान सड़क यहाँ के लिए रवाना होती थी जो मील-दर-मील शहर के पीछे छूटते-छूटते उमर-दर-उमर जवानी की तरह ढलती जाती थी।'

'गूगल गाँव' की इस प्रस्तुति में मलय जैन का कथाकार काफी हद तक तटस्थ या दृष्टि निरपेक्ष रहा है। उपन्यास कथाविन्यास, उसके पात्रों के सहज क्रिया-कलाप और कथाकार का आंचलिक

नैकट्य अंचल के समग्र जीवन की व्यथा-कथा को हमारे सामने उभारते चलते हैं, पर यह स्थिति उपन्यास के अंत तक नहीं रह पाती। उत्तरार्द्ध के पृष्ठों में जाकर कथाकार की दृष्टि प्रतिबद्धता का आभास देने लगती है। पर आगे चलकर धीरे-धीरे वह खुलती चली जाती है। कमिश्नर साहिबा के 'गूगल गाँव' से वापस चले जाने के बाद के सारे कथाक्रम को जिस दिशा में ले जाया गया है उसे लेखकीय दृष्टि विशेष का ही परिणाम कहा जाना चाहिए, क्योंकि इसके पीछे कथाकार की एक विशिष्ट दृष्टि सक्रिय रही है।

नए प्रिंसिपल द्वारा पाराशर जी पर गाज गिराना, स्कूल में मिलने वाले 'मिड-डे मील' में छिपकली का नजर आना, कलेजी बाबा का मोबाइल से मंत्र पढ़ना, वैद्य जी और गुलबिया बाई के प्रेम-प्रसंग में गुलबिया बाई के पति का महीनों घर नहीं आना। और आने पर एक बच्चा थमाकर फिर चला जाना, घरों में शौचालय आने के बाद 'गूगल गाँव' के लोगों की सोच में परिवर्तन का आना आदि। उपन्यास में उसकी कथा के सहज अंग बनकर नहीं आते, बल्कि ऊपर से आरोपित किए हुए लगते हैं। यहाँ पात्र और परिस्थितियों पर लेखकीय दबाव ज्यादा नजर आता है, जिसके परिणामस्वरूप उपन्यास के प्रारंभ की अपेक्षा अंत में कथाकार के रचाव-चुनाव का कौशल बिखर जाता है। और उपन्यास के कलात्मक क्षति की संभावना बढ़ जाती है। आजादी के बाद हमारे गाँव-देहात के जीवन में एक नवीन चेतना का उदय हुआ। उनमें अपने अधिकारों के प्रति सजगता देखने को मिलती है। 'ढाक के तीन पात' उपन्यास का संपूर्ण घटनाक्रम उस बदलाव को उसी सहज अभिव्यक्ति के रूप में ग्रहण करता है।

सम्पर्क : गांधीनगर (गुजरात)
मो. 7503935817

R.N.I.३०९९३/७६

आज़ादी का अमृत महोत्सव

साहित्य अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, जाणगंगा, भोपाल (म.प्र.)